उपकार पत्र

१ जैन श्वेताम्बर साधू मार्गी आठ कोटी मोटी पक्ष के कच्छ देश पात्र कर्ता परम पूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के शिष्य वर्य प्रवर पंण्डित कविवरेंद्र विशुद्ध चारित्री श्री नागचंद्रजी महाराज. आपने यहांसे प्रसिद्ध हुवा विज्ञाप्तिपत्र पढकर इस ग्रंथकी द्वितियावृति में शुद्धिवृद्धी करने के लिये प्रथमावृति की एक प्रत में आद्यान्त सुधार कर श्लोक गाथा और सूत्र का मूल अलगही लिखकर कितनी युक्त सुचनासे भेज ने की कृपा करी, जिस के आधार से मैं इस पुस्तक को शुद्ध करने समर्थ बना इस लिये मैं आपका अंतःकरण से उपकार मानता हूं,

२ जैन श्वेताम्बर साधू मार्गी परम पूज्य श्री जयमलजी महाराज के सम्प्रदाय के स्याद्वादर्शक परम पण्डित मुनिराज श्री प्रभाकरसूरीजी (प्रसन्न चंद्रजी) महाराज आपने यहां से प्रसिद्ध हुवा विज्ञप्ति पत्र पढकर फक्त ८ हि दिन के अंदर अत्यन्त पर्यास कर इस पुस्तक की प्रस्तावना शुद्ध पत्र वगैरा सर्व आद्यन्त बहुत दीर्घ द्रष्टि से सुधारा कर भेजा

इस पुस्तक के सुधार ने में आपका किया हुवा प्रयास बहूतही उपयोगी पडा है. इसलिये मैं आपका अंतःकरणसे मैं उपकार मानता हूं.

३ जैन श्वेताम्बर साधू मार्गी पण्डित राज शुद्ध संयमी श्री माधवमुनिजी के शिष्य वर्य विद्या विलासी श्रीमूल मुनिजी. आपने इस पुस्तक के ५० प्रष्टकी शुद्धि पत्र बहुतही उपयोगी सुचनाके साथ भेजा वो आपका प्रयास इस पुस्तक के सुधारे में उपयोगी हुवा है इस लिये मैं आपका अंतःकरण से उपकार मानता हूं

इन तीनोंही महात्मा का ज्ञान वृद्धि सम्बधी उत्सहा देख. मुझे बहुत आनंद होता है और चाहता हूं कि इससे भी अधिक उत्साही सब जैन मुनियो बन कर ज्ञान उन्नति करने कटिवद्ध होवें.

तीनोंही मुनिवरों आपकी कितनी सूचनाओं का पालन होने में मेरा प्रमाद हुवा है इस लिये मैं आपकी क्षमा चाहता हूं.

आपका अभारी
अमोल ऋषि.

॥ प्रथमावृती की प्रस्तावना ॥

मोक्ष कर्म क्षया देव, स सम्यग्ज्ञानतः स्मृतः ॥
ध्यान साध्यं मतं तद्धि, तस्मा द्धित मात्मनः ॥

इस जगत् वासी सर्व जीवों एकान्त सुखके अभिलाषी हैं. वो एकान्त सुख मोक्ष स्थानमें है. इसी सबब सै सर्व धर्मावलम्बीयों अपनी धर्म करणी का फल मोक्षकी प्राप्ति [illegible]लाते हैं. और अलग २ मोक्ष के नामकी स्थापना कर, उसकी प्राप्ती के लिये उद्यम करते हैं. जो सर्व दुःख से रहित एकान्त सुखस्थान मय मोक्ष है, वो सर्व कर्मोंके क्षयसे होता है. कर्मक्षय करनेका उपाय दर्शाने वाला सम्यग (तत्त्वकिन युक्त) ज्ञान है; वो सम्यग् ज्ञान ध्यनसे होताहै योग वसिष्ट ग्रन्थमें कहा है कि "विचारं परमं ज्ञानं" विचार-ध्यान है सोही परमोत्कृष्ट ज्ञान है- इस लिये ध्यानही एकन्त सुख प्राप्त करनेका मुख्य हेतू है. परम सुखार्थी जनो को ध्यानके स्वरूपको जाणनेकी विशेष आवश्यकता समझ, यह "ध्यानकल्पतरु" ग्रन्थ रचा-गया है. इसमें शुभाशुभ, और शुद्धाशुद्ध ध्यान का, स्वरूप समझा अशुद्ध और अशुभसे बच, शुभ और शुद्ध ध्यान कर नेकी रीती सरल तासे दरशाई गइ

है. जिससे इसे पठन मनन कर मुमुक्ष जन अपना इ ष्टार्थ सिद्ध करने का उपाय जान सकेगें.

"जयतीति जैन" जैन शब्द जिनसे हुवा है जि न शब्दकी धातू 'जय' है, जय शब्दका अर्थ जीतन पराजय करना या तावेमे-कावूमे करना ऐसा होता है जीत शत्रूकी की जाती है. अपने सच्चे कट्ट और जा लिम शत्रू राग द्वेष को जीते व कमी करे, वोही सच्चे जैनी व जैन धर्मी हैं. राग द्वेष न होय ऐसे पवित्र धर्ममें मत भेद पडना, या क्लेश होना असंभव है, क्यों कि पानीसें वस्त्र जलता नहीं है. यह जैन धर्मका सत्य प्रभाव फक्त दो हजारही वर्ष पहले इस आर्य भूमिमें प्रत्यक्ष दृष्टी आताथा; हजारों साधु साध्वीयों और लाखों श्रावक श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक दृष्टि जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुआयी थे. इस सत्पके परम प्रभाव से, यह 'जैन धर्म' सर्व धर्मों से उच्च अ- द्वितीय पदका धारक था, वडे सुरेन्द्र नरेन्द्र इसे मान्य करते थे; अपार ऋद्धि सिद्धीयों का त्याग कर जैन भिक्षुक (साधु) वनते थे, और वितराग वृति मे आत्म साधन कर सर्व इष्ट कार्य सिद्ध करते थे, मोक्ष प्राप्त कर ते थे. जिनका मुख्य हेतु यह ही दिखता

है कि वो महात्मा सूल में कहे मुजब ज्ञान ध्यान में विशेष काल व्यतीत करते थे. श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्यनमें साधुके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का बयान है, वहां फरमाया है कि—

पढमं पोरिसीए सज्झायं, वीयं झाणं झियायइ॥
तइयाए भिक्खायारिए,चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिलेपहरमें सज्झाय (मूल सूत्रका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहर में भिक्षाचारी (भिक्षा वृति से निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहणकर भोगवे) और चौथे पहर में पुनः सज्झाय; यह दिनकृत्य. और रात्री के पहलेपहर में सज्झाय, दूसरे में ध्यान, और " तइया निद्दा मोक्खंतु " अर्थात तीसरी पहर में निद्रा से मुक्तहोवे और चौथे में पुनः सज्झाय करे. यों दिन रात्री के ६ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे!!

तैसेही श्रावकों के लियें भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययनमें फरमायाहैकि—

आगारी यं सामाइ यंगाइ, सड्ढी काएण फासइ॥
पोसहं दुहओ पक्खं, एगराइ न हावए॥२३॥

अर्थात्—गृहस्था वास में रहा हुवा श्रावक

त्रीकाल सामायिक व्रत❋शुद्ध श्रद्धा युक्त स्पर्शें(करे) और अष्टमी चतुर्दशी दोनो पक्ष (पक्खी) के पोष-ध व्रत * करे, ऐसा सदाधर्म ध्यान करतारहे, परन्तु धर्म करणी में एक रात्रि की भी हानी नहीं करे,काळ व्यर्थ नहीं गमावे.

गतकाल में श्रावकों को भी एक दिनमें कम सेकम एकप्रहर और महीने में छे दिन पूर्ण धर्मध्यान में गुजारते थे, और धर्म ध्यान ध्यानेमें ऐसे मशगुल बन जाते थे कि उनके वस्त्र भूषण और प्राणतक भी कोइ हरण करलेता तो उन्हे भान नहीं रहता था! देखिये! कुण्ड कोलीयाजी, कामदेवजी वगैरा श्रावकोंको. श्रावकही ऐसे थेतो फिर मुनीराजोंकी तो कहना ही क्या!

जब वे ध्यान से निवृत्त हो अन्य कार्य मे लगते थे, तोभी ध्यान में किया हुवा निश्चय उनके अंतःकरणमें रमण करता था, जिससे अन्य स्वभाव—राग द्वेष-विषय कषाय आदि दुर्गुणों को उनके हृदय में

❋ समभावमें प्रवृत्ति करनेका रूप सामायिक व्रत त्रिकाल करनेथे और

* ज्ञानादि गुणोंको पोषणेका पोषध व्रत एक महीनेम छे करतेथे.

प्रवेश करने का अवकाशही नहीं मिलताथा, अपने कार्यसे निवृत अन्य के छिद्र दुर्गुण वगैरा गवेक्षण करने का परपंच वी कथा वगैरा में व्यर्थ काल गमाने की फुरसत ही नहीं पा ते थे, ज्ञान ध्यान सुकृत्यों में निरंतर मग्न हरैतथे, जिससे जिन्ह का चित सदा शांत और स्थिर रहताथा. जैन जैसे निर्दोष और पूर्ण पवित्र धर्म को पूर्ण प्रकाश मय बनारक्खाथा! और उनके लिये मोक्षद्वार हमेशा खुलाथा.

अब देखीये! अभीके जैन साधू श्रावकों की तर्फ बहुतसे तो ध्यानमें समझतेही नहीं है. कितनेक ध्यान और काउत्सर्गको एक ही कहते हैं,परंतु जो एक होता तो बारह प्रकारके तपमें अलग २ क्यों कहा? काउत्सर्ग तो काया को उत्सर्ग (उपसर्ग) के सन्मुख करने का और ध्यान विचार करनेका नाम है. ध्यान के गुण पूरे नहीं जाणने से इस वक्त प्रायः ध्यान नष्ट जैसाही होरहा है. जिससें व्रत धारीयों को फुरसत मिली, स्वच्छन्द वृतिहो विकथादि अनेक परपंचमें फसे. वेरागी के सरागी बने, और धर्म के नाम से अनेक झगडे खडेकर मन मुख्तियार बन बैटे. अपना २ पक्ष बान्ध लिया, यह मेरा अच्छा और वह तेरा

बुरा, मोक्ष का इजारा हमारे पन्थ वाले को ही है अन्य सब मिथ्यात्वी हैं, हमारे को छोड अन्य को अहार आदी देने, में तथा नमस्कार सन्मान करने में सम्यक्त्व का नाश होता है ! अनंत संसार की बृधि होती है ! ! —वगैरा उपदेश कर बाडे बान्ध लिये ? देखिये बन्धूओ ! राग द्वेष जीतने बाले जिन देवके अनुयाथी यों का उपदेश ? ऐसी २ विपरित परूपणासे, इस शुद्ध जैन मतके अनेक मतांतर होगये हैं, और एकेक की कटनी—सत्यानाशी का उपाय का विचार ध्यानमें करने में ही परम धर्म समझने लगे, जो कूयुक्तियों कर विवाद में जीते उसेही सच्चा धर्मी जानने लगे, जो जरा संस्कृतादि भाषा बोलने लगे और कहानीयो रागर्णीयो कर परिषद को हंसादे वोही पंण्डित राज कहलाये, जो तरनम योग से साधू वने वोही चौथे आरेकी वानगी वजे, जो ज्यूनी मुहपति पूंजणी रक्खी या टीले टपके किये वोही श्रावजी कहलाये, और विषय कषाय के पोषणमें ही धर्म माना ! इत्यादी प्रत्यक्ष प्रवृतती हुई इन क्षुलक बातों परसे ही विचारी ये कि जैनी इन को कहना क्या ? लाला रणजीतसिंहजीने कहा है—

जैन धर्म शुद्ध पायके, बरते विषय कषाय ॥
यह अचंभा हो रहा, जलमें लागी लाय ॥ १ ॥

उज्जैन की सिप्रा नदीके पाणी में भैंसे (पाडे) जळ (बल) मरे ? ऐसा आश्चर्य जनक बनाव बन ने का सबब भैंसे की पीठ पर लदेहुये चूनेही का था !! जैसे ही जैन धर्म में रहे हुये जीव नित्य हीन दिशा को प्राप्त होते हैं, इनका सबब उनके हृदय में रहा हुवा विषय कषाय ईर्षा रूप क्षार ही है !! सखेदा श्चर्य है की जैन धर्म जैसे सुधा सिन्धू में गोता खा कर ही, विषय कषाय ईर्ष रूप लाय (अग्नि) शांत नहुइ ! हा इति खेद ! विषय कषाय राग द्वेष ईर्ष रूप लाय बुजणे का शांत करने का उपाय ध्यानही- हैं, कि जिसका प्रभाव प्राचीन कालमें प्रत्यक्ष था, उसे लुप्त जैसा हुवा देख, ध्यानका स्वरूप सरल ता से समझा ने वाला एक ग्रन्थ अलग ही होनें की आवश्कता जान यह ध्यानकल्पतरू नामक ग्रंन्थ श्री उववाइ जी सूत्र, श्री उत्तरा ध्येनजी सूत्र, श्रीसुय: डांग जी सूत्र श्री आचाराङ्गजी सूत्र; और ज्ञानार्णव, द्रव्य संग्रह, ग्रन्थ, तथा कितनेक थोकडा के आधारसे स्व-मत्यानुसार बनाके श्री जैन धर्मानुयायी यों को समर्पण करता हूं; और चहाताहूंकि ध्यानकल्पतरू

की शीतल छांय में रमण कर, अशुभ और अशुद्ध ध्यान से निवृत शुभ और शुद्ध ध्यान में प्रवृत न कर सच्चे जैनी बन जैन धर्म का पुनरोद्धार करोगे ? और इष्टितार्थ सिद्ध करने समर्थ बनोगे—विशेषु किंमधिकं

धर्मो नती कांक्षी—अमोल ऋषि.

"आवश्यकीय सूचना"

ध्यान नाम विचार का है, विचार अनेक तरह के होते हैं उन सब विचारों का संग्रह कर श्री सर्वज्ञने चार❀हिस्से किये हैं, उसके बाहिर एकभी विचार नहीं है येही युक्ती शास्त्र नुसार व कुछ मतानुसार इस "ध्यान कल्पतरु" ग्रन्थमें वापरी है. अधमसे अधम विचार निगोदमे ले जाने वाला और उच्चसे उच्च ध्यानमोक्षमें ले जानेवाला सर्वका संग्रह इसमें आगयाहै, संसारमे ऐसा कोइभी कार्य नहीं है किजो विन विचार (विन ध्यान) होवे अर्थात् सर्व कार्यके अव्वल विचारही है, विन विचार किसीभी कार्यका होने असंभवहै. कोइक अकस्मात् होजाय उसकी वात अलग.

संसारके शुभ सर्व विचार का चित्त दर्शना

❀ जो उप शाखा मे शुभ और शुद्ध ध्यान चार ध्यानसे अगल लिये हैं, परन्तु उनका भी धर्म और सुक्ल ध्यान में समवेश होजाता हैं.

यही सइ ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन है, सइ लिये आर्त और रौद्र ध्यान के पेटमेंसंसारसे वर्तमान वरतती हुई बहूतसी वातों का समावेश हुवाहै, जिसे पढ कर पाठक गणों को ऐसा विचार नहीं करना कि ग्रन्थ कर्ता ने सर्व संसार कार्य की उथापना करदी. मेरे-उथापन करने से कुछ संसार कार्य वन्ध पडता नहीं है. यह तो अनादी सिलसिला महान सर्वज्ञउ पदेशकों ही नहीं अटका सके तो मैं विचारा कौनसी गिनती-में, परन्तु जो कार्यारंभ किया उसका यथातथ्य स्वरूप यथा बुद्धि दर्शाना यह ग्रन्थ कारकका मुख्य प्रयोजन है, इसी सबब से संसारमें प्रवृतती हुई वातोंका चि-तइसमें आया है.

यह तो निश्चय से समझियेकि अव्वलके दोनों ध्यान एकांत निषेधकही हैं, वो छूटने से,ही आत्मा सुखानुभव कर शक्ती है. परन्तु ऐसा नहीं समझिये-कि खोटे ध्यानी सर्व संसारी जन हैं तो सबकी कुगती होगी. हां ! यहतो निश्चन है कि खोटे ध्यानसे कुगती हीहो ती है. परन्तु ऐसा नहीहै कि सर्व संसारीयों एकान्त कु-ध्यान कही ध्याने वाले हैं. क्योंकी बहुतसे संसा री वक्तसर धर्म ध्यानभी ध्याते हैं.और अच्छे धर्म कृत्यभी करते हैं. जिसमे शुभ.शुभ फलकी सिथता

होने से. उनको सुखमिश्र देव गतीकी प्राप्ती होतीहै, वहां भी धर्म ध्यान ध्यानेसे पुनःउच्च मनुष्य गतीको प्राप्त हो फिर शूभ ध्यानकी विषेशता होनेसे शुद्ध ध्यानको प्राप्त कर सकेंगे.

अमोलख ऋषि.

ग्रन्थ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चहित्र वगैरा.

मालव देशके भोपाल शेहरमें औसवाल बडे साथ काँसटीया गोत्रके शेठ केवलचंदजी रहतेथे, उनकी पत्नी हुलासा बाइके कुंखसे संवत १९३३ के भाद्रव वद्य ४ को पुत्र हुवा उसका 'अमोलक, नाम दिया. और एक पुत्र हुये बाद हुलासा बाइका देहान्त हो गया. फिर केवलचंदजी ने सं. १९४३ के चेतमें दीक्षा धारण कर पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के महंत मुनि श्री खूबाऋषिजी महाराजके शिष्य हुये. और ज्ञानाभ्या कर एक उपवाससे एकीस उपवास तक लड वन्ध और ३०–३१–४१–५१–६१–६३–७१–८१–८४–९१–१०१–१११– और १२१ यह तपस्यातो छाछके आगरसे, और छे महीन तक एकांतर उपवास वगैर वहोतसी करी है. तथा पूर्व

पंजाव, मालवा गुजरात, मेवाड मारवाड दक्षिण व. गेरा वहुत देश स्फर्शे हैं.

सं० १९४४ के फागन में महात्मा श्री तिलोका ऋषिजी महाराजके पाटवीं शिष्य श्री रत्न ऋषिजी महारजके साथ श्रीकेवल ऋषिजी. इच्छा वर(भोपाल) पधारे उसवक्त वहांसे दो कोश खेडी ग्राममें अमोलक चंद अपने मामाके पासथे, मुनिआगम सुन दर्शनार्थ गये और वरोगी पिता को देख वैरागी वने. तुर्त फा ल्गुन वद्य २ को दिक्षा धारन कर पिताके साथ हुये, पूज्य श्री खूब ऋषिजी महाराजके पास लाये. तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजीने संसार सम्बन्धके कारणसे श्री अमोलख ऋषिजीको अपने शिष्य वनानेकी नाखुशी दरशाइ, तबपूज्य श्रीके जेष्ट शिष्य आर्यमुनी श्री चेना ऋषिजी महा राजके शिष्य अमोलक ऋषिको बनाये, थोडेहीकाल वाद श्री चेना ऋषिजी और पुज्य श्री खूबऋषिजी का स्वर्ग वास हुवा, और फिर थोडे ही काल वाद तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी एकले विहारी हुवे. तव नजीकमें विचरते श्री भेरूऋ-षीजी के साथ श्री अमोलख ऋषि विचरे, उसवक्त (१९४८ फाल्गुनमें) ओस वाल ज्ञाती के एक पन्ना-लालजी ग्रहस्थने १८ वर्ष की वयमे दीक्षा धारन क

श्री अमोलख ऋषिजीके शिष्य बनेथे. उनकोसाथ ले आवेर आये, वहां श्री--कृपा रामजी महारा ज के शिष्य श्री रूपचंदजी महाराज गुरू वियोग सेदु:खी हो रहेथे उनको संपोत ने श्री अमोलख ऋषिजी ने अपने शिष्य पन्ना ऋषिजो को समरपण किये! देखीये एक येह भी उदारता!! फिर दो वर्ष बाद दीक्षा दाता श्रीरत्नऋषिजी महाराज का मुकाबला होते ही अमोलख ऋषिजी उनके साथ विचरने लगे, इन महा पुरूषोंने श्री अमोलख ऋषिजी को जैनमार्ग दीपाने लायक ज्ञान तहाअनसे ज्ञानका अभ्यास कराया,सूत्रों की रहस्य समझाइ, जिस प्रसाद से अमोलक ऋषिजी ने गद्य पद्यमें अनेक ग्रन्थ बनाये, और बना रहे हैं, और अनेक स्वमति परमति को समझाये, औरसमझा रहे हैं. श्री अमोलख ऋषिजी सवंत १९५६ के फागुन में औसवालसंचेतीज्ञाती के मोती ऋषिजी नामके शिष्य हुवेथे. सं१९६०का चतुरमास श्री अमोलख ऋषिजी घोडनदी[पुणे]था (तब जैन तत्व प्रकाश नामे वडा ग्रन्थ शिर्फ ३ महीनेमें लिखा था)उसवक्त तपस्वी जी श्री केवल ऋषिजी का चतुर्मास अहमदनगरथा. चौमासे उतरे बाद समागम हुवा. तब तपस्वीजी कहने लगेकी मेरी वृद्ध अवस्था हुइहै. मुझे संयमका महया

देना यह तराक्तव्यहै. तब अमोलख ऋषिजी स्वशिष्य सहित श्री तपस्वी जी के साथ विचरने लगे. सं१९६१ का चतुर्मास श्री सिंघके अग्रह के बंबइ (हनुमान गली)में किया, यहां जैन स्थानक वासी रत्न चिन्ता मणी मित्रमंडलकी स्थापना हुइ, और इस मंडलकी तर्फसे महाराज श्रीअमोलख ऋषिजी की बनाइ हुइ "जैनामुल्य सुधा" नाम छोटासी पुस्तक प्रसिद्ध हुइ. यहांमोतीऋषिजीस्वर्गस्थहुये. उस वक्तयहां के पन्नाला लजी कीमती कार्यार्थबंबइगयेथे,वहांमहाराजश्रीजीके दर्शन कर विनंती करी के दक्षिण हैद्राबाद में जैनी-यों के घर तो बहूत हैं, परन्तु मुनीराज का आगम बिलकुल नहीं है, जो आप पधारोगे तो बडा उपकार होगा. यह वात महाराज श्री को पसंद आइ. चतु-मास बाद बंबइ से विहार कर. इगत पुरी पधार, चतुर्मास किया, और यहां के श्रावक मूलचंदजी टाँ-टाया वगैरेने महाराज श्री की की बनाई 'धर्मतत्वसंग्रह' नामे ग्रन्थ की १५०० प्रतों छपवा केअमुल्य भेटदी वहां से विहार कर वेजापुर (औरंगाबाद) आये य हां के श्रावक भीखमचंन्दजी संचेती ने "धर्म तत्व संग्रह" की गुजरातीमें १२०० प्रतों छपवाके अमुल्य भेंट दी. वहां से जालणे पधारे और आगे विहार क-

रने लगे तब सब श्रावकों ने मना किया की इधर आगे कोइ साधु गये नहीं है, आप पधारोगे तो बडी तकलीफ पावोगे. परन्तु श्री वीर परमात्मा के वीर मुनिवरों आगे के आगे वढतेही गये और क्षुधा तषादि अनेक आति कठिण परिसह सहन करते, अनेको को नवे भेवले आश्चर्य उपज्याते अपूर्व धर्मका सत्य स्वरूप बतांत सं. १९६३ जेष्ट सुदी १२ शनिवारको चार कमान पावन करी. लाला नेतरामजी रामनारायणजीके दिये मकान में चतुर्मास किया. चौमासे में श्री सुखा ऋषिजी बीमार पडके फाल्गुन मास में स्वर्गस्थ हूवे. आगे उष्ण ऋतू और बीकट मार्गके सबब से श्रावको ने विहार नहीं करने दिया. दुसरे चतुर्मास से श्री केवल ऋषिजी महाराज उपरा उपरी बिमारीयों भोगवने से और बृध अवस्था के कारण से विहार न होता देख, श्रावकोने स्थिर वास रहनेकी विनंती करी हमारे सुभग्योदय से महाराजजी श्री ठाणे २ सुखसाता में विराजमान हैं. महाराज श्रीके सरल जमाने अनुसार चारों अनुयोग रूप सद्बोध श्रवण से यहां धार्मिक और व्यवहारिक अनेक सुधारे हुवे हे और हो रहे हैं.

गुणानुरागी—सुखदेव सहाय ज्वालाप्रसाद.

ध्यानकल्पतरु द्वितियावृति प्रसिद्ध कर्ता सद् ग्रहस्थों के

रुपे.	नाम.	ठिकाना.	पुस्तके
*७५	गुप्त परमार्थ इच्छक जेष्ट श्रावकजी	दक्षिण-हैद्राबाद.	१२५
१७५	छोटेलाल चतुरभुज	सिकंद्राबाद (हैद्रावाद)	२७५
१२५	जगमालजी किसनदासजी भंडारी	मनचर (पूना)	२२५
*१२५	फतेचंदजी जीवराजजी लोडा	कलम (हैद्राबाद)	२००
*१२०	मिलापचंदजी अनोपचंदजी चोरडया	दक्षिण हैद्राबाद	२००
*१०५	जीतमलजी बहादरमलजी समदरीया	दक्षिण हैद्राबाद	१७५
६०	तिलोकचंदजी मोतीलालजी	सोलापुर	१००
६०	टेकचंदजी ज्ञानचंदजी हीराजी नंदरामजी हंसराजजी घांसीरामजी भीखुजी तलारामजी	दिगठाण (धार) मालवा	१००
३०	हीराचंदजी ताराचंदजी गेलडा	मद्रास	५०
* ३०	गुप्त परमार्थ इच्छक सौभाग्यवति श्राविक बाई	हैद्राबाद	५०

* ऐसी न्यून करी है उनके हाल्मीके रुपे समझीए.

खुश खबर.

१ "अघोद्धार कथागार."

इस ग्रंथ में बालब्रम्हचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजीने १८ पापके सेवन करनेसे और त्याग न करनेसे क्या फल प्राप्त होता है जिसपर अन बोधके साथ छत्तीस धर्म कथाओंकी रचना छंद बंध करी है. यह ग्रंथ दक्षिण हैद्राबादके लालाजी नेतरामजी रामनारायणजी जोहरी और घोडनदी (पुणे) के शेठ कुंदनमलजी घुमरमलजी बापना इनकी तरफसे छपना सुरू हूवा है. अमूल्य भेट कीजायगी.

२ "गुणस्थान रोहण शतद्वारी"

इस ग्रंथ में बाल ब्रम्हचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी १४ गुण स्थान पर १०० द्वार की रचना रच रयेहे हैं. यह ग्रंथ मुमुक्षुओंको मोक्ष प्राप्त करने से.पान (पंक्तिय) मुजब सहायक होगा. इसे दक्षिण हैद्रबाद के लालाजी नेतरामजी रामनारायणजी और बावली वाले रतनचंदजी दोलतरामजी चोरडे. जामडीवाले संचारामजी उदारामजी मूथा, बावलीवाले इंदरचंदजी वच्छराजजी रांके, बावलीवाले रतनचंदजी रामचंदजी कांकरीया. बोरकुंडवाले खेमचंदजी हंसराज. जी बम्ब. इन सद्गृस्थोंकी तरफसे प्रसिद्ध कर अमूल्य दिया जायगा.

दोनो ग्रंथ तैयार हुवे अखवार में सुचना दीजायगी

॥ द्वितियावृती की प्रस्तावना ॥

श्लोक–निर्जराकरणे वाह्याच्छेष्ठ माभ्यन्तरं तपः।
तत्राप्यकात पत्र त्वं ध्यानस्य मुनयोःजगुः॥१
अन्त र्मुहुर्तमात्रं यदेकाग्रचित्तता न्वितम्।
तध्यानं चिरकालीनां कर्मणां क्षय कारणम्॥१॥

जिस सुखकी इच्छा सर्व संसारी जीवात्मा करते हैं. जिस सुख के लिये बडे २ महात्मा महान् पर्यास करते हैं, जिस सुखके लिये बडे २ ज्ञानीयो महा परिषद में गर्जार्व कर देशना देते हैं. जिस सुख लिये बडे २ तपी जपी संयमी निरंतर उद्यमी हो रहे हैं, वो परमानन्द–अखंड सुख विन तप जप और खप की मेहनत किये एकस्थान वैठे सुख से प्राप्त करसके ऐसा सत्य-सीधा सर्व मान्य और प्रत्यक्ष फळ प्रद उपाव एक "ध्यान" हीं है. क्योंकि जो परमानन्दकी प्राप्ति में व्याघात कर्ता अन्तराय कर्म है. उनका नास करने वाला तप है. सो तप वाह्य और आभ्यान्तर इस दो भेद से होता है. जिसमें वाह्य तपसे आभ्यतर तपमें कर्म दग्ध करनेकी शक्ति विशेष है, और अभ्यान्तर

तप के छः भेद हैं जिसमें से पञ्च मा जो ध्यान त
है उसकी शक्ति तो "खत्तिण सेठे जहा दत वक्क
अर्थात् सर्व राजा ओ मे जैसा चक्रवर्ति महाराज ए
छत्र राज कर्ता होता है तैसे ही ध्यान त
श्रेष्ठ है ऐसा महामुनिश्वरों का फरमान है. क्योंकि
और तप तो बहुत काल करने व कालान्तर में फल
देने वाले होते हैं, सोभी जैसी ध्यानकी सहायता है
वी वैसाही और उतनाही और यह "ध्यान" न
मक तपतो फक्त एक अंतर्मुहुर्तमात्रही एकाग्र चित्त
किया अनन्तानन्त काल के सञ्चित कर्मों का क्षय कर प
मानन्दी परम सुखी बनता है. उपरोक्त श्लोक व
यह आशय है सो सत्य है. क्योंकि ध्यान नाम
चारका है विचार है सो मन से होता है, मन है स
द्रव्य है, द्रव्य गुण और पर्याय कर संयुक्त होता है
जगत के अन्य द्रव्यों से मन द्रव्य अधिक शक्तिवं
होता है. यह बात वर्तमान है सायन्स विद्या क
सिद्ध बताइ जाती है.

इस विश्व में जो जो वस्तुओं उत्पन्न होती है
उन सबका मूल विचार ही है. अर्थात्. घर वस्त्र भू
षण आदि वस्तुओं तथा रेल टेलीग्राम, टेलीफोन,

फोनोग्राफ व वायरलेश टेलीग्राम वगैरे जो जो चम त्कारी वस्तुओं उत्पन्न हुइ व होवेगा. इन सबको जन्म दाता भूमि अवल विचारही है. इससे प्रत्यक्ष भास होता है कि विचार में नवे उत्पन्न करने की शक्ति है, वो केवल अलंकार रूप नहीं परन्तु वस्तू रूप, सो यह बात उपरोक्त विचार से सिद्ध होती है. और इसलिये जाना जाता है कि मन अनंत शक्ति- वंत है. विलंब इतनाही है कि उस अनंत वल के साथ अपनी एक्यता का साक्षत्कार नहो.

प्रथमिक सर्व विचार हवाइ किल्लोकी माफि क दिखते हैं, विचार शील मनुष्यों के कित्नेक वि चारोंपर अल्पज्ञ हँसते हैं, और उस हँसने के सबब से विचारज्ञ कायरता धारन कर शिथिल वन जाते हैं, वश इसही सवव से इस वक्त के इस आर्य खंडके मनुष्यों हरेक कार्य मैं पश्चताप पड रहे हैं, और जि न मनुष्यों का कभी स्वप्नांतर में भी भरोसा नहींथा ऐसे अन्य खन्डके मनुष्यों आर्य खंड में समुत्पन्न हुइ विद्याकेइ प्रभाव से विचार उद्भवे और उनके साथ एक्यता कर उन्हे अजमाये तो आज यहां के वडे २ विद्वानों उनके कार्यों से चकित हो रहे हैं. वहंवा क र रहे हैं, और उनके दासानुदास वन रहे हैं!! देखो

से प्रत्यक्ष विचार शक्ति की प्रबलता.

यह तो फक्त व्यवहार सम्बन्धी कही, ऐसी ही निश्चय सम्बन्ध में भी—अर्थात् आत्मार्थ साध ने में भी विचार शक्तिकी प्रबलता आगध है. इसलिये. परमाचार्यों ने व्यवहार के साधनो के विचार से निश्चय के साधन के विचार शक्तिका विकाश करने विशेष प्रकाश किया है. और पूर्वाचार्यों कर्त अनेक ग्रंथ इस वक्त मिलते हैं. परन्तु जमाना के पलट ने के साथ सद विद्याका भी रूपांतर किया जाता है, और उस जमाने के लोकोको उस पंथ में लगा ने इस वक्त के परमोपकारी पुरुषों पर्यास करते हैं. जिसही हेतु से इस ग्रंथ का भी प्रयास हुवा जाना जाताहै. यह ग्रंथ इस जमाने के मनुष्यों को कुविचारसे निवार सुविचार में प्रवर्त करने सचोट निवडा ऐसा अनुमान वडे २ मुनि महाराजों साध्वियों श्रावक श्राविका जैनके तीनो फिरके (साधू मार्गी, मंदिर मार्गी, दिगाम्बर) के अनेक अन्य मताव लम्बीयों के सेंकडो परशंसा पत्र और याचना पत्र प्राप्त हुवे तथा अभी तक प्राप्त हो रहे हैं जिस पर से किया जाता है.

इस पुस्तक की प्रथम वार १२५० प्रतियां छ

पीथी वो थोडेही काल में सर्व खपगइ जिसे बारह महींने होगये तो भी अभीतक अत्यन्त अग्रह लघुताके साथ बडे २ विद्वानों के सेकडों पत्र आरहे हैं. तब समझा गया कि इस ग्रंथ की द्वीतीयाव्रती की बहुतही अवश्यकता और उपकार का कारण है. और दुसरी आवृती में विशेष शुद्धता करने के लिये ४०० विज्ञासि छपइके "ध्यान कल्पतरु" पुस्तक के पठन में किसीभी प्रकार विरुद्ध लेख या खोटे कसर मालुम हुवा होतो हमें सूचना करने की कृपा कीजीये. और प्रसिद्ध २ स्थान भेजी गइ जिसके उत्तर में फक्त उपकार पत्र में दर्शाये मुजब तीन मुनीवरों की तरफ से शुद्ध होकर प्रतों आइ तदनुसार शब्द शुद्धि करी. और भी भूमिका का विस्तार शुभ, ध्यान में ध्यान साधन की एक शाख अष्ट पत्र की, धर्म ध्यान में निंद्या विषय सह्रोध, षट द्रव्य के स्वरूप का खुलासा. श्लोक सवैया छंद वगैरे पांच फारम (८०पृष्ट) जितने सम्मास की वृद्धि युक्त इस द्वितीया वृति की १५०० प्रत छपाइ. इस आवृती छपाने में जिन २ सद्गृहस्थोंका द्रव्य का सद्व्यय हुवा है जिनका नाम और रकम आश्रय पत्र में दर्शाइ गइ है.

यह ग्रंथ ऐसी स्याद्वाद=अनेकांत सैली से

प्रतिवादन किया गया है कि जैने तो क्या परन्तु स-र्व मतावलम्बीयों इसका अच्छी तरह से लाभ उठा सक्के हैं इसलिये नम्र सुचना की जाती है कि हरेक हितार्थीयों को इसका लाभ लेने में पठन मनन कर ने में वंचित न रहना चाहीये. हम निश्चय के साथ कहते हैं कि दत्तचित से इसका एकही वक्त पठन करने से बिजलिक शक्ति की मुजब कुछ न कुछ गुण तो जरूरही होगा. और जो संपूर्ण तरह इन बचनों को अजमायंगे वो इसही भव में परमानन्द सुखका अनुभव कर सकेंगे तो आगामि भव में परमानन्द अखन्ड सुख प्राप्त करें इस में संशयही नहीं है.

यय ग्रंथ छपना सुरू होतेही यहां श्वेताम्बर साधु मार्गी की कान्फरन्स का पंचवा अधीवेशन होने का नक्की हुवा उसकी तारीख के फक्त दोही महीने रहे ऐसी कम मुद्दत के अंदर ५३ फारम की संपूर्ण पुस्तक छापना और जिल्द वगैरे का सर्व काम होना कितना मुशकिल है यह अनुभव छापा के परिचय वालेही को होता है. ऐसी झडपे पुस्तक तैयार कराने का का मुख्य हेतु ऐसी महान् धर्म परिषद्में पधारे हुवे सर्व धर्म बन्धुओं को एसे ज्ञान सागर पुस्तक का लाभ मिलसके येही था. इसलिये नम्र विनंती

है कि द्रष्टी दोष से रही हुइ अशुद्धियों की तरफ लक्ष न देते मूल आशय की तरफ लक्ष रख गुणही गुण गृहण करना

दक्षिण हैद्राबाद के ज्ञान वृद्धि खाते की तरफ से आजतक--१ जैन तत्व प्रकाशकी ४००० प्रत, २ तत्व निर्णय की २००० प्रत, ३ भीमसेन हरीसेन चरित्र की १००० प्रत, ४ जिनदास सुगुणी चरित्र की १००० प्रत, ५ तीर्थंकर रुहश्री की १५०० प्रत, ६ सिंहल कुमर चरित्र की १००० प्रत, ७ भुवन सुंदरी चरित्र की १००० प्रत, ८ मदन श्रेष्ठ चरित्र की १००० प्रत, ९ चंद्रसेण लीलावती चरित्रकी १००० प्रत, १० केवलानन्द छन्दावलीकी ४५०० प्रत, ११ जैन सुबोधही रावलीकी १००० प्रत, १२ जैन शिशु बोधनीकी १५०० प्रत, १३ भक्तामर स्तोत्रकी २००० प्रत, १४ जैन गणेश बोधकी १५०० प्रत, नित्य स्मरण की ५०० प्रत, १५ (इस) ध्यान कल्पतरू की २७५० प्रत, १६ परमात्म मार्ग दर्शककी १००० प्रत, १७ मंदिरासती चारित्र १००० प्रत, और १८ अनुपूर्वी की ३००० प्रत यों सर्व ३२२५० इतनी पुस्तकों अमूल्य भेट देने में आइये. इस सिवाय बंबई १९ जैना मूल्य सुधाकी १००० प्रत २० धर्मतत्व संग्रह की १५०० प्रत

२१ नित्य स्मरण की २००० प्रत यों २५०० " प्रत इगत पुरी से. और २२ धर्म तत्व संग्रह गुजराती अवृतीकी १२०० प्रतों यों सर्व ४१४५० पुस्तकों महाराज श्री जीके सद्बोध अमूल्य दी गइ है.

देखिये पाठकों! विद्वान मुनिवरों औ उदार परिणामी श्रावको जो जमानेके अनुसार अहनी प्रवर्ती करें तो अन्य उनके ज्ञानादि गुणोंका लाभ लेनेके कितने सद्‌भागी बन शक्ते हैं. यह अनुकरण सर्व मुनिवरों और श्रावको करके अपने इस परम पवित्र धर्म का पुनरोद्धार करेंगे. इस हेतु सेही यह बात यहां चेताइ है.

वीर संवत्सर २४३९,
विक्रमार्क १९७०
गुडी पडवा-चन्द्र.

विज्ञेषु किमधिकं,,
गुणानुरागी,
सुखदेव सहाय ज्वालाप्रशाद.

सूचना.

पहिले छपी हुइ पुस्तकों इस कान्फरन्स के मोके पर सर्व खपगइ है, इसलिये नम्र सूचना की जाती है कि अब नवीन पुस्तके की जाहीरात आपके पढनेमें न आवे यहांतक पुस्तकों मंगाने की तकलीफ नहीं उठाना जी. * * * * * *

सेक्रटरी,
ज्ञानवृद्धि माला.

संख्या	विषय	पृष्ठ

१०२ प्रथम पत्र—पृथक्त्व वितर्क ३५८
१०३ द्वितीय पत्र—एकत्व वितर्क ३६०
१०४ तृतीय पत्र—सूक्ष्म क्रिया ३६१
१०५ चतुर्थ पत्र—समुच्छिन्न क्रिया... ... ३६२
१०६ द्वितीय प्रति शाखा—शुक्ल ध्यान के लक्षण ३६४
१०७ प्रथम पत्र—विवक्त ३६४
१०८ द्वितीय पत्र-वुत्सर्ग ३६६
१०९ तृतीय पत्र—अवस्थित ३६७
११० चतुर्थ पत्र-अमोह ३७०
१११ तृतीय प्रति शाखा शुक्ल ध्यानके आलम्बन ३७३
११२ प्रथम पत्र—क्षम ३७७
११३ द्वितीय पत्र—मुक्ति ३७६
११४ तृतीय पत्र—अज्जव ३७८
११५ चतुर्थ पत्र—मद्दन ३८०
११६ चतुर्थ प्रति शाखा शुक्ल ध्यानकी अनुप्रेक्षा ३८२
११७ प्रथम पत्र—अपाय नु प्रेक्षा ३८२
११८ द्वितीय पत्र—अशुभानुप्रेक्षा ३८४
११९ तृतीय पत्र-अनंत वृतीयानुप्रेक्षा ३८८
१२० चतुर्थ पत्र—विपरिणामाणुप्रेक्षा २९०
१२१ शुक्ल ध्यानके—पुष्प फल ३९२
१२२ उपसंहार ३९४

इत्यानुक्रमणी

श्री जिनवरेंद्रायनमः

ध्यानकल्पतरु

मङ्गलाचरणम्.

गाथा अणुत्तरं धम्म-मुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरंझि ०१२०
सु सुक सुक्कं अपगंड सुक्कं, सांखिंदु एगंतवदात सुक्कं॥ १
अणुत्त रंगं परमं महेसी, असेस कम्मं स विसेह इत्ता॥
सिद्धिं गते साइ मणंत पत्ते, णाणेण सीलेण य दंसणेणं ॥ २
सुयगडांगसुत्र अ० ६.

श्रमण भगवंत श्री महावीर-वर्धमानस्वामी प्रधान-श्रेष्ठ धर्मके प्रकाशक, सर्वोत्तम उज्वलसे अति उज्वल दोष-मल रहित ध्यानकों ध्याया. कैसा उज्वल ध्यान ध्याया? तो के यथा द्रष्टांत-जैसा अर्ज्जुन सुवर्ण उज्वल होता है, पाणी के फण उज्वल होते हैं, शंख और चंद्रमाके किरण उज्वल होते हैं, ऐसा; वल्के इस सेभी अधिक उज्वल, सर्व ध्यानामें श्रेष्ट, ऐसा शुक्ल ध्यान ध्याया. उस ध्यानके प्रसाद से महा ऋषीश्वर समस्त कर्मोंका नाश-क्षय कर निर्मळ हुये, जिस से

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य यह अनंत चतुष्टयकों प्राप्त कर, जो आदि सहित और अंतरहित ऐसी सिद्धगति-मोक्षगति लोकके उपर अग्रभागमें है उसको प्राप्त करी. ऐसे श्रीमहावीर वर्धमानस्वामीजी कों मेरा त्रिकरण विशुद्धि से त्रिकाल नमस्कार होवो!

भूमिका.

ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं,फलं चेति चतुष्टयम्
इति सूत्र समासेन, सविकल्पनिगद्यते॥१

ज्ञानार्णव.

अर्थ—ध्याता कहिये ध्यान करनेवाले. ध्यान कहिये ध्यान अवस्था धारण कर स्थिर बेठना, ध्येय कहीये ध्यानका विषय भूत पदार्थ अर्थात् किसी प्रकारका मनमें विचार करना; और फलं कहिये उस विचारका उस (ध्याता) कों क्या फळ मिलेगा; इन चारोंही बावतोंका यथा बुद्धि इस ग्रंथमें दर्शानेका प्रयत्न करूंगा. उसे पाठकगणों दत्त चित्तसे पढके अशुभसेबच, शुभमें प्रवेशकर, इष्टीतार्थ सिद्ध करने समर्थ बनेंगे.

अपास्य खण्डविज्ञान रसिकां पाप वासनाम्॥
असद्ध्यानानि चोदयं ध्यानं मुक्ति प्रसाधकम्॥

ज्ञानार्णव.

अर्थात्-खण्ड विज्ञान उसे कहते हैं कि-जो क्षयोपशम रागादि सहित ज्ञानमें आसक्त रूप पापकी वासना कों तथा अन्यान्य मतावलम्बियोंके माने हुवे अर्त रौद्रादि जो असत्य ध्यान है उसकों छोडकर, मुक्तिके साधने वाले सत् ध्यान का आदर करना चाहिये कि जिससे इष्टितार्थ सिद्ध हो.

अहो भव्य गणो! अपन चर्म चक्षुसे या हृदय (ज्ञान) चक्षुसे इस विश्ववर्ती में वर्त्तते प्राणीयोंकि वार्त्तयों विचित्र प्रकार की प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा व परोक्ष प्रमाणद्वारा अवलोकन करते हैं, कोइ सुखी कोइ दुःखी, कोइ आनन्दी कोइ शोकी, कोइ हंसता कोइ रोता वगेरा. इन वर्त्तीयोंका आधार चित्त वृत्ति-विचारपरही-रहा हुवा भाष होता है, अर्थात् विश्ववर्त्तीके पदार्थ में भले बुरकी कल्पना कर उसके संयोग वियोगसे लाभ हानी मान संकल्प विकल्प उद्भव होता है, वैसाहि आत्मा वनजाताहै, इस से निश्चय होता है कि-सुख दुःख का मुख्य हेतू विचार-ध्यानही है.

और विशेष इस में यह भाष होता है कि-सव प्राणीयोंको सुख-आनन्द प्रिय है, इसकी प्राप्तिके लिये ज्ञानी, मुमुक्षओ, विषयी, पामर इत्यादि सर्व प्रकारके अधि-

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, यह अनंत चतुष्टयकों प्राप्त कर, जो आदि सहित और अंतरहित ऐसी सिद्धगति-मोक्षगति लोकके उपर अग्रभागमें है उसको प्राप्त करी. ऐसे श्रीमहावीर वर्ध. मानस्वामीजी कों मेरा त्रिकरण विशुद्धि से त्रिकाल नमस्कार होवो!

भूमिका.

ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं, फलं चेति चतुष्टयम्
इति सूत्र समा सेन, सविकल्पान्निगृह्यते॥१

ज्ञानार्णव.

अर्थ—ध्याता कहिये ध्यान करनेवाले. ध्यान कहिये ध्यान अवस्था धारण कर स्थिर बेठना, ध्येय कहीये ध्यानका विषय भूत पदार्थ अर्थात् किसी प्रकारका मनमें विचार करना; और फलं कहिये उस विचारका उस (ध्याता) कों क्या फळ मिलेगा; इन चारोंही बाबतोंका यथा बुद्धि इस ग्रंथमें दर्शानेका प्रयत्न करूंगा. उसे पाठक गणों दत्त चित्तसे पढके अशुभसेबच, शुभमें प्रवेशकर, इप्सीतार्थ सिद्ध करने समर्थ बनेंगे.

अपास्य खण्डविज्ञान रसिकां पाप वासनाम्॥
असद्ध्यानानि चादयं ध्यानं मुक्ति प्रसाधकम्॥

ज्ञानार्णव.

अर्थात्-खण्ड विज्ञान उसे कहते हैं कि-जो क्षयोपशम रागादि सहित ज्ञानमें आसक्त रूप पापकी वासना कों तथा अन्यान्य मतावलम्बियोंके माने हुवे आर्त रौद्रादि जो असत्य ध्यान है उसकों छोडकर, मुक्तिके साधने वाले सत् ध्यान का आदर करना चाहिये कि जिससे इष्टितार्थ सिद्ध हो.

अहो भव्य गणो! अपन चर्म चक्षुसे या हृदय (ज्ञान) चक्षुसे इस विश्ववर्ती में वर्त्तते प्राणीयोंकि वार्त्तयों विचित्र प्रकार की प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा व परोक्ष प्रमाणद्वारा अवलोकन करते हैं, कोइ सुखी कोइ दुःखी, कोइ आनन्दी कोइ शोकी, कोइ हंसता कोइ रोता वगेरा. इन वर्त्तीयोंका आधार चित्त वृत्ति-विचारपरही-रहा हुवा भाष होता है, अर्थात् विश्ववर्त्तीके पदार्थ में भले बुरेकी कल्पना कर उसके संयोग वियोगसे लाभ हानी मान संकल्प विकल्प उद्भव होता है, वैसाहि आत्मा बनजाताहै, इस से निश्चय होता है कि-सुख दुःख का मुख्य हेतू विचार-ध्यानही है.

और विशेष इस में यह भाष होता है कि-सब प्राणीयोंको सुख-आनन्द प्रिय है, इसकी प्राप्तिके लिये ज्ञानी, मुमुक्षुओ, विषयी, पामर इत्यादि सर्व प्रकारके अधि-

कारी जन स्वकल्पित आनन्द प्राप्त करनेको अनेक विधी चेष्टा कर रहे हैं,* कोइ ज्ञान, कोइ योग, कोइ भक्ति, कोइ धर्म. तो कोइ धन प्राप्ति, स्त्री काम संयोग पुत्रका प्यार इत्यादि अनेक वर्त्तीयों में मशगुल बने हुवे द्रष्टि गत होते हैं. अखन्डानन्द प्राप्ति के वास्तेही आज तक अनेक शास्त्र की रचना हुइ है,अनेक कार्य-क्रिया अनुष्टानकी योजना हुइ है, और प्रति दिन नविन २ सुधारे होतेही जाते हैं, ऐसी तरह सर्व देशमें सर्व काल में सर्व स्थिति में जोजो अनादि कालसे प्रवर्त्ती बनरही है सो आनन्द प्राप्त करने के लियेही; तोभी आजतक सर्व विश्ववासी प्राणीयो अखंड पूर्णानन्दी नहीं बने ! ऐसा कोइ भी ग्राम देश द्रष्टीगत नहीं होता है कि जहां अखन्डानन्द वर्तता हो. जहां देखें वहां शोक मोह दुःखकी थोडी बहुत प्रतिछांह का अनुभव हुवाही रहता है, जिसे देखो वो अखन्ड आनंदके लिये तडफही रहाहै .इससे सुविदित होताहै

---

* पाठकगणो ! ज्ञान भक्ती योग धर्म यह आनन्द प्राप्ति का उपाव है परन्तु एकान्त नहीं पूर्ण नही, इसका खुलासा आगे ग्रन्थावलोकनसे होगा, इस लिये यहां कीसी प्रकार विकल्प न किजीये.

कि-जिसकी प्राप्तिके लिये प्राणीयों प्रयास कर रहे हैं उसकी प्राप्ति का जो सच्चा उपाय है वो हाथ नहीं लगा. और जिस २ प्रयास में अल्पज्ञ व अज्ञ मनुष्य लगरहे हैं वो अखन्डानन्द प्राप्तिका सच्चा उपायभी नहीं है. और कपोल कल्पित उपायसे इष्टीतार्थ सिद्धीभी नही होता. जो होता तो वरोक्त उपाय करने वाले आज पर्यंत दुःखी नहीं रहते.

और ऐसाभी नहीं है कि अखंडानन्द प्राप्तिका उपाय कोइ दुनियामे हैही नहीं. यहतो सत्य समाझिए कि जो वस्तु होती है उसके लियेही प्रयास किया जाता है. परन्तु सच्चा उपाय नहीं मिलनेसे वो कार्य जब सिद्ध नहीं होता है, तब अल्पज्ञ अज्ञानता धारन कर नास्तिक बन जाते हैं. सब कल्पनाओको साधनो को आकाश कुसुमकी प्राप्तिका उपाय जैसा निकमा जान छोडे बैठते हैं. और पुद्गलानन्द में मशुगुलबन "खिणमित्त सुखा बहुकाल दुखा" अर्थात-क्षणेक कल्पित सुख भोगव अनन्त काल तक दुःख के भुक्ता बन जाते हैं. यह बात भी प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध हो रही है.

ऐसे पामर प्राणीयों की दिशाका अवलोकन कर सर्वज्ञ कि जिनोने जिस पर्यास कर अखन्डानन्द प्राप्त

किया, उसका जिनके अतः करण में पूर्ण निश्चय हो गया, उंस उपावको वीश्ववर्तीमें अखन्डानन्द प्राप्तिके इच्छक, उसके असत् उपाव के उद्यम में अत्यन्त पीडित होते जीवों को देख करूणा सिंधूका हृदय सद्रदित हुवा, और अनन्त दान लब्धी की जो शक्ति आत्मामें प्रगट हुइथी उसका सद्व्यय कर सर्व जीवों को अखन्डानन्दी बनाने सब समझ ऐसी अनेक देशकी भषा मिश्रित अर्ध मागधी भाष में महा परिषदमें सद्बोध का प्रकाश किया. जिसे श्रवन मनन पूर्वक आराधन कर अन्तान्त जीवोंने अखडानन्द प्राप्त किया उसही प्रभावको आगे चालू रखने उन महात्मा सर्वज्ञ के शिष्य वर्योंने भविष्य काळके भव्यो पर परमोकार की बुद्धिसे शास्त्रोंकी रचना रची सो वर्तमान समयं में परमोपकार कर रहे है.

उन शास्त्रोंमें अखन्डानन्द प्राप्तिका सत् उपाय पृथक २ विविक्षित होनेसे व अर्ध मागधी भाषा में होने से वर्तमान कालके अल्पज्ञोको पूर्ण पणे लाभकी प्राप्ति होनेका अभाव जान इस वक्त अनेक देशकी प्रचालित भाषांमें ग्रंथ रचागये हैं.

जिन प्राचीन व अर्वाचीन ग्रंथोंका अवलोकन से

व विश्ववर्ती प्राणीयों की प्रवार्त्तिके अवलाकनेसे निश्चय से भाष होताहै कि सुख दुःख का मुख्य हेतू ध्यान-विचार-मन की प्रवार्त्तिहीहै. अर्थात्—ध्याता ध्येय रूप बन जाता है. जिससे शुभाशुभ पवर्त्ती होती है और जिससेही सुख दुःख की प्राप्ति होती है.

वो ध्यान क्या पदार्थ है? कितने प्रकार का है? कैसे ध्याता ध्येय रूप बनता है? सुखी दुःखी होता है? कोन से ध्यान से अखन्डानन्द की प्राप्ति होती हैं ? जिसका खुलासे वार स्वरूप जानने का-अनुभावनेक और प्राप्त करनेका उपाव इस ध्यान कल्पतरुकी छांय में दत्त चित्तसे विश्रान्ती ले रमण करनेसे आपको अनुभव प्राप्त होसकेगा.

स्कन्ध.

ध्यान शब्दकी धातु "ध्यै" है, ध्यैका अर्थ-अंतःकरण में विचार करना-सोचना ऐसा होता है. ध्यान के भेद शास्त्र में इस प्रकार किये हैं:—

शाखा

सूत्र—से किंतं झाणे,?झाणे! चउविहे पण्णते तंजहा:-

अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे,

उववाई सूत्र.

अर्थ—शिष्य सविनय प्रश्न करता है कि-गुरु महा राज! ध्यानके भेद कितने हैं?

गुरु—हे शिष्य! ध्यान के चार भेद भगवंतने फरमाये हैं, वैसेही मैं तेरेसे अनुक्रमें कहताहूं; १ आर्त ध्यान, २ रौद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान; और शुक्ल ध्यान. अतःकरणमें विचार दो तरहका होता है:—१ कभी अशुभ अर्थात् बुरा. और कभी शुभ अर्थात्अच्छा. अशुभ विचारकों अशुभ ध्यान, और शुभ विचारको या शुद्ध विचारको शुभ या शुद्ध ध्यान कहते हैं.

उपर कहे सूत्रमें अशुभ ध्यानके दो भेद किये हैं आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान. तैसे शुभ ध्यानकेभी दो भेद कियेहैं—धर्म ध्यान, और शुक्ल ध्यान, इन चारोंही का सविस्तार वर्णन आगे अलग २शाखाओंमें किया जायगा.

" अशुभ ध्यान "

ऊपर कहे चार ध्यानोंमेंसे, अव्वल अशुभ ध्यान, का वर्णन् करताहूं, क्योंकि मोक्षार्थी अशुभ ध्यानका

स्वरुप समजेंगे तब उससे बचकर शुभमें प्रवेश करनेको प्रयत्न वंत हो सकेंगे.

श्लोक—अज्ञात वस्तु तत्त्वस्य रागा द्युप हतात्मनः।
स्वा तन्त्र्य वृत्तिर्या जन्तो स्तद सद्धया न मुच्यते॥
ज्ञानार्णव

अर्थ-जिसने वस्तु का यथार्थ स्वरूप नहीं जाना, तथा जिसका आत्मा राग द्वेष मोह इत्यादि दुर्गुणों से पीडितहै ऐसे जीव की स्वाधीन प्रवृत्तिको अप्रसस्त अशुभ ध्यान कहा जाता है. यह ध्यान जीवों के स्वयमैव (बिना उपदेश) होता है. क्योंकि यह अनादि वासनाहै.

इसके दो भेदोंमेंसे प्रथम आर्त ध्यान का स्वरूप यहां बताते हैं:—

प्रथम शाखा-"आर्तध्यान"

इस जगत निवासी सकर्मी जीवोंको शुभाशुभ कर्मोंके संयोगसे इष्ट (अच्छे) का संयोग (मिलाप) और अनिष्ट (बुरे) का वियोग (नाश) तथा अनिष्टका संयोग और इष्टका वियोग अनादिसे होताही आया है; उससे जो मनमें संकल्प विकल्प उत्पन्न होता है उसेही 'आर्त ध्यान' समझना. जिनेश्वर भगवाननें जिसके मुख्य चार प्रकार कहेहैं.

प्रथम प्रतिशाखा-आर्त 'ध्यानके भेद'

अट्टे झाणे चउ विह पण्णंते तंजहाः- १ अमणुण संपओग संपउत्ते, तस्स विप्प ओगसंति समणा एगययावी भवात्ति. २ मणुण संप्पओग संपउत्ते, तस्स अवीप्पओग संति समणा गएया अभवंत्ति, ३ आयंक संपओग संपउत्ते, तस्सविप्पओग संत्ती समणे गएयावी भवत्ति. ४ परिझूसिया काम भोग संपउत्ते, तस्स अविप्पओग संत्ति समणाएगया विभवत्ति.

उववाइ सूत्र.

अर्थ—आर्त ध्यान चार प्रकारसे भगवंतने फरमाया सो कहतेहैं:—१ अमन्योग्य (खराब) शब्दादिक का संयोग होनेसे विचार होवे कि इनका वियोग (नाश) कब होगा; इसकों अनिष्ट संयोग नामे आर्त ध्यान कहना. २ मन्योग्य (अच्छे) शब्दादिका संयोग (प्राप्ति) होनेसे विचार होवे कि- इनका वियोग कदापि न होवो; इसे इष्ट संयोग आर्त ध्यान कहना. ३ ज्वर, कुष्टादि अनेक प्रकारके रोगोंकी प्राप्ति होनेसे विचार होवे कि- इनका शीघ्र नाश होवो. इसे रोगादय आर्त ध्यान कहना. ४ इच्छित काम भोग की प्राप्ति होनेसे विचार होवे कि-इनका वियोग कदापि न होवो, इसे

भोगीच्छा आर्त ध्यान कहना.

प्रथम पत्र-"अनिष्ट संयोग"

१ "अनिष्ट संयोग नामे आर्त ध्यान," सो जीवने अपने शरीरको, स्वजन स्नेहीआदि कुटुम्ब को, सुवर्णादि धनको, गोधुमादि (गेहुंआदि) धान्य (अनाज) गवादि (गोआदि) पशु, और घरादिको अपने सुख दाता मानालिये हैं. इनके नाश करनें वाले-सिंह-सर्प-बिच्छू-खटमल-ज्युकादि जानवर. शत्रू चोर-नृपादि मनुष्य. नदी-समुद्रादि जलस्थान. अग्नी, वच्छनाग-अफीमादि विष. तीर-तरवारादि शस्त्र. गिरिकंदरादि मृतिकास्थान; तथा भूतादि व्यंतर देव. इत्यादि भयंकर वस्तुके नाम श्रवणकर, स्वरूप अवलोकन (देख) कर, या स्मरण होनेसे, तथा प्राप्त होनेसे मनको संकल्प विकल्प (घबराट) होवे, तब इनके वियोगकी इच्छा करे कि, ये मेरा जीव लेने क्यों मेरे पीछे लगे हैं; मुझे क्यों सतारहेहैं. हे भगवान ? इनका शिघ्र नाश होवे तो बहुतही अच्छा. ऐसा चिंतवन करे उसे तत्त्वज्ञ पुरुषोंने आर्त ध्यानका प्रथम भेद कहाहै.

द्वितीय पत्र-"इष्ट संयोग"

२ "इष्ट संयोग नामे आर्त ध्यान" सो.

श्लोक– राज्योप भोग शयना सन वाहनेषु;
स्त्रीगंध माल्य वर रत्न विभूषणेषु;
अत्याभिलाष मतिमाव सुपैति मोहाद्,
ध्यानं तदार्त्तमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः

सागार धर्मामृत.

इष्टकारी, प्रियकारी, राज्येश्वर्यता, चक्रवर्ति, बलदेव, मांडालिक राज्य, तथा सामान्य राज्यकी ऋद्धी. भोग भूमि (जुगलिया) के अखंड सौभागय सुख, मंत्रीश्वर (प्रधान) श्रेष्ठ सेनापतियोंके विलास, नव योवना (मनुष्य देव संबंधी) स्त्रीयोंके संग काम भोगकी, पर्यंकादि (पलंगादि) सय्या, अश्व, गज, रथादि वाहनो (सवारी) की. चुवा, चंदन, पुष्प, अत्तरादि सुर्भीगंध पदार्थोंके सेवनकी, रत्न रजत(चांदी) सुवर्णादिके अनेक प्रकारकेभूषण-दागीने. व रेशमी, जरी जर तारके वस्त्रोंसे शरीरकों अलंकृत-सुशोभित कर, मनो हर रूप बनानेकी. इत्यादि तरह२ के काम भोगों भोगवने की जो मोह कर्मके उदयसे अभीलाषा होती है, तथा उपरोक्त पदार्थोंकी प्राप्ति हुइ है उसका उप भाग लेते जोअंतःकरणमें सुख—अल्हाद उत्पन्न होता है, कि मैंकैसे इच्छित सुखका भुक्ता हुं. या उनकी वारम्वार अनुमोदन करनेसे, अहा ! वगैरे स्वभाविक

उद्गार निकलते अंतःकरणमें आनंद का अनुभव करते जो विचार होताहै, उसे तत्वज्ञोनें आर्त ध्यानका दुसरा प्रकार कहाहै.

॥ पाठांतर ॥ कितनेक आर्त ध्यानका दुसरा प्रकार "इष्ट वियोग" कहतेहैं, अर्थात्—कालज्ञानादि ग्रंथमें बतलाये हुये स्वरादि लक्षणोंसे, या जोतिषादि विद्याके प्रभावसे, शरीरका वियोग स्वल्प [थोडे] कालमे होता जाण, विचार उत्पन्न होय कि—हायरे! अब में यह सुंदर शरीर, प्यारे कुटुंब स्नेहीयों, और कष्टसे उपार्जन की हुइ लक्ष्मीका त्याग कर चले जाऊंगा! तथा अपने सहाय्यक स्वजन मित्रोंके वियोग से मूर्च्छित हो गिर पडे, विलापात, आत्मप्रहार[1] या मृत्युका चिंतवन करे; गृह [घर] संपत्तिका किसीने हरण किया, अग्नी से जल [बल] गया, पाणीमें वहगया—या डूब गया, पृथवी गत निधान [धन] विद्रुप* होके निकला. राजा पंचोनें हरण किया. व्योपारादिमें टोटा पडगया. या नामूनके लिये मदमें छकाहुवा लग्नादि कार्यमें अधिक व्यय करनेसे, अशक्तता दारिद्रतादि दुःख प्राप्त होनेसे पश्चाताप करे कि-

---

[1] सिर छातीआदी कूटना. * गड्डा हुवा धन्न कोयले पाणी वगैरे द्रष्टी आता है.

हाय ! हाय !! अब क्या करूं ? वगैरे. इत्यादि अंतःकरणका विचारभी दुसरा आर्त ध्यान है. और इन्द्रियोंको पोषणे अनेक वाजिंत्र वाराङ्गणा [नाटकणी]‡ पुष्प बाटिका‡ अत्तर,—अबीरादि, षट्रस भोजन, वस्त्र भूषण, सयनाशन, वगैरे' विनाश हुये पदार्थोंका संयोग मिलाने अनेक पापारंभ कार्यका चिंतवन करे, सोभी आर्त ध्यान.

तृतीय पत्र—"रोगोदय"

३ "रोगोदय आर्त ध्यान सो"—(१)सब जीव आरोग्यतादि—सुखके इच्छक हैं. परन्तु अशुभवेदनिय कर्मोंदयसे जो जो रोग—असाताका उदय होताहै,उसे भोगवे बिन छुटका नहीं. श्रीउत्तराध्येनजी सुत्रमें फरमायहै कि "कडाण कम्मण न मोक्ख अत्थी"अर्थात् कृत्त कर्मोंका फल भुक्ते बिनछुटका नहीं.● मनुष्य के शरीरपर साडे तीन करोड रोम गिने जाते हैं; और एकेक रोम (रुम-बाल) के स्थानमें पोंणे दो

‡ नाचनेवाली. ‡ बगीची.

● कृतकर्म क्षयो नास्ति, कल्प कोटी शतैरपि;
अवश्य मेव भोक्तव्यं, कृतंकर्म शुभाशुभम्.

४३२०००००० इत्ने वर्षोंका एक कल्प किया जाता है. ऐसे क्रोडों कल्पमेंही किये हुये कर्मोंका फल भोगवे बिन छुटका नहीं होता है ! ?

रोग कहते हैं; तो विचारीये! यह शरीर किते रोगोंका घर है! जहांतक साता वेदनीय कर्मका जोर है, वहांतक सब रोग दबे [ढके] हुये हैं. और पापोदय होते, कुष्ट [कोढ], भगंदर, जलंदर, अतिसार, श्वाश, खास ज्वरादि, अनेक उदरविकार रुधिरविकारादि से भयंकर; रोग उत्पन्न हो पीडा [दुःख] देतेहैं; तब चित्त आकुल व्याकुल हो अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न होतेहैं. सो तीसरा आर्त ध्यान(२) और उन रोगोंका निवारण करने,अनेक औषधोपचारके लिये; अनंत काय एकेंद्रीयसे लगा पंचेंद्रिय तक जीवों का, अनेक तरह आरंभ, समारंभ, छेदन भेदन, पचन पाचनादि, क्रिया करनेका अंतःकरणमें विचार होवे; शीघ्रतासे उनका नाश करने चटपटी लगे; उनकी हानी वृद्धीसे हर्ष शोक होय, हेप्रभू!स्वप्नन्तरमें भी ऐसा दुःख मत होवो. इत्यादि अभिलाषा होवे सोभी तीसराआर्त ध्यान

चतुर्थ पत्र—"भोगेच्छा"

४ "भोगेच्छा आर्तध्यान" सो — १पांच इन्द्रिय सम्बंधी काम भोग*भोगवणे की इच्छा होय. अर्थात्-श्र-

*पांच इंद्रियोंमें कान और आँख यह दो इंद्रियकामी हैं अर्थात् शब्द सुनना और रूप देखना यह दो काम देती हैं. और, घ्राण, रस, स्पर्श ये तीन भोगी हैं अर्थात्, गंध, स्वाद, और स्त्रीयादिका उपभोग लेतीहैं.

श्रोणेंद्री [कान] से, राग रागणी, कीन्नरियोंके गायन, और बाजिंत्रोंका मंज्जुल मनोहर राग सुननेमें, चक्षुरेंद्री आँख सेनृत्य नाच षोडश शृंगारसे विभूषित स्त्री पुरुष, बगीचे, आतशबाजी(दारू)के ख्याल, मेहल मंडपोंकी सजाइ, रोशिनी वगैरेकों देखनेमें, घ्राणेंद्रिय(नाकसे) अतर पुष्पादि सुगंधमें, रसेंद्री(जिव्हा)सें, षट रस भोजन, अभक्ष भक्षण में. और शयनासन, वस्त्र भूषण, स्त्रीआदिके बिलास भोगमें, आनंद मानना, इनका संयोग सदा ऐसाही बनारहो. तथा मैं बडा भाग्यशाली हुं, के मुझे इच्छित सुखमय सर्व सामग्रीप्राप्त हुइहै, वगैरे खुशी माननी सो भोगेच्छा आर्त ध्यान. २ और भोगांतराय कर्मोंदयसे, इच्छित सुख दाता सुसामग्रीयोंकी प्राप्ति नहीं हुइ, अन्य राज एश्वर्य, या इन्द्रादिकको ऋद्धि सुखका भोग लेते देख, तथा शास्त्र ग्रन्थ द्वारा श्रवण कर, आपकें प्राप्त होने की अंतःकरणमे अभिलाषा करे कि हे प्रभु! एकार्ध्द राज्य मुझे मिल जाय, या कोइ देव मेरे स्वाधीन वश होजाय, तो मै भी एसी मोज म जा भुक्त के मेरा जन्म सफल करूं. जहां तक ऐसे सुख मुझे न मिलें, वहां तक में अधन्य हूं. अपुण्यहूं वगैरे विचार करे. (३) और तप, संयम, प्रत्याख्यान (पच्चक्खाणा) दि करणी कर, (नियाणा) निश्चयात्मक

वाछ] † करे, की मेरी करनी के फलसे मुझे राज्य और इन्द्रादिक के वैभव (सुख) की प्राप्ति होवो (४) और अपनी (करणीके प्रभावसे आ. शिर्वाद दे,) अन्य स्वजन मित्रादि को धनेश्वरी सुखी करनेकी अभिलाषा करे, (५) और अपने स्वजन मित्र या पडोसी को सुखी देख आपके मनमें झूरणा करे. कि सबके बीच मैंही एक दरिद्री कैसे रहगया ? वगैरे इत्यादि विचार अंतः करण में प्रवृते सो आर्त ध्यनका चौथा प्रकार जानना.

द्वितिय प्रतिशाखा-आर्तध्यानकेलक्षण

अट्ट स्सणं झाणस्स चत्तारि लख्खणा पण्णता तंजहाः— १ कंदणया, २ सोयणया, ३ तिप्पणया, ४ विलवणया.

उववाइ सूत्र.

अस्यार्थः—"आर्त-ध्यानीके चार लक्षण" सो १ आक्रंद—रुदन करे. २ शोक (चिन्ता) करे. ३ आ

---

†दशा श्रुतस्कंध सूत्रमें, नियाणे दो प्रकारके फरमाये हैं:— १ भवप्रत्येक सो—संपूर्ण भवतक चले ऐसा निदान करे, जैसे नारायण वासुदेव पदके नियाणेंसे होते हैं, उनको व्रत—प्रत्याख्यान संजम न होवे. और २ वस्तु प्रतेक सो किसी वस्तुका प्राप्तीका निदान करे, जैसे द्रोपदीजी, उन्हे वस्तु न मिले वहां तक सम्यक्त्व प्राप्त न होवे.

खोंसे अश्रू डाले. ४ विलापात करे.

आर्त ध्यान ध्याता कों बाह्य चिन्होसे पहिचान-नेके लिये भगवाननें सूत्रसें ४ लक्षण फरमाये हैं १-सो अनिष्टका संयोग. २ इष्टका वियोग, ३ रोगादि दुःखकी प्राप्ति, और ४ भोगादि सुखकी अप्राप्ति; यह चार प्रकारके कारण निपजनेसे, सकर्मी जीवों कों कर्मोकी प्रबलता से स्वभाविकही चार काम होते हैं.

प्रथम पत्र-"कंदणया"

१ कंदणया=आक्रंद रुदन करे, कि हायरे मेरे! सु संयोगका नाश हो ऐसे कु संयागकी प्राप्ति क्यों होती है? हा देव! हा प्रभू!! इत्यादि विचार उद्भवनेसे अरडाट शब्दसे रुदन करे.

द्वितीय पत्र-"सोयणया"

२ सोयणया-सोच चिन्त करे, कपालपे हाथ धरे, नीची द्रष्टीकर सुन्नमुन्न हो बैठे, पृथवी खने (खोदे) तृण तोडे, बावला जैसा बने, तथा मूर्छितहो पडारहे

तृतीय पत्र-"तिप्पणया"

३ तिप्पणया-*आंखोंसे अश्रुपात करे, वातर में

* श्लेष्मा श्रुचांध वैमुक्तं, प्रेतोंभुंक्त यतोऽवशः॥

उस वस्तुका स्मरण होतेही रो देवे ऊंडे निश्वास डाले.

चतुर्थ पत्र-"विलवणया"

४ विलवणया—विलापात करे. अंग पछाडे- हृदय-पे प्रहार करे; बाल तोडे हाय ओय जुलूम हुवा, गजब हुवा, बडा जबर अनर्थ हुवा, वगैरे भयंकर शब्दोच्चारण करे, और क्लेश टंटे झगडे करे, तथा दीन दयामणे शब्दोच्चारण करे. वगैरे सब आर्त ध्यानीके लक्षण जानना. और भी आर्त ध्यानी के लक्षणः

शङ्का शोकभय प्रमाद कलह चिन्ता भ्रमोद्भ्रान्तयः
उन्मादो विषयोत्सुक त्वम सक्वन्निद्राङ्ग जाड्यश्रमः ॥
मूर्च्छा दीभि शरीरिणाम विरतं लिङ्गानि बाह्य न्यल—
मार्ता धिष्टत चेतसां श्रुत धरै व्यवर्णितानि स्फुटम् ॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ—प्रथमतो हर बातों में शंका[संदेह]होताहै. फीर शोक, भय, प्रमाद, असावधानी, क्लेश, चित्तभ्रम भ्रान्ती, विषय सेवन कीउत्कंठा, निरंतर निद्रगमन, अंगमें जडता, शिथिलता, चित्तमेंखेद, वस्तु में मूर्च्छा, इ

अतो न रोदितव्यंहि, क्रियाः कार्याः स्वशक्तिभिः

भरने वालेके पीछे उसके स्वजन सेही रुदन करके अश्रु और श्लेषाम डालते हैं. उस को मरने वाले खाते हैं. ऐसा मिताक्षर ग्रंथमें कहा है.

त्यादिचिन्ह अर्तध्यानी के प्रगट होते हैं,ऐसा शास्त्रके पार गामी विद्वानोंका फरमान है.

आर्तध्यानके "-पुष्प और फल"

आर्त ध्यानीकों अप्राप्त-वस्तुकों प्राप्त करने की अत्यंत उत्कंठा (आशा वांच्छा) रहतिहै. अहोनिश उधरही लक्ष लगा रहता है, जिससे अन्य कामका अनेक तरहसे बीगाडा होताहै, हरकत पडतीहै. धर्म करणि संयम तपादि कर के भि *कुंडरिक की तरह यथा तथ्य लाभ प्राप्त करसक्ते नहीं हैं.

---

*जबू द्वीपके पुर्व महाविदेहकी, पुष्कलावती विजयकी, पुंडरीकणी राज्यधानीके, पद्मनाभ राजाके. कुंडरिक कुँवरने दिक्षा धारण करी. पुंडरीक कुंवरको राज प्राप्त हुवा, भाइको राज्य सुख भोगवते देखे कुंडरीक का मन ललचाया. और गुरुका संग छोड मेहलके पीछेकी अशोक वाडीमें गुप्त आके बैठे.मालीसे खबर मिलतेही पुंडरीक राजा तुर्त भाइके दर्शन करने आये,और मुनिका चित्त उदास देख पुछनेसे उनने राज वैभवकी परशंसा करी मुनिका मन चलीत देख, राजा अपने वस्त्र भूषण उतार मुनिकों दिये और मुनिका उतारा हुवा वेष राजा धारण कर गुरुजीके दशर्न करने चले, तीन दीन उपवाससें गुरुजीको भेट,लुक्खम, सुक्खम शुद्ध अहार भोगवनेसे अत्यंत पीडा [दुःख]हुवा और आयुष्यपूर्ण कर सर्वार्था

अखंड पूरे पुण्य पोते हुये विन तो इष्ट वस्तु की प्राप्ति होना, और स्थिर रहना होही नहीं सक्ता है; जो अप्राप्ति से या प्राप्त हो कर नाश होनेसे उस वस्तुके लिये झुर २ के मरते हैं; उनका कुच्छभी कार्य न होता है. ऊलटे, नमीराज ऋषिके फरमाये प्रमाणे "कामे पत्थ व माणा, अकामा जंति दुग्गई" अर्थात्— अप्राप्त हुये अनमिले कामभोगोंकी प्रार्थना (वांच्छा) करता हुवा, कामभोग विन भोगवेइ, वो मरके दुर्गति (खराब गति नरक तिर्यांचा दिगति में) जाता है. और कभी किंचित् पुण्योदयसे मनुष्य गति पाया तो दुःखी, दरिद्री, हीन दीन होवे; और जो कदापि देवता हो जाय तो [†]अभोगिया देव हो सदा स्वामि के हुकमाधीन रहकर अनेक कष्ट भोगते हैं. मालककी खुशी में अपनी खुशी मना नी पडती है. भोगांत

सिद्ध विमानमें देवता हुये. पीछेसे कुंडरीक राज्य वेश धारण कर राज्य सुख भोगनेमें अत्यंत लुब्धहुये. ताकत-बडनेके लिये मांस मदिरादि अभक्षका भक्षण करनेसे अत्यंत असह्य वेदना उत्पन्न हुइ. तीन दिनमें आयुष्य पूर्णकर भोग विन भोगवेही मरके सातमी नरक गये.

[†]नोकर देव स्वामिके लिये विमाण यणावे, या उठावे, सनाके देवअश्वादि पशूका रूप बनाकर सवारी देवें सो अभोगिया देव.

राय कर्मोदयसें, प्राप्त हुये पदार्थोंका भी भोग नहीं लेसक्ता है; अन्यके भोग सुख देख झुरना पडता है. आर्त ध्यान ऐसी पक्की मोहब्बत करता है कि भवांतरोंकी श्रेणियों (भ्रव-भ्रमण) में सातही बना रहता है, प्रीति नहीं तोडता है,

[२] और आर्त ध्यानि प्राप्त हुवे भोग सुखपे अत्यंत लुब्ध (गृधी) होता है. [देवादिक के सुख अनंत वक्त भुक्त के भी ऐसा समजता है] जाणे ऐसी वस्तु मुझे कहिंभी मिलीही नहीं थी, ऐसा जाण, उसको क्षणमात्रभी अलग नहीं करता है. ऐसी अत्यंत असक्तताके योगसे, इस भवमे शूल सुजाक गरमी चित्तभ्रमादि अनेक रोगोंसे पिडित हो, औषधि पथ्यादिमें संलग्न हो, प्राप्त हुये पदार्थ भोगव नहीं सक्ता है. घरमें रही हुइ सामग्रीयोंकों देख २ झुरताही रहता है. इस रोगसे कब छुटूं और इनका भोग लेवूं ! !

(३)औरभी आर्तध्यानीकों जो वस्तु प्राप्त हुइ है उससे दूसरी वस्तु अधिक श्रवण कर, या देख कर उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा होती है; यों उत्तरोत्तर वस्तुओं भोगवनेकी अभीलापही अभीलाषा में उसका जन्म पूरा हो जाता है; वृद्धावस्था प्राप्त हो जाती है,

तो भी इच्छा-तृष्णा तृप्त नहीं होती है. भृर्तृही ने कहाहै कि—"तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा" अर्थात् हम जीर्ण [बृद्ध] होगये, परंतु तृष्णा-वांच्छा जीर्ण न हुइ. ! क्यों कि इस श्रष्ठी में एकक से अधिक २ पदार्थ पडे हैं, वो सब एकही वक्तमें तो प्राप्त होही नहीं सक्ते हैं. प्राप्त हुये विन तृष्णावंतकी तृष्णा भी शांत नहीं होतीहै; और तृष्णा शांत हुये विन दुःख नहीं मिटता है. इस विचार से निश्चय होता है कि-आर्त ध्यान सदा एकांत दुःखही का कारण है. जैसा यह इस भवमें दुःख दाता है; इससेभी अधिक परभव में दुःखप्रद समजीये. क्योंकि जो प्राप्त वस्तुपे अत्यंत लुब्धता रखता है. जिससे उसके बज्र (कठिण-चीकणें) कर्म बंधतेहैं. वो कर्म फिर दुर्गतियों में ऐसे दुःख दाता होयेगें कि-रोते २ भी नहीं छूटेंगे. ऐसा विचार सम्यग दर्शीश्रावक साधु इस आर्तध्यानका त्याग कर सुखी होनेका उपाय करें.

यह आर्त ध्यान सकर्मि जीवोके साथ अनादि कालसे लगा है, यह विना संस्कार स्वभाव सेही उत्पन्न होता है. यह प्रथम क्षणमें रमणिक है तथापि अंत क्षणमे अपथ्य अहार जैसा दुःख प्रद होता- है. इसके चार पाये तो पांचवे गुणस्थान पर्यान्त होते हैं. और निदान विन तीन पाये छट्ठे गुणस्थान

तक होते हैं. इस ध्यान वाले के कृष्ण, नील, कपोत यह तीनही अशुभ लेशा रहती है,इस ध्यानमें मरनें वालेकी विषेश कर तीर्यंच गतीही होती हे. यह ध्यान 'हेय' अर्थात् छोडने योग्य है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके
सम्प्रदाके बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक
ऋषिजी रचित ध्यानकल्पतरु ग्रन्थ
की प्रथमशाखा आर्तध्यान नाम
समाप्तः
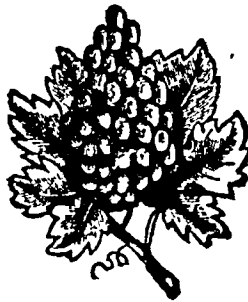
द्वितीय शाखा– "रौद्रध्यान"

श्लोक – रुद्र क्रूराशयः प्राणी प्रणीत स्त त्त्व दर्शिभिः।
रुद्र स्य कर्म भवो वा रौद्र मित्याभि धीयते ॥

ज्ञानार्णव,

अर्थ–जो क्रूर आशय (परिणाम) वाला प्राणी होता है उसे रुद्र कहा जाता है, और उस रुद्र प्राणी के कार्य अथवा भाव-परिणाम को रौद्र ध्यान कहा जाता है.

जैसे मदिरा पान करने से मनुष्य की बुद्धि विकल हो जातिहै, और वो विशेषत्व क्रूर कर्मों में ही आनन्द मानता है, तैसेही जीव अनादि काल से कर्म रूप मदिरा के नशेमें मतवाले हुये हुवे कुकर्मों में ही आनन्द (मजाह) मानते हैं. उन कुकर्मोंके आनन्द से जो अन्तः करण में विचार होताहै उसे तत्त्वज्ञ पुरुषों ने रौद्र–भयानक ध्यान फरमाया है.

प्रथम प्रतिशाखा-"रौद्र-ध्यानके भेद"

सूत्र–रोद्दे झाणे–चउविह पण्णते तंजहा–१ हिंसाणुबंधी, २मोसाणु बंधी, ३ तेणाणु बंधी, ४सारक्खणाणुबंधी.

अर्थ—रौद्र भयंकर (ध्यान) के चार प्रकार भगवंत ने फरमाये सो यहां कहते हैं:—१ हिंसानुबंधी रौद्र ध्यान सो-हिंसक कर्मोंका अनुमोदन (परशंसा) करे, २ मृषानुबन्धी रौद्र ध्यान सो-मिथ्या (झूठे) कर्मोंका अनुमोदन करे, ३ तस्करानु बन्धी रौद्र ध्यान सो-चोरी के कर्मोंका अनुमोदन करे, और ४ संरक्षणानु बन्धी रौद्र ध्यान् सो-विषय सुख के रक्षक कर्मों का अनुमोदन करे. इस चारोंहि का आगे सविस्तर वरणन् किया जाता है.

प्रथम पत्र-"हिंसानुबंधी"

१ "हिंसानुबंधी रौद्र ध्यान" सो:—

संछेदनैर्दमनैर्ताडिनै तापनैश्च,
बन्ध प्रहार दमनैश्च विकृन्तनैश्च;
यस्येह राग मुपयाति नचानु कम्पा,
ध्यानंतु रौद्र मिती तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञा;

सागर धर्मामृत.

अस्यार्थ—छेदन, भेदन, ताडन तापन—करना.—वन्धन बांधना, प्रहार मारना, दमन करना, कुरूप करना, इत्यादि कर्मोंमें जिसका अनुराग [प्रेम] होवे, और यह कर्म देख जिसको दया नहीं आवे, सो

हिंसानुबन्धी रौद्र ध्यान.

[१] 'दुःख किसकों भी प्रिय नहीं है,' बेचारे जीव कर्माधीनतासे, पराधीनता, निराधारता, असमर्थता पाये हैं; हीन दीन दुःखी हुये हैं. एकेंद्रीयादि अवस्था प्राप्त हुइ है, अहो निश सुखके इच्छक हैं; और यथा शक्ति सुख प्राप्तिका उपाय करने खपते हैं, उन बेचारे जीवोंकों, अर्थे (मतलबसे) अनर्थे (विना करना) दुःख देना, सताना, या उनकों दुःखसे पीडाते हुये देख हर्ष मानना सो रौद्र ध्यान. एकेन्द्रीयसे लगा पंचेन्द्रीय जीव पर्यंत कीसीभी जीवोंकों, या जीव युक्त किसीभी पदार्थोंकों, स्वयं अपने हाथसे; तथा पर-दूसरेके हाथसे प्राण रहित करते देख, टुकडे २ करते देख, लोहकी श्रृंखला —बेढिमें बन्धनमें डालते देख, रस्सी सूत शणादिक से बांधते देख, कोटडी भूवारे (तल घर) कारागृह (केदी खाने) में कब्ज किये देख, कर्ण, नाशिका, पूँछ सींग, हाथ पांव, चमडी, नख, वगेरे किसीभी अंगोपांग का छेदन भेदन करते देख, कत्तल खानेमें वेचारे जीवोंका वध करते समय उनका आक्रांद श्रवण कर, उनके टुकडे तडफडते देख, वगेरे अनेक तरह जीवोंको दुःख देते, या उनके वध करते देख आनंद माने,

कि बहुत अच्छा हुवा, यह ऐसाहिथा, इसे मारना-ही चाहिये; बंधनमें डालनाही चाहिये; फांसी शूली देनाही चाहिये; बडा जुलमी था, बचता तो गजब कर डालता, पाप कटा मरगया, पृथवीका भार हल-का हुवा ! वगेरे २ शब्दोच्चार करे, आनंद माने, सो हिंसानुबंन्धी रौद्र रौद्र ध्यान.

(२) औरभी हाहा ! यह महेल, मंदिर बंगला हाट–दुकान, हवेली, कोट, किल्ला, खाइ, बुरजों, तो-रस्थंभ या मृतिका पाषाणादिकके खिलोणे, मूर्त्ति भंडोपकरण (बरतन) वगेरे, बहुत अच्छे बने. अच्छा रंग कोरमुणीआदि करे सुशोभित किये; शाबास कारिगरकों पूरा शिल्पवेताथा कि जिसने ऐसी मनो-हर वस्तु बणाइ. ऐसेही कूप, बावडी, नल, तलाव, होद, कुंड, झरणा, झारी, लोटा, गिलास, कळशा, वगेरे बहुतही अच्छे मनोहर बने हैं. क्या स्वादिष्ट शीतल सुगंधित पाणी है. कैसा उमदा फुवारा छूट ता है. कैसा उमदा छिटकाव हुवा है. चूला, भट्टि अंजिन, मील, दीवा, पिलसोत, हंडी, गिलास, झुमर चीमनी वगेरे बहुतही अच्छे सुशोभित हैं, क्या उमदा झगमग रोशनी होरही है, क्या रंगी वेरंगी आतशबाजी (दारुकेख्याल) छूट रहे हैं, क्या धूपकी सुगंधी

मघमघा रहीहै. क्या शीतल सुगंधी हवा आती है. क्या उमदा पंखा पंखी चल रहे हैं, कैसा झुला घूमता है, क्या मंजुल बाजिवोंका नाद है. क्या उंचे२ विचित्राकार वृक्षों का समूह शोभ रहा है. यह झाडों काटके प्राशाद, स्थभ, पाट, वगेरे बनाने योग्य है. यह फल बडे मिष्ट हैं भक्षण करने योग्य हैं, गुण करता हैं; शाख बडा स्वादिष्ट बना. क्या लीली २ हरीयाली छा रही है, इसे देखनेसे बडा आनंद होता है. क्या मनोहर हार तुर्रे बनाये, औषधियां कंद मुलादिक पौष्टिक स्वादिक कैसे अच्छे हैं. यह कीडे, खटमल, डंस, मच्छर, प्रलय के जीव हैं, इनकों जरूरही मारना. जलचर, मच्छादि भूचर, गवादि, वनचर शूकरादि, खेचर, पक्षी आदि, पचनादी कर भक्षणे योग्य हैं. यह अश्व गजादि की कैसी सजाइ सजी है. सैना शत्रूका कट्टा करने जैसी है, बहुत अच्छे चित्र विचित्र पक्षीयोंकों पींजरेमें रखे हैं. अजायब घरकी अजब छटा है. *मुषेसे रोगोत्पत्ति होती है यह मारने योग्य हैं. सर्प बिच्छूवादि विषारी जीवोंको अवश्य मारना, बडा पुन्य होगा, सिंहकी

* प्लेग रोगके प्रगट होते घरमें मूषे (चूवे-उंदिर) मरके घरके मालिक को चेताते हैं रोगसे बचाने उपकार करते हैं. उसे भूलके उसे मारते हैं यह बडी अज्ञान दशा है.

शिकार क्षत्रियोंको अवश्य करना चाहीये. कैसा शूर सु भट है की एक पलकमें हजारोंका संहार करता है. इत्यादि विचारको हिंसानुबन्ध रौद्रध्यान कहना. और भी अश्वमेध यज्ञ, घोडे को अग्निमें हामनेसे; गोमेध यज्ञ गौका, अजामेध बकरेका, और नरमध मनुष्य का, अग्निमे होम करने (जलाने) से, बडा धर्म होता है. स्वर्ग मिलताहै. यह विचार भी रौद्रध्यानका है. कीतनेक पापशास्त्रके अभ्यासी कितनेक जानवरोंके अंगोपांग, मांस, रक्त, हड्डी, चर्म इत्यादि सेवनेसे रोग नास्ती मानते हैं. कितने क्रीडा निमित्त कुत्तेआदि शीकारी जानवरोंसे बेचारे गरीब पशु पक्षीयोंको पकडाके मजा मानते हैं, कितनेक बंदर रींछ आदि जीवोंके पास नृत्य गायनादिके ख्याल तमाशा देखनेमें मजा मानते हैं. कुर्कुट, भेंसें, मेंढे या मनुष्यादिकी लडाई देख मजा मानते हैं. सो भी हिंसानुबंधी नामे रौद्रध्यान है.

कितनेक जीवोंके संहार के लिये, शतघ्नी (तोप) बंदूक, धनुष्य-बाण, खड्ग, कटार, छुरी, चक्रू आदीका संग्रह करते हैं; या शस्त्र देख, जीवों के संहारनेकी इच्छा करते हैं. कितनेक घट्टा, घट्टी, हल्ल, बखर, कुदाली, पावडी ऊखल, मुशल, सरोता, दांतरडा, कातर, वगेरेका सं

ग्रह करते हैं. तथा इन कों देख संहारकी इच्छा करते हैं. हाथ में आये चलानेंकी इच्छा करते हैं. खाली चलाके देखते हैं, सो भी हिंसानुबन्धी रौद्र ध्यान.

औरभी किसीका बुरा चिंतवना, अपनेसे अधिक रूपवान, धनेश्वरी, गुणीजन, पुण्यप्रतापी, बहुल परिवारी सुखी देखके ईर्ष करे, उनको दुःख होनेका विचार करे कि इसके पीछे मुझे कोइ नहीं पूछता है, यह मेरे सुखमें या लाभमें हरकत कर्ता है, मुझे हरवक्त दबाता है सताता है यह कब मरे और पाप कटे! वगेरे विचार करे सोभी हिंसानुबन्धी रौद्र ध्यान.

और पृथव्यादि छेही काय के जीवोंकी हिंसा होवे, ऐसा यज्ञ, होम, पूजा, वगेरेका उपदेश दे, या ग्रन्थ रचे, तैसेही औषधियों के शास्त्र रचते, दुष्ट (घातक) मंत्रका साधन करते, बिभत्स कथा कादम्बरी वगैरे रचते व पढते वक्त. हिंशक, चोर, जार, दुष्ट, दुर्व्यसनीकी संगतमें रहते, और निर्दयी क्रोधी, अभीमानी, दगावाज, लोभी, नास्तिक, इनके मनमें हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान का विशेष वास होता है.

तैसेही हिंसासे निपजती हुइ वस्तु, जैसे—१ गिरनीमें

१ गिरनीके आटेकों बरोबर जमाके उपर मक्कर सुरमुराके देखनेंसे हलने चलते बहुत जीव दिखते हैं.

पीसा आटा, २ चीनी सक्कर, ३ हड्डी या हाथि दांत के चूडे, वगेरे, ४ कचकडेकी बनी वस्तु, ५ पांखोंकी टोपीयो वगेरे, ६ चमडेके पूठे वगेरे, ७ अंग्रेजी दवाइयों, ८ साबन मेणबत्ती, ९ रेश्मी कपडे, १० खराब केशर, ११ चरबीका घृत [घी] वगेरे हिंसक वस्तुका भोगोप भोग करते मनमें जो मजा मानते हैं, वोभी हिंसानु बन्धी रौद्रध्यान गिना जाता है.

२चीन्नी सक्करमें हड्डीयोंका बूरा विशेष होताहै, और गायके रक्तसे शुद्ध करतेहैं. ३हाथी दातके लिये७०००० हाथी फ्रान्स देशमें दरसाल मारे जातेहैं. ४ काछवेको गरम पानीमें डुबाके मारके उसके चमडेकी जो वस्तु बनाते हैं उसे कचकडेकी कहते हैं. ५ जीवते पक्षीयोंकी पांखो झडपसे उखाड लेते हैं, वो टोपी वगेरेपे लगाते हैं. ६ जीवते पशू, का चमडा निकालते हैं, कितनेक स्थान चमडेके लियेही विषादि प्रयोगसे पशूको मार उसके चहीयोंके पूठे, नोबत नगारे, वगेरे बनते हैं. ७ अंग्रेजी दवाइयोंमे जानवरों के मांसका अर्क व दारूका भेल होता है, काडलीवर आइल यह मच्छीका तेल होता है, ऐसी बहुतसी हैं. ८ साबू मेणवत्ती में चरबीका भेल होता है. ९ कितनीक केशर में मांस के छींते होते हैं. १० रेश्मी कीडेको गरम पाणीसे मार रेशम लेते हैं. ११ कित्नेक घी (घृत) में भी चरवी का भेल आता है. ऐसी अखबारोंमें बहुधा खबरें प्रगट हुइ हैं, और उसे पढके उपरोक्त वस्तु छोडते नहीं हैं उन्हे आर्य कैसे कहना ?

ऐसेही बोर, मूले प्रमुखकी भाजी, जुवार बाजरीके भुट्टे, सुला अनाज व औषधि, विना देखे कोईभी सजीव वस्तु भोगवते मजा मानने-सेभी हिंसानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता है, क्यों कि इनमें त्रस जीवोंका विशेष संभव है.

महाभारत संग्रामोंके इतीहास कथा पढते सुनते जो उसकी मनमें अनुमोदन होवे, सो भी हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान.

इत्यादि हिंसानुबंन्ध रौद्रध्यानका बहुत बयान है, सबका मतलब इतनाही है कि, किसीको भी दुःख देनेका विचार होवे या दुसरे के वधसे वस्तु बनी उसकी अनुमोदन करे वोही हिंसानुबंधी रौद्रध्यान.

द्वितीय पत्र–"मृषानुबन्धी."

२ "मृषानुबन्धी रौद्रध्यानः"—

असत्य चातुर्य बलेन लोकाद्वितं ग्रहीष्यामि बहु प्रकार;
तथास्वमतङ्गपुराकराणि,कन्यादि रत्नानिच बन्धुराणि ॥
असत्य वागवंचनया निजानंत,प्रवर्तय त्यलजनंवराकम्
सद्धर्म मार्गदत्तिवर्तनेनमदोद्धतोयःसहि रौद्रधामा॥२॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ—विचार करे कि मैं असत्यतासे चतुर्यता करके, मेरे कर्मोंको प्रगट न होने देते, अनेक प्रकारसे

लोकोंको ठग कर मेरा मतलब पूरा करूं, मन कल्पित अनेक शास्त्र दया रहित रचकर मन माना मत चलावूं, लोकोंको वाक्य चातुरीसे मोहित कर उनके पाससे सुन्दर कन्या, रत्न, धन, धान्य गृह (घर) ग्रहण करूं, और मेरा जीवन सुखे चलावूं. इत्यादि असत्य विचार जिसके अंतःकरणमें होवे उसे मदोद्धत मृषानुबन्धी रौद्रध्यानका मंदिर (घर)समझना चाहिये.

मृषा=नही रक्खा, अर्थात, झूठेने, जगतूमें बुरा पदार्थ कुछ बाकी रक्खा नहीं, सब, उसनेही ग्रहण कर लिया. ऐसा खराब झूठापना है, और छोटे बडे सब झूठकों खराब समजते हैं, क्योंकि झूठा कहनेसे सब चिडते हैं;' तो भी आश्चर्य है की फिर उसे नहीं छोडते हैं, देखिये! इस ध्यानकी सत्ता कैसी प्रबल है, कि खराब काममेंही आनंद मनाता है. कितनेक अपनी चातुरी बताते हैं कि हम कैसे विद्वान हैं. कैसा प्रपंच रचा कि—अंगहीन, रूपहीन, इन्द्रियहीन, और गुणहीन कन्याको भी कैसे बडे स्थान दिलादी; और नगदी इत्ने रुपे दिला दिये. बुड्ढेका, रोगिष्टका, नपुंसकका कैसी युक्तिसे लग्न करादिया, अब वो दोनो भलांइ तावे उम्मर रोवो! अपना तो मतलब होगया. ऐसेही गाय अश्वादि पशुवोंकों, तोता मैनादि पक्षीका,

खेत, बाग बावडीआदिकी झूटी परशंशा कर प्रपंच रच, रूपका परावर्तन (पलट) कर, बुरेके अच्छे बनाकर, ज्यादा कीमत उपजावे, और खुशी होवे. तैसे पूराने वस्त्रोंके रंगादि प्रयोगसे नवे शद्दश बना, खोटे भूषणोंको सच्चे शद्दश बना, या अच्छा माल बताके खोटा दे हर्ष मानें; कोइ विश्वाससे अपनें स्वजन मित्रको गुप्त धन भूषण थापन रख गया होय, उसे दबा रक्खे मालकको न दे. ऐसेही झूठी गवाइयों खडीकर झूठे खत (रुक्के) बनाके गृह धनादिकका हरण कर खुशी होवे. ऐसे अनेक ब्यापारके कामोमें, दगा बाजी करे प्रपंच रचके दूसरेकों छलनेका विचार करेसो मृषानुबन्धी रौद्र ध्यान.

अपना मन माना मिथ्या पंथ चलाने वीतराग भाषित शास्त्रको छोड अनेक कल्पित (झूठे) ग्रन्थ चरित्र वगैरे बनाके बेचारे भोले जीवोंकों भरममें डाले, हिंसा मार्ग बता शुद्ध दया मार्ग छुडवायकर मनमें आनंद माने कि—मैने इतने ग्राम, इतने मनुष्य, मेरे बनाये. ऐसेही, ज्ञानवंत, आचारवंत, शुद्ध जिनेश्वरके मार्गके परुपक, क्षमाशील, ब्रम्हचारी वगैरे धर्म दीपकोंकी महीमा सुण के इर्षा लावे;

❀ और उनका अपमान करनें उनके शिर झूठा कलंक चडावे, निंद्रा करे; और अपनी झूठी बातकों दूसरे मान्य करते देख हर्ष माने. कंन्यादान, ऋतुदान, ठहराके कुलीन स्त्रीयोंको भृष्ट करे. धर्म निमित हिंसा करनेमें दोष नहीं ऐसा ठहरावे. ब्रह्मचारी नाम धरा, व्यभिचार सेवन करे, और महात्मा वगेरा नामसे बोलाते आनंद माने, सोभी मृषानुबन्धी रौद्र ध्यान.

बधिर (बहिरे) अन्धे, लंगडे, आदि अपंगको; कुष्टादि रोगिको, निर्बुद्धी, इत्यादिकी हांसी करे; इन्हे चिडावे, चिडते देख मजाह माने. जूवा-तास (पत्ते). ‡ शतरंज, वगैरे ख्यालोंमें, सहजही झूठ बोलाता है. निकम्में विवादमें, प्रवादियोंको दगासे छलनेमें, झूठे

❀मनहर:—सज्जनकों देखकर दुर्जन करत कोप,
ब्रह्मचारी देख कामी कोप करे मनमें.
निशके जगैया ताकों देख कोप करे चोर,
धर्मवंत देख पापी झाल उठे तनमें;
शूरवीर देखकर, कायरकरत कोप;
कवीयोंको देख मूढ हांसी करे जनमें.
धनके धनीकों देख निर्धन कोप करे,
विनाही निमित खाकडारेंतिहूं पनमें ॥१॥

‡ सो रंज करनेवाली.

पैन रचेनेमें, हस्त चालाकीसे. वा इन्द्रजालसे अनेक कौतुक बतानेमें, मंत्र जंत्रादिका आडंबर बडा अपनी प्रतिष्टा [महिमा] सुण खुश होवे. शास्त्रार्थ करते [व्याख्यान देते] अपने मरम [हर्ज] की बातको छिपावे, अर्थको फिरावे, अनर्थ करे. झुठे गप्पेसे परिषदाकों रींजाके आनंद माने. दया, सत्य, शीलादी गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगडे, या लीला, कितुहल की कथा होवे उन्हें श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृषानुबन्धी रौद्र ध्यान समझना.

मृषानुबन्धीका अर्थ तो बहुतही होता है: परंतु सारांश इत्नाही है कि झूठे काममे आनंद माने उस हीका नाम मृषानुबन्धी रौद्र ध्यान जाणना.

तृतीय पत्र—"तस्करानुबन्धी".

३ " तस्करानुबन्धी रौद्रध्यान" सो—

यश्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपिप्रमोद मतुलं कुर्वन्तियत्संततम्;
चौर्येणापि हृतेपरैः परधनें यज्जायते सभ्रंम—
स्तश्चौर्यप्र भवंदन्ति निपुणा रौद्रंसुनिन्दास्पदम्

ज्ञानार्णव.

अर्थ— चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे; चोरी कर के अति हर्ष माने; अन्यके पास चोरी करा, ला

प्राप्ती हुइ देख, खुशी होवे; चोरी कर्ममें कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रशंसा करे; इत्यादि विचार करे सो तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान अति निंदनीय है.

जीव तृष्णा रूप विकराल जालमें फसे हुये सर्व जगतकी अन्न, धन्न लक्ष्मी, कुटुंबकी ऐश्वर्यता(मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इत्ने पुण्य करके नहीं लाये कि सर्वाधिपति बने? और प्रमादी (आलसी)ओंसे सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा त्रप्त करने, पापोदय से उनकों चोरी सिवाय दूसरा उपायही कौनसा दिखे. इस हेतू से वो चौरीयानुबन्धी रौद्र ध्यानमें चड़ते हैं, विचार करते हैं कि-घटासे आच्छादित अभ्रयुक्त अन्धारी रात्रिमें कृष्ण वस्त्र धारण कर, गुप्तपने जा खासदे द्रव्य लावूंगा. क्या मगदूर है कोइ सामने आय; मैं शस्त्र कलामें ऐसा प्रवीण हूं कि—एक झटकेमें बहुतोंके बटके (टुकडे). करडालूं, और ऐसा सटकु कि किसकी माने दूध पिलाय है जो मुझे पकडे. मैं अनेक विद्याका जानहूं, सबको निद्रा गस्त करसक्ताहूं. वडे २ जंजीर ओर तालोंको एक कंकरीसे तोड सक्ता हूं. सैन्यको स्थंभन कर सक्ता हूं. अंजन सिद्धिसे पाताल का निधान-गुप्त द्रव्य और अंधकारमें प्रकाश तुल्य देख सक्ताहूं. इत्यादि अनेक कलाका धरनहार में हूं.

क्या मगदूर कोइ मेरी बरोबरी कर सके. हजारों सु-भट मेरे हुकममें हैं, वोभी मेरे जैसे कलामें पूर, और शूर वीर हैं. मैनें बडे २ नरेंद्रोंको धुजादीये हैं. अब मैं थोडेही कालमें ईश्वरो (मालकों) का संहार कर, सर्व ऋद्धि सिद्धिका श्वामी बन, निश्चिंत मजाह भोगवुंगा· अमुक स्त्री महा रुपवंत है, उसकाभी हरण करुं. अमुक भूषण, वस्त्र, पात्र, पशु, मनुष्य, इन सर्व उत्तम पदार्थोंकों मेरे स्वाधीन कर उनके उपभोगसे मेरी आत्मा तृप्त करुं, इत्यादि विचार अंतःकरणमें होवे सो तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान.

ऐसेही कितेक नामधारी साहूकारों लोकोंकों सठाई बताने उत्तम२ वस्त्र भूषण तिलक—छापे, माला, कंठी से शरीर विभूषित कर, माला फिराते, बडे धर्मात्मा बन ऊंची२ गादी तकीयोंके टेके दुकान पे विराजमान होतेहैं. शिकार आइ के माला हलाते भगवतका नाम उच्चारते मीठे २ बोल, उस भोलेकों पान बीडी आदि के लालचसे भरमा के ऐसी हुंस्यारी से ठगाइ चलाते हैं कि क्या मगदूर कोइ समझतो जाय! मोलें में, बोलमें, तोलमें, मापमें, छापमें, जबाबमें ठगाइ चला, वस पहोंचे वहां तक उसे लूटनेमें कसर नहीं

रखते हैं. और विश्वास उपजानें गायकी, बच्चेकी भगवानकी, दमडी २ के वास्ते कसम [सोगन] खाजाते हैं, इच्छित लाभ हुये बडे खुशी होतेहैं. अच्छा माल बता खोटा देते हैं, अच्छा बुरा भेला कर देते हैं; हिसाबमें, व्याजमें उनका घर डूबो देते हैं. ऐसे२ अनेक चोरी कर्म भर बजारमें कर साहुकार कहलाते हैं, अपनें चालाकीको होंश्यारी समझ बडा हर्ष मानते हैं, सोभी चोरियानुबन्धी रौद्रध्यान.

ऐसेही कितनेक साधु * ओंका, शरीर दुर्बल देख कोइ पूछे महाराज! आप तपस्वी हो? तब तपस्वी न होने परही कहे कि-हां! साधू तो सदा तपस्वी होतेहैं, सो तपका चोर. ऐसेही शुद्धाचारविन, मलीन वस्त्रा; दि धारण कर आचारवंत बजे, श्वेत बाल होनेसे स्थीवर (बृद्ध) बजे, रूपवंत हो राजऋद्धी त्यागनेंवाला बजे, क्रूर परिणामी होके दांभिक पणेसे वैरागी बजे. वगेरे धर्म ठगाइ कर आनंद माने सोभी तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान.

---

*तव तेणे वय तेणे, रुवे तेणेअ जे नराः
आयार भाव तेणेअ, कुव्वइ देवेइ किव्विसा १
अर्थ-आचारका, व्रतका, रूपका, तपका, भाव का चोर, मरके किल्विषी (देवमें चंडाल जैसे) देव होते हैं.

किसीके मकान, बगीचा, धर्मशाला, वस्त्र, भूषण, बरतन, भोजन, पाणी, अन्न, फल, पुष्पादि, तृण कंकर जैसा निर्माल्य पदार्थ भी उसके मालककी आज्ञा बिन, देखके, स्पर्शके, या भोगवके, आनंद माने सोभी चौर्यानुबंध रौद्रध्यान.

जो जो अन्यके पदार्थ सुणने में, देखनेमें, व जाणनें में आवे, उनको ग्रहण करनेंकी, अपनें तावें करनें-की कि भोगवणें की अभिलाषा होवे, वोही तस्करानुबन्ध तीसरा रौद्रध्यान.

चोर चोरी करके वस्तु लाया, उसको सस्ते भाव में लेके मजा माने, चोरको सहाय देवे खान पान वस्त्रादी से साता उपजा उनके पास चोरी करावे, और माल आप लेके आनंद माने. राजका दाण (हाँसल) चोरा के खुशी होवे, जिस वस्तु बेंचनें की अपने राजमें राजाने मनाकी होय, उसे गुप्त लाके बेंचे, और खुश होवे, इत्यादि तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान के अनेक भेद हैं. सबका मतलब इतनाही है कि मालककी रजा (आज्ञा) बिन, या उसके मन बिन जबर दस्तीकर जो वस्तूपे अपनी मालकी जमाके आनंद माने; सोही तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान.

चतुर्थ पत्र-"संरक्षण"

बव्हारम्भ ग्रहेषु नियतं रक्षार्थ मभ्युद्यते ।
यत्संकल्प परम्परां वितनुते प्राणीह रौद्राशयः ॥
यच्चालम्ब्य महत्व मुन्नतमना राजेत्यहं मन्यते ।
तत्तुयं प्रवदन्ति निर्मलधियो रौद्र भवाशंसिनाम् ॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ–जो प्राणी रौद्र (क्रूर) चित्त होकर बहुत आरंभ परिग्रोंमें रक्षार्थ नियमसे उद्यम करे, और उसमेंही महत्ता - अपने मोटे पनेका अवलम्बन कर के - उन्नत चित्त हो ऐसामानेकि-मैं इन सबका मा लक हूं. इत्यादि परिणामोंकी प्रवृत्तीको तत्वज्ञ महा पुरुषों ने संसार की वांछा करने वाले जीवोंका चोथा विषय संरक्षण नामक रौद्र ध्यान कहा है.

४ "विषय संरक्षण रौद्र ध्यान–इस जगत्में सब जीव पापही पापीहैं ऐसाभी नही समझना; तथा सब पुण्यात्मा हैं ऐसा भी नही समझना. सर्व संसारी जीवोंके पुण्य और पाप दोनों आनादि से लगे हैं. पापकी वृद्धी होनेसे दुःख की विशेषता, और पुण्यकी वृद्धी होनेसे सुखकी विशेषता होती है; ज्यादा होता हे सोही दृष्टि आता है; तोभी उसका प्रतिपक्षी गुप्त वनाही रहता हे.

जिनके पुण्यकी अधिकता होती है उनको सुख दाइ मन्योग्य सामग्रीयोंका संयोग मिलता है, वो उसका वियोग कदापि नहीं चहाते है. [यह वर्णन् आर्त ध्यानके दूसरे भेदमें होगया हैं] परंतु वस्तुका स्वभावही "अध्रुव असास अमी" अर्थात् अध्रुव, अशाश्वतःक्षण-भंगूर है. "समय२ अनंत हानी" भगवंत ने फरमाइ सो सत्य है. वस्तुका स्वभाव क्षण २ में पलटता २ किसी वक्त वो सर्व वस्तु नष्ट होजातीहै; उसे नष्ट नहोने देने—अर्थात् बचानेके जो उपाय किये जांय उसीका नाम विषय संरक्षण रौद्र ध्यान है.

राज लक्ष्मी प्राप्त होनेसे विचार होवेकि-रखे मेरे राज्यको कोइ परचक्रीआदि हरण करे. इस लिये अव्वलही बंदोबस्त करे, चतुरगणी सैन्य, (हाथी, घोडे, रथ, पायदल) उमदा २ पराक्रमीयोंका संग्रह करूं. धोकेके स्थान छावणी डालूं, उद्धतोंके संहारका उपाय चिंतवे, शत्रूके राजमें मनुष्य रख खबर लेता रहूं. उमरावादीको इनाम इकरामसे संतुष्ट रखूं कि वक्तमें जान झोंकदे. पुक्त पुस्ती, उंडी खाई, शतघ्नी आदि शस्त्र युक्त उंच्च बुरजो, पक्का किल्ला बनावूं. धनुष्य बाण खड्गादि अनेक शस्त्र वक्तरोंका संग्रह कर रक्खूं. धनुर्वेदादि शिक्षा ग्रहण कर संग्राम विद्या में

प्रवीन बनूं कसरत और औषधिआदिके सेवनसे शरीर को पुष्ट मेहनती रक्खूं कि-वक्तपे हारुं नहीं. इत्यादि उपायोंसे राज्य रक्षणकी चिंतवणा करे, सोभी विषय संरक्षण रौद्र ध्यान.

द्रव्यको तीजोरीयोंमे रक्खूं, जिससे अग्नि चोरादिकका उपद्रव न पहोंचे. मेला गेहला रहूं, कि जिससे कुटुंब चोरादी धन हरने पीछे न लगे, किसीके साथ मोहब्बत न करुं कि वक्तपे किसीकी प्रार्थनाका भंग करना नहीं पडे, संकोचसे थोडेही खरचमें गुजरान चलावूं. हलकी वस्तु वापरूं इत्यादि उपायसे द्रव्यका रक्षण करूं और स्त्रीयोंको पडदेमें रक्खूं, खोजाओंका पहरा, खान पान वस्त्र भूषणकी मर्यादा, कमी भाषण, और अपनी तर्फसे उन्हे संतोष उपजा के रक्खूं कि-जिससे वो अन्यकी इच्छा न करे. स्वजन मित्रोंको खान, पान, वस्त्र, भूषण, स्थान, सन्मानसे संतोषूं कि- जिससे वो वक्तपे पूरा काम देवें, मकान को सुधराइ सफाइ से रक्खूं कि पडे नहीं. इत्यादि प्रकारसे संपत्ति संततिके रक्षणका विचार करे सोभी विपय संरक्षण रौद्र ध्यान.

ऐसेही येह मेरा शरीर-रत्नोंके करंडीये सेभी अधिक प्रियकारी है, इसको-शीत उष्ण वर्षाऋतुमें यथा

योग्य वस्त्र आहार, पाणी, मकान से सुख देवूं दंश, मच्छर, वगेरे क्षुद्र प्राणियोंके भक्षणसे, बचावूं, शत्रूओं से रक्षण करने-शस्त्र सुभटोंका बंदोबस्त करूं, क्षुद्याको इच्छित भोजनसे, तृषाको शींतोदकसे, बात पित्तादि रोगोंको औषधोपचारसे, मंत्रादिसे-विंत्रादिके उपसर्गसे रक्षण कर इस शरीरको अखंड सुखी रक्खू. ऐसा विचार करे. तथा अपना गौरवर्ण-स्तेज (दमक दार) पुष्ट शरीर देख खुशी होवे; और अभक्षादिसे पोषण करनेकी इच्छा करे. और शरीरके, स्वजन सम्बन्धियोंके संपत्तिके नाश करनेवाले जो हैं उनपे दुष्ट परणाम लावे, उन्हें-देख क्रोधातुर हो जावे, उनके नाशके लिये अनेक उपायोंकी योजना (विचार) करे. और अपना शरीर धन वगैर दूसरेके तावेमें होय उनको स्वतंत्र करने अनेक कुयुक्तीयोंका जो विचार होवे वह सब विषय संरक्षण नामे रौद्र ध्यान समझना.

ऐसे इस ध्यानके अनेक भेद हैं. परंतु सबका तात्पर्य येही है कि इस ध्यान में विशेष कर अपना रक्षण और अन्यको परिताप उपजानेका विचार रहता है, इसलिये इसे रौद्र (भयंकर) ध्यान कहा जाता है.

द्वितीयप्रतिशाखा-रौद्रध्यानीकेलक्षण

सूत्र—रोद्दस्सणं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णाता तं जहा – १ उसणदोसे, २ बहुलदोसे, ३ अणाणदोसे, ४ अमरणांतदोसे.

अर्थम्—रौद्र ध्यानीके ४ लक्षण—१ हिंसादि पापों का विचार करे, २ विशेष (अखंड) विचार करे, ३ अज्ञानीयोंके शास्त्रका अभ्यास करे, और ४ मृत्यू होवे वहां लग पापका पश्चाताप करे नहीं.

रौद्र=भयंकरही जिस ध्यानका नाम, उसका विचार, कर्तव्य और स्वरूप भयंकर होवे यह तो स्वभाविक है. विचार मगजमें रमण कर आकृती धारण कर उसही कार्यमें प्रवर्तने शरीरकी प्रेरना करता है.

रौद्र ध्यान (विचार) होनेसे रौद्र कार्यके विषयमें जो प्रवृति होती है. उसके मुख्य चार भेद भगवानने फरमायें हैं:

प्रथम पत्र-"उषण दोष."

१ उषण दोष, सो हिंसा, झूठ, चोरी, और विषय संरक्षण, इन ४ हीकी पोषणताके लिये जो जो काम करे सो उषण दोष. जैसे—हिंसाकी पोषणता [वृद्धि] करने—अनेक पावडे, कोद्दाली, खुरपें, वगैर पृथवीको

खोदने फोडनेके शस्त्रका संयोग मिलावे, अधूरे होय तो हाथालगा, धार सुधरा पूरे करावे, और पृथ्वी छेदन भेदनके आरंभमें उन्हें लगावे. ऐसेही पाणीके आरंभकी वृद्धिके लिये—चडस, रहेंट, मशक, या-घडा, कलशा, वगेरे वर्त्तनो कूवा, बावडी, तलाव, नल, फुवारे, होद, आदि स्थाम बणबाके पाणीका आरंभ करे करावे, अग्निके लिये-चूले, भट्टी, दीवे, चिलमो, आतसबाजी, वगैरे करावे और को उस काममे लगावै. हवाके आरंभके लिये — पंखी, पंखा, वाजिंत्र, वगैरे. सबजी हरीके बाग, बगीचे, वाडी, इत्यादि लगावे. या पत्र पुष्प फल, तृणादिका-छेदन, भेदन, पचन, पाचन, भक्षण, करे करावे. त्रसके आरंभकेलिये-धूम्रादिक प्रयोगसे मच्छर डांस खटमल, आदिकोमारे. जाल फासासे जलचर, भूचर, खेचर आदीको कब्जे करे. तरवार भालादि शास्त्रसे छेदन भेदन ताडन तर्जन करे. मनुष्य पशूको कठिण (घाव पडजाय) ऐसे बंधनसे बांधे, कठोर प्रहार करे, अहार पाणीकी अंतराय देवे अंगोपाग छेदन भेदन करे. सत्ता उपरांत काम लेवे मेहनत करावे. सदा निर्दय होके अयत्नासे एकांत स्वार्थ साधने, या विना कारण अन्यकों संताप उपजाने, उपरोक्तादि जो जो कर्तव्य करे, उसे रौद्र

ध्यानी समझना.

ऐसेही—झूठका पोषण करने अनेक पाप शास्त्र-काम शास्त्र, कादम्बरी, पठन करे; झूठे झगडे जीतने अनेक चालाकोंकी संगत, व कायदे—कानूनोका अभ्या-स करे झूठ ख्याल कविता बनावे, चकार मकारादि गालीका उच्चार करे; विभत्स [अयोग्य] शब्द बोले, निडर निर्लज्ज होके प्रवर्ते. ऐसेही—चोरीकी पुष्टिके लिये-चोरोंके शस्त्र-कोश, कुदाल,गुप्ति, वगेरे संग्रह करे, चोरीका कलाका अभ्यास करे. गोआदि जानवर पाले, चोरोंकी संगतमें रहे, धाडापाडे, चालाकीसे अन्यका माल हरण करे, और विषय संरक्षणके पो-षणकेलिये श्रोतेंद्रीयके पोषणके लिये-मृदंगादि बणाने जीवते पशूवोंका चर्म [चमडा] निकलावे. सारंगी-आदि बनाने-गवादीकी आतो (नशो) तोडावे, चक्षू इंद्रिके पोषण को श्रृंगार, सामग्री, सजाने- सुवर्ण रत्नोंके अनेक आगरों [खजानों] मोतीयोंको चिरावे, सण कपासादि पिलावे, कतावे, गिरनीआदि द्वारा वस्त्रादि वनवावे, अनेक श्रृंगार सजे, या स्त्रीआदिको श्रृंगारके उनके नाटक ख्यालादि देख, वगीचादि ल-गावें. घाणेंद्रियके पोषण यंत्रादि प्रयोगसे अत्तरादि निकलावे, पुष्पादि सुगंधि द्रव्यका सेवन करे, पुष्प

वटिकादि बनाके उपभोग लेवे, रसेंद्रिय पोषणे-मदिरा मांस भोगवे. कंदमूल आदि अभक्ष खावे. पोष्टिक उन्मादिक वस्तुका सेवन करे, रसायन भस्मादि सेवन करे, वंदेजकी गुटिकादि सेवन कर महा कामी बने, स्पर्शेन्द्रियके पोषणे-अनेक पुष्पादि सेजका शयन उत्तम वस्त्र भूषणोंसे श्रृंगार सज हार, तुर्रे, अतर, पुष्पादिसे शरीर सज, चूंचूं करती पगरखीयों पहर, अकड मकड चले. वेश्यादि नृत्यमें आगिवानी भागले गान तानमें गुलतान बन तान तोडे, मशगुल बन जावे. कामके चौरासी असनोंकी तसबीरों का वारंवार अवलोकन करे, इत्यादि तरह पंचेंद्रीयके पोषणके लिये जो उपायोंकी योजना करे, उसे उष्ण दोष नामें रौद्र ध्यानी समझना.

द्वितीय पत्र-"बहुल दोष."

"बहुल दोष" सो उपरोक्त इन्हीं कामोंको विशेष करे अर्थात् ज्यों ज्यों करे त्यों त्यों ज्यादा २ इच्छा बढती जाय. और इच्छा को तृप्त करने अधिक २ कर्ता जाय, परंतु तृप्ती आय ही नहीं, उसे बहुल दोष कहना.

तृतीय पत्र-"अज्ञान दोष."

३ "अणाण दोष" सो—रौद्र ध्यानका स्वभावही है कि वो उत्पन्न होता तुर्त सद्ज्ञानका नाशकर, जीवको अज्ञानी-मूढ बना देता है. सूकार्यसे प्रीति उतार कुकर्ममें संलग्न कर (जोड) देता है. सच्छास्त्र श्रवण, सत्संगमें अप्रीति अरुचि होती है. और२९पाप *सूत्रोंके अभ्यासमें प्रीति होवे. विषयमें प्रवृत्ति करावे ऐसी कवीता, कल्पित ग्रंथो, कोकशास्त्र वगेरे पढे सुणे, और कूशास्त्रकि जिसमें हिंसा, झूट, चोरी मैथुन, वगेरे पाप सेवनमें निर्दोषता बताइ होय उनका तथा वशीकरण, उच्चाटन, अकर्षण, स्थंभनादि विद्याका अभ्यास करे. गालीयों गावे, ठट्ठा मस्करी करे. पुरुषोंको स्त्रीयोंके वस्त्र भूषण पेहरायके नृत्य गान कुचेष्टा करावे; दयामय उत्तम धर्मको त्याग,

---

* २९. पापसूत्र—१ भूमिकंप, २ उत्पात, ३ स्वप्न, ४ अंगफुरूनेका, ५ उल्का पातका, ६ पक्षीयोंके स्वरका, [कोक] ७ व्यंजन-तिलमसका, ८ लक्षणसामुद्रिक, इन ८के अर्थ-पाठ, और कथा यों ८—३=२४ और २५ काम कथा. २६ विद्या-रोहणीआदि २७ मंत्र, २८ तंत्र, २९

हिंसा धर्ममें राचे. कामी, कपटी, लोभी, कनक कान्ता धारी, स्त्रीके भोगी, धूप पुष्प अबीरादिकी सुगंधमें मस्त रहने वाले, सचित अहारी या मांस मदीरा भोगवने वाले, रंगी बे रंगी वस्त्रों और भूषणोंसे शरीरको श्रृंगारने वाले, रुष्ट हुये नाश करे, और तुष्ट हुये इच्छा पुरे, ऐसे राग द्वेष से भरे हुये; इत्यादि अनेक दुर्गुण धारीको देव गुरु जानके माने पूजे, भक्ति करे. त्यागी, वैरागी, शांत दांत, वितरागी देव गुरुका त्याग करे. अपमान करे, इन्द्रियों और कषाय की पोषणतामें धर्म और आत्माका कल्याण समझे. सच्चे कामोंपर अरुचि, और कूकामों पर रुचि जगे, यह सब अणाण दोष (अज्ञान दोष) नामे रौद्र ध्यानीके लक्षण जाणना.

चतुर्थ पत्र–"अमरणांत दोष."

४ "अमरणात दोष सो"-रौद्र ध्यानीका वज्र जैसा कठिण हृदय होताहै, दूसरेके सुख दुःखकी उसे बिलकुलही दरकार नहीं रहती है, वो फक्त अपनाही सुख चाहताहै; अपनें से अधिक दूसरेको देख दुःखी होवे, और उसके यश सुख का नाश करनें अनेक उपाय करे. निर्दयता क्रूर परिणाम से त्रस थावरका वध (घात) करे. उनको तरासते

तडफते देख खुशी होवे. ज्यादा २ संताप उपजावे, निडर निष्ठूर, पाप-अकार्य करता बिलकुलही अचकाय नहीं, झूठ बोलता डरे नहीं, चोरीसे हटे नहीं. मैथुन क्रियामें अति असक्त (लुब्ध) परिग्रहकी अत्यंत मूर्च्छा, क्रोध मान, माया, लोभ की अति प्रबलता राग द्वेशका घर. महा क्लेशी, चुगलखोर, गुणीके गुण को ढांकनेवाला. उनके शिर खोटा आल (बज्जा) देनेवाला, अपनी वस्तुपे अत्यंत प्रेमी दूसरेकी वस्तु का अत्यंत द्वेषी, दगाबाज, उपर मीठा और मनमें चीठा. कुगरु, कुदेव, कुधर्मपे श्रद्धा, प्रतीत; आसता रखनेवाले; इत्यादि अष्टादश [१८] पापमें अनुरक्त, धर्मका नाम मात्र अच्छा नहींलगे, मृत्युके बीछोनेपे पडा (मृत्यु नजीक आयेपर) भी, अपने किये हुये कर्म का बिलकुलही पश्चाताप नहीं होवे; ऐसा कठोर. घर कुटुंबमेंही अत्यंत लुब्ध, ऐसे भावसहीत प्राण छोड (मरके) अन्यगतिमें सिधावे सो अमरणांत दोष नामे लक्षण जानना.

"रौद्रध्यानके–पुष्प और फल."

रौद्र ध्यानीके सदा क्रूर परिणाम रहते हैं, मदमत्सर से पूर्ण हृदय भरा होता है. अहो निश पापिष्ट

विचारही मनमें रमण करता है, जिससे वज्र कर्मोका बंध सदा होताही रहता है. इसकी आत्मासे धर्म कर्म बिलकुल नहीं बनता है. जो देखा देख किया भी तो क्रूर प्रकर्तीके सबबसे उसका अच्छा फल नष्ट होजाता है. हाथमें कुछ नहीं आता है, अर्थात् उसके विचारसे कुछ होता नहीं है. होणहार हो तब तो हुवाही रहता है. परंतु उसके मलीन परिणामसे उस के कर्मोका बन्ध अवश्य पडता है, और उन कनिष्ट कर्मोका बदला देने, रौद्र ध्यानीकी नरक गती होती है. वहां यहांके किये हूये कर्मोके फल भुक्तता है! परमाधामी [यम] देव, हिंसा करनेवालेको-जैसी तरह उसने हिंसा करी होय वैसेही वो मारते हैं. अर्थात् काटनेवालोको काटते हैं. छेदनेवालेका छेदन भेदन करते हैं. सिंह सर्प, बिच्छू, कीडे, मच्छर वगेर क्षूद्र जीवोंके घातकको, क्षूद्र जीवोंके जैसा रूप धारण कर उसे चीर फाड खाते हैं; मांस भक्षीको खिलाते हैं. मदिरा पानीको उकलता २ सीसा, तरूवा, तांबा पिलाते हैं. विषय लुब्धीको अग्नि मय लोह पुतलीके साथ संभोग कराते हैं. रागीणीयोंके रसीये कान, रूप लुब्ध की आँख, गंध विलासीका नाक, जिव्हाके लोलपीकी जीव्हाका छेदन भेदन करते हैं. ताते खारे पाणीसे

भरी हुइ 'बैतरणी' नदीमे न्हलाते हैं. तरवारकी धार सेभी अतितीक्षण पत्र वाले शाल्मली वृक्ष तले बेठा के हवा चलाते हैं. कुंभी पाकमें पचाते हैं. कसाइयों- की तरह शरीर: तिल २ जितने टूकडे करते हैं. इ- त्यादि कर्म उदय आते हैं, तब * सागरो बंधतक रो २ के दुःख भोगवते हैं. छूटने मुशकल होजाते हैं. ऐसा यह रौद्र ध्यान दोनो भवमें रौद्र [भयंकर] दुःख दाता जाणना.

रौद्र ध्यानीके बहुधा कृष्ण लेश्या मय परिणाम रहते हैं. यह हिंसा, झूठ, चोरी; मैथुन, परिग्रह यह पंच आश्रव तथा मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, अशुभ जोग यह पंच आश्रव, का सवने वाला, ज्यूंने कर्मोंके फल भोगवता अशुद्ध परिणामके योग्य से पीछा वैसेही कर्मोंका बंध करता है. यों भवांतरकी श्रेणीमें परिभ्रमण कियाही करता है. रौद्र ध्यानीका संसारसे छूटका होना बहुतही मुशकिल है. अनंत संसार रुलता है. इस लिये यह रौद्र ध्यान 'हेय'

---

* चार कोशका उंडा और चौरस कुवेमें, देव कुरुक्षेत्रके जुगलीयोंके वाल आँखमे डाले नहीं खटके ऐसे बारीक कतरके ठसो ठस भरे. और सोसो वर्षमें एकेक रज निका लते वो साफ खाली होजावे उतने वर्षका एक पल्योप म होता है. और दशकोडाकोडी कुवे खाली होवे. उतने वर्षका एक सागरोपम होना है.

त्यागने योग्य है.

"दोनो समुच्चय"

यह आर्त और रौद्रध्यान, अष्टादश पापसे भरे हुये, महा मलीन, सतूपूर्षोंके निंदानिय, अनाचरणीय हैं. यह दोनो ध्यान बिना अभ्याससे पूर्व कर्मोदयसे स्वभाविकही उत्पन्न होते हैं; और कर्मोकी प्रबलता रहती है वहांतक, निरंतर हृदयमें रमन करतेही रहते हैं. उच्चस्थान प्राप्त हुये बडे २ ज्ञानी ध्यानी, तपी, संयमी, मुनिको यह प्राप्त होके एक क्षणमें पाताल गामी बणादेते हैं, ऐसे ये प्रबल हैं; मोक्षमार्ग में अ-गेला (भोगल) समान आडे आके अटकाने वाले हैं, सदवृत्तिका नाश करनेवाले हैं. कलंक जैसे काले, काम जैसे विषारी, पापवृक्षके बीज हैं. अन्य द्रव्यादिकका छोडना सहज है, परंतु इनसे बचना बहुतही मुशकील है. इनका पराजय (नाश) तो एक प्रबल प्रतापी महा मुनीराजही करके अनंत अक्षय अव्याबाध मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषिजी रचित 'ध्यान कल्पतरु' ग्रंथकी द्वितीय-शाखा रौद्रध्यान नामे समाप्त.

उपशाखा-शुभध्यान.

मोक्ष कर्म क्षया देव, ससम्यग्ज्ञानतः समृतः
ध्यान साध्यं मतं तद्धि, तस्मात् द्धितमात्मनः

भावर्थम्—मोक्ष कर्मके क्षय होनेसे होता है. कर्म क्षय सम्यग् ज्ञानसें होते हैं, और सम्यग् ज्ञान शुभ ध्यानसे होता है; इस लिये मुमुक्षुओंको ध्यानही आत्म कल्याणका हेतू है.

प्रथम शाखा-"ध्यानमूल"

इस जगत् में दो बातों अनादिसे चली आती है; एक अच्छी, और दूसरी उसके प्रतिपक्षकी बुरी [खराब] एकेकसें एकेककी पहचान होती है. जैसे रात्रि से दिनकी, और दिनसे रात्रिकी; शीतसे उष्णकी और उष्णसे शीतकी; आचारीसे व्यभिचारीकी और व्यभिचारीसे आचारीकी इत्यादि. सर्व पदार्थोंके गुण की परिक्षा कर, दशवैकालिकजी सूत्रके फरमाने मुजब "जे सेयंते समायरे" अर्थात्-जो श्रेय-कल्याण-

कर्ता अच्छे मालम पडे उसेही अङ्गीकार करे,स्वीकारे.

अशुभ ध्यानमें प्रवृति तो बिना प्रयास स्वभाविक रीतसेही होती है. क्यों कि उसका अनादि सम्बंध है. परंतु शुभ ध्यानमें प्रवृति होनी बहुतही मुशकिल है. क्यों कि कोइभी शुभ कार्य सहजमें नहीं बनता है, जैसे किसी विषके प्रयोगसे अचेत हुवा पुरुष किंचित विष दूर होनेसे चैतन्यताका अवलम्बन होवे है, तथा जैसे प्रचुर निद्रा में सूता हुवा पुरुष एक देश निद्राका अभाव होनेसे कुछ स्मरण शक्तिवंत होवे है. और जैसे पित्तादि विकार करि मूर्छित पुरुष के विकार अंस-किंचित दूर होनेसे कुछ चैतन्यता प्रकटे है, तैसेही निगोदादि एकन्द्रिय पर्याय में अनंतानन्त काल परिभ्रमण करते को अकाम [विनमन-परवश्यपने] कष्ट सहन करते किंचित कर्मांश पतला पडनेसे द्वीन्द्रिआदि त्रस पर्याय की प्राप्ति होती है. और फिर कर्मोंकी अधिकता होनेसे निगोदादि में चले जाते हैं, यों अनन्तान्त वक्त आवा गामन करते२ अति कठिणतासे अनन्तान्त पुण्यों की वृद्धि होते पंचेन्द्रिय की पर्याय पर्यंत जीव आता है. और पंचेन्द्रिय होय करभी क्रूर कर्मोंका आचरण कर पीछा निगोदादि में चला जाताहै. तथा पंचेन्द्रियही बना रह

तो नरकादिमें असंख्य काल व्यतीत करे है. यों अनन्तान्त दुःख भोगवते २ ज्यों ज्यों अशुभ कर्मांस घटता जाय पुण्यांश की वृद्धि होती जाय त्यों त्यों जीव घुणाक्षर * न्यायवत् मनुष्य पनेमें समुत्पन्न होता है. तिसमें भिआर्य क्षेत्र,उत्तम कुल, पूर्ण इन्द्रियइत्यादि सामग्री मिलना बहुतही मुशकिल है, सोभी पुण्योदयसे प्राप्त होजाय; तोभि शुभ ध्यानकी लायकंता प्राप्त होनि बहूतही मुशकिल है. क्योंकि जिस आत्मामें अनादि भव्य सिद्धताका गुन होता है, उस हीका आत्मा कषाय मलको विशुद्ध कर सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त करसक्ता है. वोही आत्मा अनादिसे प्रवर्त हुवे स्वाभाविक रूप आर्त रौद्र ध्यानका स्वरूप जान उससे अपनी आत्माको भिन्न-अलग कर शुभ ध्यानकी योग्यता को प्राप्त होता है. इसलिये शुभ ध्यानके लिये अव्वल सम्यक्त्वकी जरूर है, क्यों कि सम्यक्त्वी ही शुभ ध्यान में प्रवेश करने समर्थ होते हैं. इसलिये अव्वल यहां सम्यक्त्वकी दुर्लभता वताते हैं.

---

* जैसे-कोड़ घुण नामक जीव काष्ट में उत्पन्न होकर उसके भक्षण के लिये उसे कोरते सहज में ही किसी अक्षर का आकार कोरा जाय है. तैसे जीवको मनुष्य पर्यायकी प्राप्ति होय है.

सम्यग दर्शन उपजता है सो आनादि वासादि मिथ्यात्विके उपजता है. परन्तु संज्ञी-पर्याप्ता-मंदकषायी, भव्य,गुण दोषके विचारयुक्त, सकार उपयागी (ज्ञानी) और जाग्रत अवस्था वाला; इन गुणयुक्तको सम्यग् दर्शनकी प्राप्ति होती है; परं इनसे उलट-असंज्ञी, अप्रर्याप्ता, तीव्रकषायी, अभव्य, दर्शनोपीयोगी, मोह निद्रासे अचेत और संमुर्छिम, इनको नहीं उपजता है. और पंचमी करण लब्धी भी जो उत्कृष्ट करण लब्धी अनिवृति करण उसके अंत समयमें प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्रगट होता है.

" पंचलब्धि "

१ क्षयोपशम लब्धि, २ विशुद्ध लब्धि, ३ देशना लब्धि, ४ प्रयोग लब्धि, और ५ मी करण लब्धि, इन पंच लब्धियोंकी यथाक्रम प्राप्ति होनेसेही, सम्यग् दर्शनकी प्राप्ति होती है. चार लब्धि तो कदाचित भव्य तथा अभव्य के भी होती है. परन्तु करण लब्धि तो जो सम्यक्त्व और चारित्रकों अवश्य प्राप्त होनें वाले हैं उन्हेही होवेंगा.

अब "पंचलब्धिका स्वरूप" बताते हैं

१ जिस वक्त ऐसा जोग बनें की, जो ज्ञानावर्णी

आदिक अष्ट कर्मकी सर्व अप्रशस्त प्रकृतिकी शक्ति. का जो अनुभाग, सो समय २ प्रते अनंत गुण कमी होता अनुक्रमें उदय आवे; तब क्षयोपशम लब्धीकी प्राप्ति होवे. २ क्षयोपशम लब्धिके प्रभाव से जीवके साता वेदनिय आदी शुभ-प्रकृतीके बन्धका कारण धर्मानुराग रूप शुभ परिणामकी प्राप्ति होवे, सो दूसरी विशुद्ध लब्धि. * ३ छे द्रव्य नव पदार्थका स्वरूप, आचार्यादिकके उपदेश से पेछाणें, सो देशना लब्धि.§ यह तीन लब्धि कर संयुक्त जीव समय २ विशुद्धता की वृद्धि कर, आयु विन सात कर्मकी अंतः कोटा कोटी सागर मात्र स्थिती रहे; उस वक्त जो पूर्व स्थिति थी उसे एक कांडक घात (छेद) कर उस कांडके द्रव्यकी शेष रही हुइ स्थिति विशेष निक्षेपण करे, और घातिक कर्मका, अनुभाग, (रस) सो काष्ठ तथा लता रूप रहे, परं शैल (पर्वत) स्थिति रूप नहीं. औ

---

*अशुभ कर्मोंका रसोदय घटनेसे संक्लेश प्रणाम की हानी होवे, तब विशुद्ध प्रणाम की वृद्धी स्वभावेही होती है.

§ नरकादि स्थानमें उपदेशक नही हैं, वहां पूर्व जन्मके धार तत्वके संस्कार से व परमाधामी देव के उपदेशसे सम्यक्त्व होता है.

र अघाती कर्मका, अनुभाग, नींब या काँजी रूप रहे. परं हलाहल विष रूप नहीं. पूर्वें जो अनुभाग था उसे अनंत का भाग दे, बहुत भाग अनुभागका छेद, शेष रहा अनुभाग विषय प्राप्ति करे है. उस कार्य करनेकी योग्यताकी प्राप्ति, सो "प्रयोगता लब्धि" * और भी संक्लेश परिणाम सज्ञी पंचेंन्द्रि पर्याप्ताके जो संभवे, ऐसे उत्कृष्ट स्थिति बन्ध, और उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग का सत्व होतें जीवके प्रथम उपशम सम्यक्त्व नहीं ग्रहण होवे है. तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणी विषे संभवते ऐसा जघन्य स्थिति वन्ध और जघन्य स्थिति अनुभाग प्रदेशाका सत्व होतें भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होवें, प्रथम उपशम सम्यक्त्व कें सन्मुख हुवा जो मिथ्या द्रष्टी, सो विशुद्धताकी वृद्धि कर वधता हुवा प्रयोग लब्धिके प्रथम समयसे लगाके पूर्व स्थिति के संख्यातवे भाग मात्र अंतः (एक) कोटा कोटी सागर परिणाम आयुष्य विन सात कर्मका स्थिती वन्ध करे है, उस अंतः कोटा कोटी सागर स्थिति वन्धके पल्य के संख्यात वा भाग मात्र कमी होते, स्थिती वन्ध अंतर्मुहूर्त पर्यंत सामान्कता केलिये करे है; ऐसे

---

* यह प्रयोगता लब्धि भव्य अभव्यके सामान्य होवे है

क्रमसे संख्यात स्थिति बंध श्रेणी कर पृथक (७०० तथा ८००) सागर कम होवे हैं, तब दूसरा पृकृती बन्धाय श्रेणीस्थान होवे, ऐसेही क्रमसे इत्ना स्थिति बन्ध कमी करते एकेक स्थान होवे. यों बन्धके ३४ * श्रेणी स्थान होते हैं. इससे लगाके प्रथम उपशम सम्यक्त्व तक बंध नहीं होवे (यहांतक चौथी लब्धि) ५ पांचमी करणलब्धि सो भव्य जीवकेही होती है, इसके ३ भेद-१ अधःकरण, २ अपूर्व करण, ३ अ निवृति करण†. इनमें अल्प अंतर महुर्त प्रमाणे काल तो अनिवृतीकरण का है, इससें संख्यात गुणाकाल अपूर्व करणका; और इससे संख्यात गुणाकाल अधः प्रवृति करणका होता है, सो भी अंतर महुर्त प्रमाणें होहै.‡ और भी इस अधः प्रवृति करण कालके विषय अतीतादि त्रिकाल वृर्ती अनेक जीव संबन्धी इस करणकी विशूद्धता रूप परिणाम असंख्यात लोक प्रमाणें हैं, वो परिणाम अधः प्रवृती करणके, जिते समय हैं उतेमें सामान वृद्धि लिये समय २ में वृधि होते

---

* इसका विशेष खुलासा लब्धी सार ग्रन्थ मे है.

† करण कषाय की मंदता को कहते हैं.

‡ अंतर मुहूर्त के भेद असंख्य हैं.

हैं, इससे इस करणके नीचेके समयके परिणामकी संख्या और विशुद्धता उपर के समय वर्ती किसी जिवके परिणाम से मिले है, इससे इसका नाम अधःप्रवृतिक है. इस अधः प्रवृति करण के चार आवश्यक—१समय २ प्रते अनंतगुण विशुद्धता की वृद्धि. २ स्थिति बन्ध श्रेणी, अर्थात् पहले जित्ने परिमाण लिये कर्मका स्थिति बन्ध होताथा, उसे घटाय २स्थिती बंध करे. ३ साता वेदनिय आदि दे प्रशस्त कर्म प्रकृतिका समय २ अनंतगुण वृद्धि पाते गुड, सक्कर, मीश्री और अमृत, समान चतुस्थान लिये अनुभाग बन्ध है. ५ असाता वेदनीआदी अप्रशस्त कर्म प्रकृति, समय २ अनंतगुण कमी होती नींब, कांजी, समान द्धि स्थान लिये, अनुभाग बंध होता है. परन्तु हलाहल जैसा नहीं. यह ४ आवश्यकजाणने.

२ अधः प्रवृति करणका अंतर मुहूर्त काल व्यतीत भये, दूसरा अपूर्व करण होता है. अधःकरणके परिणाम से, अपूर्व करणके परिणाम असंख्यात लोक गुणें हैं, सो वहुत जीवोंकी अपेक्षा से; परन्तु एक जीव की अपेक्षासे तो एक समय में एकही परिणाम होता है; और एक जीवकी अपेक्षासे तो जित्ने अंतर मुहुर्त के समय हैं उत्नेही होते हैं. एसेही अधःकरण

के भी एक समय मे एक परिणाम होवे है.और बहोत जीवकी अपेक्षासें असंख्य परिणाम जाणनें. अपूर्वकरणकेभी परिणाम समय २ सदश कर वर्धमान होते हैं. इस अपूर्व करणके परिणाममें नीचेके समयके परिणाम तुल्य उपरके समयके परिणाम नहीं हैं. प्रथम समयकी उत्कृष्ट शुद्धतासेद्वितिय समयकी जघन्य शुद्धता अनंत गुणि है. ऐसे परिणाम अपूर्व पणा है. इसालिये इसका अपूर्व करण नाम है.

अपूर्व करणके पहले समय से लगके अंतः समय तक अपने जघन्यसे अपना उत्कृष्ट, और पूर्व समयके उत्कृष्टसें उत्तर समय के जघन्य, यों क्रमके परीणाम अनंतगुणी विशुद्ध लिये, सर्पकी चालवत् जाणना. यहा अनुत्कृष्टी नहीं हैं. अपूर्व करणके पहले समयसे लगाके जवत् सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी का पूर्ण काल जो जिस कालमें गुण संक्रमण कर, मिथ्यात्व को सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, रूप परगमावें, उस कालके अंत समय पर्यंत-१ गुण श्रेणी,२ गुण संक्रमण, ३ स्थिति खंड, ४ और अनुभाग खंडन यह चार आवश्यक होवे. और भी स्थिति बंध श्रेणी है सो अधः करणके प्रथम समय से लगा गुण संक्रमण पूर्ण होनेके कालपर्यंत होवे है. यद्यपि प्रयोग

लब्धिसेही स्थिति बन्धके श्रेणी होतीहै, तथापि प्रयोग लब्धिसे सम्यक्त्व होनेका अनवस्थित पना है यह नियम नहीं; इसलिये ग्रहण नहीं किया. और भी स्थिती बन्ध श्रेणीका काल, और स्थिती कांड कान्डोत्करणका काल यह दोनों सामान अंतर मुहुर्त मात्र है. वहां पूर्व बंधाथा ऐसा सत्तामें कर्म परमाणु रूप द्रव्य-उसमेसे निकाले जो द्रव्य गुण श्रेणीमें दीये, उस गुण श्रेणी- के कालमें समय २ में असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्तिबंध जो निर्जरा का होना, सो गुण श्रेणी निर्जरा है. २ और भी समय२ प्रते गुणाकारका अनुक्रम ते व्यवक्षित प्रकृति के परमाणु पलट कर, अन्य प्रकृति रूप होके परिणमें सो गुण संक्रमण. ३ पूर्व बन्धीथी वो सत्ता में रही कर्म प्रकृतिकी स्थितिका घटाना सो स्थिति खन्ड है. ४ और पूर्व बन्धे थे ऐसे सत्तमें रहा हुवा अशुभ प्रकृतिका अनुभाग घटना, सो अनुभाग खन्डन. ऐसे चार कार्य अपूर्व करणमें अवश्य होते हैं.

अपूर्व करणके प्रथम समय सम्बन्धी प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतिका जो अनुभाग सत्व है, उससे उसके अंत समय विषे प्रशस्त प्रकृतिका अनंतगुण वृद्धि होता, और अप्रशस्त प्रकृतिका अनंतगुण कमी हो-

ता, अनुभाग सत्त्व होता है; सो समय २ प्रती अनंतगुण विशुद्धता होनेसे, प्रशस्त प्रकृतिका अनंत गुणा अनुभाग कान्डका महात्म कर, अप्रशस्त प्रकृतीके अनंत में भाग अंत समयमेंसंभवता है. ❀

ऐसे अपूर्व कर्ण विषय कहे जो स्थिती कान्डादि कार्य सो विशेष तो तीसरे अनिवृति करण विषय जाणना. विशेष इत्ना हैकि यहां समान समय वर्ती अनेक जीवके सदृस प्रणामही हैं. इस लिये जितने अनिवृति करणके अंतर महुर्तके समय हैं, उत्नेही अनिवृति करणके परिणाम हैं. इससे समय २ प्रते एकेकही परिणाम हैं, और जो यहां स्थिति खन्डन, अनुभाग खन्डादिकका प्रारंभ औरही परिमाण लिया होता है, सो अपूर्व करण सम्बधी जो स्थिति खंडादिक उसके अंत, समयही समाप्त पना हुवा.

यहां यह प्रयोजन है कि-जो अनिवृति करण के अंत समय विषे, दर्शन मोहनी और अन्तानु बन्धी चतुष्क, इनकी प्रकृति, स्थिति, प्रदेश, अनुभाग, का समस्त पने उदय होनेकी अयोग्यता रूप उपसम

❀ इन स्थिति खन्डादि होनेका विशेष अधीकारभी है परंतु यहां ग्रन्थ गौरवके लिये नहीं लिखा.

होनेसे, तत्वार्थकी श्रद्धान रूप सम्यक्त्व होता है वो ही उपशामिक सम्यक्त्व है.

सूत्र=सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानन्त वियोजक दर्शन मोह क्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपक क्षीण मोह जिनाः क्रमशोऽसङ्ख्येय गुणनिर्ज्जरा

तत्वार्थ सूत्र अ० ९

अर्थ—प्रथम उपशम सम्यक्त्व की उत्पत्तिके अनिवृत्ति करणे के अंत समय में वर्त्तता विशुद्धता कर विशुद्ध जो सातिशय मिथ्या दृष्टी उसके आयु कर्म बिन सप्त कर्मकी निर्ज्जरा का जो गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यातगुणाहैं. १उससे असंयति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त होतेही अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यात गुणकार कोलिये गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है. २, उससे देशवृत्ति गुणस्थानके अंतर्मुहूर्त पर्यंत निर्ज्जरा होने योग्य कर्म पुद्गल रूप गुण श्रेणी द्रव्य असंख्यात गुणा है ३, उनसे सकल संयम ग्रहण करनेके आदिका अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यात गुणाकार रूप कर्मकी निर्ज्जरा होने योग्य द्रव्य असंख्यात गुणा है. †४,

† यह सप्तम अप्रमत्त संयत नाम गुणस्थानी के होना है क्योंकि छठा प्रमत्त संयती गुणस्थानतो सप्तमें से पीछे हुवे को होता है.

४उनसे * अनंतान बंधी आदि द्वादश कषाय, नव नोकषाय परिणमन करावे तीन करणके प्रभावसे उनके असंख्यात गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य है५, ॐ उनसे दर्शन मोहको क्षपावनेवालेके गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है ६,उनसे अपूर्व करणादि तीन गुण स्थानी कषायके उपशम करनेवालेकेगुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यातगुणा है७,उनसे उपशांत कषाय गुणस्थानी सकल मोहनीय को उपशम कीया उनके गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुण है ८, उनसे क्षपक श्रेणी वाले अपूर्व करणादि तीन गुणस्थान वाले के गुण श्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुण है ९. और उनसे केवली जिनेस्वर के गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुण है १०.

इन दश स्थान को प्राप्त होय उनके आदिके अंतर्मुहूर्त पर्यंत परिणामकी विशुद्धताकी अधिकता

---

*अनंतानु बंधीकी विसंयोजना अविरत देशाविरत,प्रमत संयति अप्रमत संयति इन चार गुणस्थानमें होयहै.निस गुणस्थानमें विसंयोजना करे.वहीं अंत मुहूर्त पर्यंत समयर असंख्यात गुणी निर्ज्जरा होती है.

ॐ दर्शन मोहका क्षपना करणत्रयके समर्थ श्रुत केवली मनुष्य के अविरतादि चार गुणस्थान में होता है.

कर समय २ प्रति आयुबिना सप्त कर्मोंके प्रमाणु द्रव्योंकी निर्ज्जरा होती है. यहां निर्ज्जरातो स्थान२ प्रति असंख्यात गुणी है, और निर्ज्जरा होनेका काल स्थान २ प्रते असंख्यात वे भाग घटता २ है. यों ज्यों ज्यों कषाय की मंदता रूप परिणामों की विशुद्धता में आगे २ बढते जाते हैं, त्यों त्यों ज्ञानादि निजात्म गुणका प्रकाश अधिक २ बढते जाते हैं. त्यों त्यों अधिक २ ध्यान की योग्यता - लायकना के योग्या आत्मा होता है. और इन सिवाय ज्ञानार्णव ग्रन्थ में ध्यानीके ८ लक्षण कहे हैं.

श्लोक—मुमुक्षुर्जन्म निर्विण्णः शान्तचित्तोवशीस्थिरः;
जिताक्षः संवृतोधीरो, ध्याता शास्त्रेप्रशस्यते.

अर्थ १ मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष जाने की जिसे अभीलाषा होवेगा वोही ध्यानका कष्ट सहेगा; आत्म निग्रह करेगा. २ विरक्त-जिनका पुद्गल परिणित सुखोंसे वृत्ति निवृत्ति है उन्हीके प्रणाम ध्यानमें स्थिरता करेंगे, ३ शांतवृति-जो परिसह उपसर्ग उपनेशांत परिणाम रखेंगे, वोही ध्यानका यथातथ्य फल प्राप्त करसकेंगे, ४ स्थिर स्वभावी-जो मनादि योगोंका कुमार्ग से निग्रह कर, ध्यानमें वृत्तिको स्थिर करेंगे, वोही ध्यानी हो सकेंगे, ५ स्थिरासनी-जिसस्थान

ध्यानस्थ हो वहांसे चल विचल न करे; व ध्यानके कालतक आसन बदले नहीं; वोही सिद्धासनी कहे जाते हैं, ६ जिताक्षा कहीये कांक्षा - वांछाको जीतने वाला अर्थात् जिसे किसी प्रकारके संसारिक सुखोंकी अभिलाषा नहीं होवे. तथा जितेंद्रिय-श्रोत्रादी पंच इंद्रियोंको, शब्दादि पंच विषयसे, रागद्वेषकी निवृत्ति कर, धर्म मार्गमें संलग्न करेंगे, वोही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होवेंगे. ७ संव्रतात्मा जिन्होंने अपणी अंतर आत्मको संव्रत कर, हिंसादि पंचाश्रवसे निववारा, अहिंसादि पंचमहाव्रत स्वीकार किये तथा अनादि परिणति रूप संसर्गकर, जो अंतःकरणकी वृतिकीं विकार मार्ग में प्रवर्ति कराती है उन वार्तियोंको अंतरिक ज्ञान आत्माकी प्रबल प्रेरणा कर निताइ, खान पान की ❀ लोलुपता त्यागी, वोही ध्यान सिद्धि करसकेंगे. ८ धीर होय—अर्थात् ध्यानस्त हुये फिर कैसाभी

* एकदम लोलुपता घटनी मुशकिल है, इस लिये थोडी२ लोलुप्ता घटानेका सदा अभ्यास रखना चाहीये, जैसे यह वस्तु नहीं खाइतो क्या? वह वस्त्र नहीं पहरा तो क्या? यह काम अव्वल तो मुशकिल लगेगा. परंतु फिर सहज होजायगा यों सर्व वस्तु उपरसे लोलुप्ता घटानेकी यह बहुत सहजकी रीती है. यों करनेसे कोइ वक्त निर्ममत्वताको प्राप्त होसक्ते हैं.

कठिण परिसह उपसर्ग आनेसे बिलकुल ही परिणामोंको चल विचल नहीं करें. क्यों कि ध्यान में प्रवेश करते पहिले "अप्पाणं वोसिरामि" अर्थात् मैं इस शरीरको वोसीराता हूं-इसकी ममत्व छोडता हूं, यह शरीर मेरा नहीं, मैं इसका नहीं, ऐसा कहके बेठते हैं; तो जब यह शरीर अपनाही नहीं, तो फिर इसका भक्षण करो, दहन करो या छेदन भेदन करो, कुछ भी करो, अपनेको क्या फिक्कर. ऐसा निश्चय होय, तबही ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सक्ता है. ध्यान किया सो कर्मका क्षय करने किया, और कर्मका क्षयतो विना उपसर्ग, विना दुःख देखे नहीं होता है, जो परिसह उपसर्ग पडेहैं, वो कर्मका क्षय करनेही पडे हैं. ऐसे कर्ज चुकाती वक्त पीछा नहींजहटना. ऐसा दृढ निश्चयसे धैर्य धारणसेही ध्यान सिद्ध होता है. इन आठगुणोंके धारने वालेही ध्यान सिद्धिको प्राप्त होते हैं. ऐसा जाण शुभध्यान करनेवाले मुमुक्षु जनोंको पहले अष्टगुण क्रमसे अभ्याससे प्राप्त करने चाहिये.

द्वितीय उपशाखा-"शुभध्यान विधि."

कोई भी कार्य यथा विधि करने से इष्ट कार्य को

शीघ्र सिद्ध करता है, इस लिये यहां मोक्ष कार्य की सिद्धि करने वाला जो ध्यान है उसके करने की विधि बताते हैं:—

दुहा—क्षेत्र द्रव्य काल भाव यह, शुभाशुभ वसु जान;
अशुभ तजी शुभ आचरी, ध्या ध्याता धर्म ध्यान;

१ क्षेत्र, २ द्रव्य, ३ काल, और ४ भाव, यह ४ शुभ—अच्छे; और ४ अशुद्ध—खोटे. यों ८ भेद होते हैं. जिसमेंसे ४ अशुद्धको त्याग कर, शुद्धका जोग मिलाके है ध्यान ध्याताओ ! शुद्ध—धर्मध्यान ध्यावो.

ध्यानमें मनको स्थिर करने क्षेत्र. द्रव्य. काल. भावकी शुद्धिकी बहुतही जरूर है. अव्वल क्षेत्रकी शुद्धाशुद्धि बताते हैं.

प्रथम पत्र-"क्षेत्र"

१ अशुद्ध क्षेत्र'— दुष्टराजाकी मालकीका क्षेत्र, अधर्मी, पाखंडी, म्लेंच्छ, कुलिंगी रहते हों; ऐसे क्षेत्रमें रहनेसे उपसर्ग उपजनेका संभव है. जहां पुष्प, फल, पत्र, धूप, दीप, या मदिरा, मांस, होवे ऐसे स्थानमे मन चंचल होनेका संभव है. जहां व्याभिचारी स्त्री पुरुष क्रिडा करें, चित्राम किये होवे. काम क्रिडाके शास्त्रों का पठन होना होय. वाजित्र वजते होय. ऐसे स्था-

नमें, वीकार उत्पन्न होनेका संभव है. जहां युद्ध=मल्ल कुस्तीयां लडाई झगडे होते होवें. झगडके शास्त्र पढते होय. पंचायती करते होय, वहां विखवाद होनेका संभव है. जहां अन्यके प्रवेश करनेकी मालिकादिकने मना करी होय वहां रहनेंसे चोरी, क्लेश, और मध्यमे निकालनेका संभवहै. जहां जुवा खेलते होय, कैदी रहते होय, मद्य (दारू) मांस बिकता होय, पारधी रहता होय, सिल्पिक (करिागिर चमार, सोनार, लोहार, रंगारे, इत्यादि) रहते होय. वहां चित्तविग्रह होनेका संभव है. जहां नपुंसक, पशू (तिर्यंच) कुलंछनी, भांड, नट, खट, इत्यादि अयोग्य रहते होय. वहां, अप्रतीत होनेका संभव है. इत्यादि अयोग्य स्थान वर्जके ध्यान करे.

२. 'शुभ क्षेत्र'=निर्जन स्थान—जहां विशेष मनुष्यादिकी वस्तीयां आवागमन न होय. समुद्रके, तथा नदीके तट (किनारे) पर वृक्षोंके समोहमे, वेलीके मंडपोंमें, पर्वतो की गुफामें, श्मशानोकीं छत्रियोंमें, सूखे झाडकी कोचरमें, शुन्य ग्राम या शुन्य गृह (घर) में, वरोक्त (जो अशुद्ध क्षेत्रमें वहा उन) वावनासें वर्जित देवालयमें. इत्यादि स्थान फासुक (निर्जिव) होय, वह ध्यान करने योग्य स्थान है. ऐसे स्थानमें

तृतीय पत्र-"काल."

५ 'अशुभ काल'-†पहला, दूसरा, और तीसरा आरा माठेरा, [कुछकभी] तथा छट्ठा आरा, इन में धर्मीजनोंके अभावसें ध्यान होनेका कम संभव है. और भी अती उष्ण काल, अती शीत काल, अती जीवोत्पातिका काल. दुष्काल. विग्रह काल. रोगग्रस्त काल, इत्यादि काल ध्यानमें बिग्रह करनेवाले गिणे जाते हैं.

६ 'शुभ काल' ध्यानके लिये सर्वोत्तम काल तो चोथा आरा गिणा जाता है. क्यों कि उसमें वज्र ऋषभनराचादि संघेन और ध्यान करनेके अनुकूल जोगवाइयोंकी विशेषता थी. जिससे महान (मरणांतिक) संकट सहन करभी, अडोल [स्थिर] रहतेथे. इस पंचम कालमें संघेणादिककी न्युनतासे, उस मुजब ध्यान हो नहीं सक्ता है. तो भी सर्वथा नास्ती नही समझना, क्यों कि गुण कारक वस्तु तो हमेशा गुणही करती है; चौथे आरेमें सक्करमें ज्यादा मिठास होगा, और अच्छी काल प्रभावसे कमी पडगया हो-

† ये तीन आरा ध्यान साधनेके, लिये ही अशुद्ध हैं, और तरह नहीं समझना.

गा, तोभी सक्कर तो मीठीही लगेगी. ऐसेही इस कालमें भी यथा विधि किया हुवा ध्यान, गुणकर्ताही होगा. और भी ध्यान कर्ता पुरुष शीत उष्णादि कालमें अपनी प्रकृतिके अनुकूल समय विचारे. श्री उत्तराध्येनजी सूत्रमें तो "बीयं झाणझियाइह" ऐसा फरमाया है, अर्थात् दिनकी और रात्रिकी दूसरी पोरसी (पहर) में ध्यान धरे, और कितनेक ग्रंथोंमें पिछली रात्रि [रात्रिका चौथा पहर.] ध्यानके लिये उत्तम लिखा है.

यह द्रव्य क्षेत्र और कालके विधि की विवक्षा अर्थात् शुभाशुभ कहने का मतलब फक्त अपूर्ण ज्ञानी और अस्थिर चित्तवालोंके लिये है. पूर्ण ज्ञानी और अडोल वृति कि जिनका चित्त निर्विकारी होगया है, उन्हे तो सर्व क्षेत्र-द्रव्य-काल अनुकुलही होता है.

चतुर्थ पत्र- "भाव"

७ 'अशुद्ध-भाव, अशुभ या अशुद्ध भावका वरणव, आर्त और रोद्र ध्यान में वताया वोही समझना विषय, कषाय, आश्रव, अशुभयोग, असमाधी चपलता, विकलता, अधैर्यता, नास्तिकता, कठोरता, राग द्वेष रूप परिणाति, वगैरे सर्व अशुभ जोग गिणे

गये हैं. इन से भावोंकी मलीनता होती है.

८ शुभ, भाव, ४ प्रकारके हैं. सो—

मैत्री प्रमोदकारुण्य, मध्यस्थानि नियोजयेत्॥
धर्मध्यान मुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायनं ॥१॥

योग शास्त्र.

अर्थ—१ मैत्री भाव, २ प्रमोदभाव, ३ करुणा भाव, ४ और मध्यस्थभाव, इन चारोंही भाव संयुक्त होनेसे, धर्म ध्यानकी रसायन (हूबहू—स्वाद) पैदा होती है.

१ "मैत्री भाव"—"मितिमें सव्व भूएसु, वेरं मज्झं ण केणइ" अर्थात्—सर्व जीव मेरे मित्र (दोस्त) हैं; इस लिये मेरा किसीके साथ भी किंचित् मात्र वैर विरोध नहीं है. इस जगत् वासी सब जीवोंके साथ अपना जीव माता-पिता-स्त्री-पुत्र-बन्धू-भग्निआदि जितने सम्बंध हैं वो सब एकेक जीवके साथ अनंत २ वक्त कर आया है. श्री भगवतीजी तथा जंबूद्विप प्र-

---

सूत्र—मैत्री करुणा मुदितो पेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावना ताश्चित प्रसादनम. ३३ पतांजल योग दर्शन.

अर्थ—सुखी प्राणीयोंमे मित्रता, दुःखीमे दया, धर्मात्मापे हर्ष, और पापीयोंपे मध्यस्त वृत्ति: इस तरें वृतनेसे चित्त प्रसन्न रहता है.

ज्ञानीने फरमाया है कि "असई अदुवा अणंत खुत्तो" अर्थात् संसारमें इन जीवने, अनंत जन्म मरण कर, सर्व जगत् फरसा है. इस अनुसारसे जगत् वासी सब जीव अपणे मित्र हैं; इस भवके कुटुम्बपे प्रेम रहता है, वैसाही सब जीवोंके साथ रख्खे, सुक्ष्म (द्रष्टि न आवे सो) बादर (दृष्टि आवेसो) त्रस (हले चले सो) स्थावर [स्थिर रहे सो] इन सब प्रकारके जीवोंको अपणी आत्म समान जाणे. सबको सुखी चहावे सो मैत्री भाव.

२ प्रमोद भाव"—इस जगतमें अनेक सत्पुरुष अनेक २ गुणके धरने वाले हैं. कितनेक ज्ञानके सागर हैं. बहोत सूत्रोंके पाठी [पढे हुये] स्याद्वाद शैली कर जिनागम की रस श्रोता गणोंके हृदय में ठसाने वाले, सिद्धान्तकी सन्धी मिलाने वाले, तर्क वितर्क कर गहन विषयको सरल कर बताने वाले, नय निक्षेप प्रमाणादि न्यायके पारगामी, कुतर्कीयोंका

---

*यथा आत्मानःप्रियप्राणाः, तथा तस्यापि देहीनां॥
इति मत्वंन कर्तव्यं, घोर प्राणी वधो बुद्धैः॥१॥

अर्थ—जैसे अपने प्राण अपनको प्रिय हैं. वैसेही सबही के जाणके किसी भी प्राणीका वध कदापि नहीं करे यों ही बुद्धिवंत.

शांतपणे समाधान करने वाले, असर कारक सद्बोधसे धर्मकी उन्नतिके कर्ता, चमत्कारिक कवीत्व शक्ति व वकत्व शक्तिके धारक, ऐसे २ अनेक ज्ञान गुणके धारक हैं. कितनेक शांत दांत स्वभावी, आत्म ध्यानी, गुणग्राही, अल्पभाषी, स्थिरासनी, गुणानुरागी, सदा धर्म रूप आराम (बाग) में अपनी आत्माके रमाणे वाले हैं. कितनेक महान तपस्वी मास क्षमनादि जब्बर २ तपके करनेवाले, उपवास अंबिलादि करनेवाले, षट्रसके विगयके त्यागी, एक दो द्रव्यपेही निर्वाह करनेवाले. शीत ताप, लोच आदिकाया क्लेस तपके करनेवाले हैं. कितनेककी ज्ञानाभ्यास की और तपश्चर्या करनेकी शक्ति नहीं है तो भी वो स्वधर्मीयोंकी भक्ति करते हैं, अहार वस्त्र, शय्यासन, आदि प्रतिलाभ साता उपजाते हैं. कितनेक ग्रहस्थ तन मन धनसे चारही तीर्थकी भक्तिके करनेवाले, धर्मकी उन्नति के करने वाले, प्राप्त हुये पदार्थ कों लेखे लगानेवाले हैं. ऐसे २ उत्तमोत्तम अनेक गुणज्ञोंके दर्शन कर, परसंशा श्रवण कर खुशी होवे. धन्यभाग्य हैं कि हमारे धर्ममें ऐसे २ नर रत्न उत्पन्न हो धर्म दीपाते हैं. यह महा पुरुषों सदा जयवंत रहो ! ऐसा विचार उनका सत्कार सन्मान कर. साता उपजावे, दूसरेको

उनकी भक्ति करते देख, हर्ष पावे, सो प्रमोद भावना.

३ 'करूणा' जगत्वासी जीव कर्माधीन हो अनेक कष्ट पाते हैं. कितनेक अंतराय कर्मकी प्रबलता से हीन दीन दुःखी होरहे हैं. खान, पान, वस्त्र गृह करके रहित हो रहे हैं. कितनेक वेदानिय कर्मकी बृद्धि होनेसे कुष्टादि अनेक रोगों करके पिडित होरहे हैं. कितनेक काष्ट-खोडा बेडी आदी बंधन में पडे हैं, कितनेक शत्रुओंके ताबेमें पडे हैं, कितनेक शीत, ताप, क्षुधा. तृषादि अनेक विपत्ति भोगवते हैं. कितनेक अन्ध, लूले, लंगडे, बधिर, मुके, गुंगे आदि अंगोपांग रहित होरहे हैं, कितनेक पशु, पक्षी, जलचर, वनचर हो पराधीनता भोगवते हैं; बध, बंधन, ताडन, तर्जना सहन करते हैं, हिंसकोंके हाथ कटते हैं. इत्यादि अनेक जीव, अनेक तरहकी विपत्ति (दुःख) भोगवते हुये; सुखके लिये तरसते हैं. हमें कोइ सुखी करो! जीवित्व दान देवो! दुःख संकटसे उगारो! वगैर दीन दयामणी प्रार्थना करते हैं. उन्हे देख दुःखी होय, करुणा लावें. और उनको उस दुःखमें छोडाने यथा शक्ति यथा योग्य प्रयत्न उपाय करे, उन्हे सुखी करे सो करुणा भावना.

४ 'माध्यस्थ [illegible] विश्वमें कितनेक [illegible]

कर्मि पापिष्ट जीव सद्गुण सद्कर्मको त्याग, खोटे को स्वीकार करते हैं. सदा क्रोधमें संतप्त, मानमे अकडे हुये, मायासे भरे हुये, लोभमें तत्पर रहते हैं. निर्दयतासे अनाथ प्राणीयोंका कट्टा करते हैं. मदिरा मांस कंदमूलादि अभक्षका भक्षण करते हैं. असत्य चोरी, मैथुन में पटूता (चतुरता) बताते हैं. विषय लंपट वैश्या पर स्त्री गमन में आनंद मानते हैं, जुगारा [जूवा] दि दुर्व्यसन में लुब्ध अष्टादश पापोंमें अनुरक्त, देव गुरु धर्मके निमित हिंसा करने वाले हिंसामें धर्म माननेवाले, कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी प्रतिष्ठा वडाने वाले, अच्छेकी निंदा करनेवाले, अपनी २ प्रशंसामें मग्न. इत्यादि पापी जीवोंको देख राग द्वेष राहित मध्यस्त् परिणामसे विचार करे कि - आहा! देखो इन बेचारे जीवोकी कैसी विषम कर्म गति है; चार गती रूप संसारमें अत्यन्तकष्ट सहन करते २ अनंत कष्टसे मुक्त [छूटका]करनेवाली अनंतानंत पुण्योदयसे, मनुष्य जन्मादि उत्तमोत्तम सामग्रीयों प्राप्त हुइ है. इसे व्यर्थ गमते हैं! कुमार्गमें लगाते हैं! सुखकी इच्छासे दुःख उपार्जन करते हैं. कंकरकी खरीदमें चिंतामणी रत्न, और विषकी खरीदमें अमृत देते हैं, सुधारेके स्थान बीगाडा करते हैं, हे प्रभू! इन

वेचारे अनाथ पामर जीवोंकी इन कुकर्तव्यके फल भोगवते क्या दशा होगी! कैसी वीटंवणा पायेंगे? तब कैसे पश्चाताप करेंगे? परन्तु इन वेचारे जीवोंका क्या दोष है. यह तो सब काम अच्छे करनेके लियेही खपते हैं, परन्तु इनके अशुभ कर्म इनको सद्बुद्धि उपजने नहीं देते हैं. जैसा २ जिनका भवितव्य (होनहार) होय, वैसा २ ही वनाव बनारहता है. इत्यादि विचारसे मध्यस्थ पणे उपेक्षा=उदासीनता धरे सो मध्यस्थ भावना.

इन चारही भावनाकों भावते (विचारते) हुये और इसमें कहे मुजब प्रवर्तते हुये जीव राग, द्वेष, विषय, कषाय क्लेश, मोहादि शत्रूओंका नाश करने सामर्थ्य (शक्तिवंत)होते हैं. यह भावना भावनेवालेके हृदयमें उक्त, शत्रुकों प्रवेश करनेका अवकाश(स्थान) ही नहीं मिलशक्ता है.

तृतीय उपशाखा-"शुभध्यान साधन.

श्लोक—अष्टावङ्गानि योगस्य यान्युक्तान्यार्य सूरिभिः
चित्तप्रसतिमार्गेण वीजंस्युस्तानि मुक्तये ॥१॥

ज्ञानार्णव.

अर्थात्—पूर्वाचार्यों ने चित्त-मन की प्रसन्नता-ध्यान की सिद्धी करनेके लिये आठ अंग फरमाये हैं,

सो यहां कहते हैं:—

गद्य—कैश्चिद्यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयइत्यष्टावङ्गानि योगस्यस्थानानि॥१॥

अर्थ—१ यम, २ नियम, ३ आसन ४ प्राणायाम, ५ प्रत्यहार, ६ धारण, ७ ध्यान और ८ समाधी, इन आठ प्रकारके साधन से योगाभ्यास [ध्यान] सिद्ध होता है.

प्रथम पत्र-"यम".

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रह यम।" अर्थात्—यमके पांच भेद हैं:—(१) 'अहिंसा' सो—त्रस, स्थावर सर्व प्राणियोंको स्वात्म तुल्य जाने, मैत्री भाव धारन करे. जिससे सब प्राणी सज्जान बने. [२] 'सत्य'-इन्द्रियोंसे और मनसे जैसे भाव जानने में आये होवें वह किसीको दुःख दाता न होवें गुणकेही कर्ता होवें ऐसा बचन अवसर सिर बोले, जिस से बचन सिद्धि होवे. ३ 'अस्तेय'—सचेतन्य अचेतन्य वस्तु जिस विन काम आगे नहीं चले उतनीही, उस का मालक अंतःकरणके उत्सहा से देवे सो ग्रहण करे. जिससे सर्व इच्छित मिले. ४ 'ब्रह्मचर्य'-इन्द्रियों और मनको विकार मय बनावे ऐसे शब्दादि विषयों

से निवृत्ति धारण करे. जिससे शरीरका और बुद्धि-का बल बडे. ५ 'अपरिग्रह'—मनोग्य अमनोग्य वस्तु पर रागद्धेष मय भाव नहीं करे. जिससे त्रिकालज्ञ बने. इन पांचही यमको पूर्णता से धारण करे.

द्वितीय पत्र–"नियम"

"शौच संतोष तप स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः" अर्थात्–नियमके भी पांच भेद हैं:–

(१) 'शौच'❀बाह्यमें सात दुर्व्यसन [ठगाइ, ईर्षा मदान्धता, परपरणति रमणता, खपसे अधिक संचय, मिथ्य वर्तन, अन्यको क्षोभ, और अनाचर] का त्याग करे, अशुचि अंगसे अलग रक्खे, जिससे संसर्गीको

❀श्लोक—सत्य शौचं तप शौचं। शौचं मिन्द्रय निग्रह॥
सर्व प्राण भूत दया शौचं। जलं शौचं तु पंचमः॥ १॥

अर्थ—सत्य बोलनेसे, तप करनेसे, इन्द्रियोंका निग्रह करेन से जीवोंकी रक्षाकरनेसे और जल पानीसे यह पांच तरहसे शुची होती है.

श्लोक—अशुचि करुणाहीनं। अशुचि नित्य मैथुनं॥
अशुचि परद्रव्येषू। अशुचि पर निन्दा भवेत्॥१॥

अर्थ—दया रहित, नित्य मैथुन सेवन करने वाला, चोरी करने वाला और निंदक यह चार सदा अशुद्ध ही रहते हैं.

चाणक्य निति

घृणा न होवे, और अभ्यान्तर शुचिसो काम क्रोधादिसे अलग रहे. जिससे मन निर्मळ होवे.[२]'संतोष'- अन्न नित्य क्षुधा की शान्ति करे उतना, वस्त्र गुप्त अव्ययव ढके उतना या शीतादि से बचावे उतना, और मकान शय्या जितना सोभी, अनित्य वासी हो ग्रहण करे, अधिक इच्छा नहीं करे, जिससे निर्दोष बने सुखी होवे. (३) शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, ताडन, तर्जना वाक्य प्रहार इत्यादि कष्ट समभावसे सहे, धर्म, वृद्धसेवा, सद्गुणका आचरण करे जिससे, ऋद्धि सिद्धिकी प्राप्ति होवे. (४) 'स्वाध्याय'—शास्त्रोंका पठन मनन व ॐकार नमस्कार (नवकार) आदि स्मरण करे, जिससे इष्ट देव प्रसन्न होवें, इच्छित कार्य सिद्ध होवे. [५] 'प्रणिधान'—ईश्वरमें सब भाव समर्पण करे, अर्थात्—होनहार किसीभी प्रयत्न से टाला नहीं टले ऐसा जान शुभाशुभ वर्तावसे मन विग्रह नहीं करे, जिस से समाधी भाव की प्राप्ति होवे. इन ५ नियम को धारे.

तृतीय पत्र-"आसन"

समं काय शिरो ग्रीवा । धारयन्न चलंस्थिरः ॥
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं । स्वादशा श्चान वलोकयत् ॥१॥

प्रशान्तात्मा विगत भीर्ब्रह्मचारी वृत्तेस्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः॥२॥
युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी नियत मानसः ॥
शान्ति निर्वाण परमां मत्सं स्था मयि गच्छति ॥ ३ ॥

गीताजी

अर्थ–श्रीकृष्ण कहते हैं कि–अहो धर्मराज ! जो शरीर मस्तक और गरदन को स्थिर कर. इधर उधर न देखते फक्त नाशिका के अग्रपर दृष्टी को स्थिर कर अंतःकरणको अत्यन्त निर्मळ कर, भय रहित और ब्रह्मचर्य सहित मनका संयम कर मेरी तरफ लगाता है. मेरे कोही सर्वस्वय जानता है,ऐसे योगीयों ही मेरी सहायता से निर्वाण और परम शान्तिको प्राप्त होते हैं.

[विशेष आसनका खुलासा पीछे शुभ द्रव्य में किया है सो जानना.] जिस आसन से शरीर की और मन की स्थिरता रहे वोही आसन श्रेष्ट है.

☞ उपर कहे यम और नियमसे वाह्याभ्यन्तर आत्माको पवित्र कर, आसन लगा, दृढ हो फिर ध्यान की सिद्धीके लिये प्रणायामादि क्रिया करनीं सो कहते हैं.

चतुर्थ पत्र-'प्रणायाम"

" तस्मि न्सति श्वासप्रस्वास योर्गति विच्छेदः प्रणा याम" -अर्थात् श्वासो श्वास का रोकना सो प्रणायाम.

प्रणायाम करने वालेको शुद्धस्थान, स्वच्छ बिछाना, चिन्ता रहित मन, और रोग रहित शरीर की अवश्यक्ता है,भोजन किये बाद तथा मल मूत्र की बाधा होते प्रणामयाम की क्रिया करना उचित नही हैं. इन बातोंको पूर्ण विचार कर फिर उपरोक्त आसन से ठहर-बैठ प्राणायामकी क्रिया प्रारंभ करना चाहिये. प्रथम अपने इष्ट देवका स्मरण-उँ व अँर्ह का जाप करे, फिर ऐसा संकल्प करे कि मैं शरीर शुद्धि के लिये प्राणायाम प्रारंभ करताहूं-फिर प्राणायाम की क्रिया प्रारंभ करे सो कहते हैं

बाह्या प्रणायाम

प्रथम इंडा नाडी (जीमनी नासीका) से धीरे धीरे प्राण वायु उदरमें या हृदयमें भरना इसे कुंभक प्राणायाम कहते हैं [दो मिनिट] ठहर ना, इसे पूरक प्राणाहाम कहते हैं. और फिर पिंगला (डावी नाशिका) से उस भरे हुवे वायु को धीरे धीरे निकाल ना इसें रेचक प्राणायाम कहते हैं. एसा साधन

होवे तब समझना चाहियेकि मैं प्रणाम क्रियाको साध सकूंगा. या प्रणायाम साधक को ऐसी तरह त्रिकाल (शुब्र् मध्यान और श्यामा में) अस्सी २ [८०] वक्त साधन करना चाहीये यों दो महीनेतक साधन करने से सुषुमना का उत्थान हुवा गिना जाता है, और इस उत्थान होनेसे आत्म ध्यान करनेकी योग्यता प्राप्त होती है, मनकी स्थिरता होती है, और शरीर के अंदरका प्राण वायु बहूत शुद्ध होजाताहै-

ऐसे दो महीने हुवे बाद केवल कुंभक प्रणायाम की क्रिया प्रारंभ की जाती है, केवल कुंभककी क्रिया में भी प्रणायाम की माफिक सर्व विधी करना चाहिये. विशेषत्व इत्नाही हैकि क्षण (दोमिनट) से अधिक काल यथा शक्ति हृदयमें व उदर में वायुको रोक रखना, उसे केवल कुंभक प्रणायाम कहा जाता है ऐसी तरह त्रिकाल प्रथम वीस-वीस[२०-२०] वक्त, नंतर तीस-तीस [३०-३०] वक्त दो महीने करनेसे केवल कुंभक प्रणायाम की सामान्य सिद्धि हुइ कही जाती है. यह केवल कुंभक की क्रिया करने से पित्त से कफसे उत्पन्न होते छाती के दरदों क्षयरोग श्वास की शान्ति होती है, शरीर हलका होता है, और इस क्रियाके करनेसे मन को आराम लगता है जिससे मन में जो

अनेक प्रकारके विकल्प उठते हैं वो बंध पड जाते हैं.

पंच वायुकी शुद्धिका उपाय.

श्लोक—हृदि प्राणो गुदेऽपान समानो नाभिमण्डले ॥
उदानः कण्ठ देशेस्यात् व्यान सर्व शरीरगः१॥

अर्थ-हृदयमें प्राण वायु रहता है, गुदा में अपान वायु रहता है, नाभि मंडल में समान वायु रहता है, कण्ठ में उदान वायु रहता है और सब शरीर में व्यान वायु रहता है.

प्राण वायु के जयके लिये हृदय में चित्तवृत्ति का स्थापन कर 'ऐं' मंत्र का स्मरण करते हैं; अपान वायु के जयके लिये नाभि मंडल में चित्त वृत्तिका स्थापन कर 'रौं' मंत्र का जप करते हैं, समान वायु, के जयके लिये नाभि मंडल में चित्त वृत्तिका स्थापन कर 'पैं' मन्त्रका ध्यान करते हैं. उदान वायुका जय करने कण्ठ स्थान में चित्त वृत्ति को रोक 'ब्लौं' मंत्र साधते हैं, और व्यान वायु के जयके लिये सर्व शरीर मे चित्त वृत्ति का रमण कर 'क्रौं' मंत्र साधते हैं. यह जप एकाग्रता से एक मुहूर्त किया जाता है. ऐसी तरह पंच वायुके साधन से जठराग्नि की प्रबलता होती है, जिससे शरीर समबन्धी अनेक रोग जलकर भस्म होते हैं, शरीरकी पुष्टि और लाघवता

हलका पना प्राप्त होता है, जल अग्नि आदि उपद्र से बचाव वगेरे बहूत से द्राबिक गुण होते हैं. ऐसा हेमचन्द्राचार्य विरचित योग शास्त्रका कथन है.

☞ "देखा देखी साधे योग, पडे पिण्ड के वढे रोग" इस आंकडी को ध्यान मे लेकर यह प्रणायाम की क्रिया गुरु गम विन नहीं करना चाहीये.

आभ्यान्तर–प्राणायाम.

बाहिर आत्म भाव जो-शरीर वाणी और मन में आत्म बुद्धि, जड चैतन्यकी अज्ञानता, पुद्गलिक प्रणाति में तन्मयता उनका त्याग करे सो आभ्यन्तर रेचक प्राणायाम. आत्माको ज्ञान-दर्शन-चरित्र गुणों कर पूरना सो पूरक. और उपशम क्षयोपशम भावको स्थिर करना सो आभ्यन्तर कुंभक प्राणायाम. ऐसे दोनों प्रकार प्राणायाम करने से ज्ञाना भरण दूरहो आत्मज्ञान जोती प्रदिप्त होती है.

पञ्चम पत्र–"धारणा"

प्राणायामकरने से मन विग्रह होजाय तो उसको स्थिर करने प्रत्यहार करना पडता है, प्रत्यहार कर्त्ता अपने मन को बाहिरातम भावसे=इन्द्रियों कोंशब्दा-दि विषय से-पुद्गल प्रणति से मन को अत्यन्त खेंच

कर, उदयिक भाव के स्वभाव मे जाति चित्त वृत्ति को मोड–फेर कर क्षयोपशम उपशम और क्षायिक भावकी वृद्धि करे, शरिर के किसी भी एक अव्यय पर मनको स्थापन कर एकाग्रता लगावे जिससे मन स्वाधिन हो जाता है. यों कुछ काल मनकी एकाग्रता हुवे बाद फिर मनकी अंत्तर वृत्ति कर धारणा धारन करे सो कहते हैं-

षष्ठम् पत्र-"धारणा"

"देशबंध श्चित्तस्य धारणा" अर्थात्-फिरते हुवे चित्त (मन) को रोक इष्टमें एकाग्रता करे सो धारणा'

जैसे कामी का मन कामनीमें, लोभीका मन धनमें, और विद्यार्थीयों का मन विद्यामें विन प्रेरा हुवाही अहो निश रमण करता है, तैसा. बल्के इससे भी अधिक चित्तवृति धारणा धारन करने वाले ऋषिश्वरकी एकान्त तत्त्वार्थ-सत्शास्त्रोंके रहस्य में अखन्ड रमण करती है. जैसे वासुदेव प्रति वासुदेव के सन्मुख सर्व स्वय से परांजय करने वीरत्व की प्रेरना कर प्रवर्ते हैं, तैसे कर्म शत्रू का परांजय करने चित्तवृत्ति को अखन्ड संलग्न करे, विचारे कि-मैं अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय का धारक अनन्त शक्तिवन्त हुं. और मेरे प्रति

पाक्षि यह कर्म शत्रू ने मेरे को निज स्वभाव से भुला अनन्त दुःख रूप विटम्बना में डाला यह भान अ-बही मुझ को हुवा सो मेरे अहो भाग्य! येही मेरे सुधारेके चिन्ह हैं. अब गफलत मे रह कर इस अनो-खी सन्धी को गमाना मुझे बिलकुल ही उचित नही; है, ऐसाद्रढ निश्चयकी धारण करे, जिससे संसारिकस वे पदार्थों परसे रागद्वेष की प्रणती मंद पडजाती है. सम भावी आत्मा बन जाती है. आत्मौन्नती होतीहै. और आगे कर्म शत्रूओंका नाश करने ध्यान कर सो कहते हैं:-

सप्तम् पत्र-ध्यान

"तत्र प्रत्येयेक तानता ध्यानम्" धारण के पश्चात ध्यान होता है. जिसकी धारण करी उसमें तन्मय-अभिन्न होवे-सो ध्यान.

(ध्यान के विषय का तो यह ग्रन्थ हैही, तो भी कुछ यहां कहते हैं) ध्यान के दो भेदः-१ नव-नवकार नममोत्थुण लोगस्स, ऊँ, अर्हँ, व अन्यत्त रितिसे सोहं, हंस तत्त्वमासि अहं, ब्रह्मास्मि, इत्यादि पदोंका आलम्बन कर जो ध्यान चिन्तन किया जाय उसे, व किसी भी बाह्य तथा अंतर (आत्म भाव) प्रत्यक्ष परो

क्ष पदार्थ [परभाव] पर दृष्टी स्थापन कर उसके द्रव्य गुण पर्याय का ज्ञान भाव से जो विचार किया जाय उसे सालम्ब ध्यान कहा जाता है. २ और फक्त आत्म द्रव्य का विकल्प रहित जो चिन्तन होता है उसे निरालम्ब ध्यान कहते हैं. ऐसी तरह ध्यान करने से समाधीकी प्राप्ति होती हैं सो कहते हैः—

अष्टम् पत्र "-समाधि"

"तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शुन्यमिव समाधि' अर्थात्—ध्यान के पीछे समाधि होती है. समाधि में ध्याता भान भूल ध्येय रूप बनजाता है, आत्मानुभव संपूर्णतासे प्राप्त होता है. निर्विकल्पवृत्ति से आत्म स्वरूप में रमणता होती है. यहांही अखन्ड सुख का भुक्ता बन जाता है. समाधीवन्त की मुख मुद्रा सदा प्रफूलित, बचन शीतल निर्विषयीं और काया अत्यन्त गौरव गुण की धारक निश्चल, अकुटिल, किसीकोभी खेद नहीं उपजे ऐसी बन जाती है.

"त्रयमेकत्व संयम" धारणा ध्यान और समाधि इन तीनों की एकत्रता होनासो ही संयम है. संयम से ही सर्वसुख और परमपदकी प्राप्ति होती है.

शुभध्यानस्य "फलं."

इस विधिसे किया हुवा ध्यान इस जीवको मोक्ष पंथ लगानें वाला है, हृदयके ज्ञान दीपककों प्रदिप्त करने वाला है, अतिंद्रीय- मोक्षके सुखको प्राप्त कर ने वाला है. यों ध्यान में प्रवेश करनेसे ही अध्यात्म दिशा शांतीकी प्राप्ति होती है. इन्द्रीयोंके विषय उसके चित्तकों आकर्षण कर सक्ते नहीं हैं, मोह नि. द्रास्वभावसे समय २ नष्ट होती, सर्व क्षय होजाती है, और ध्यान निद्रा (समाधी) की प्राप्ती होती है. इस तरेसे शुद्ध ध्यान में प्रवर्तनेसे जीवकों महा पराक्रम प्र गटता है वीतराग दशाकों प्राप्त होता है. उसवक्त ध्याताको मुक्ति सुखका अनुभव यहांही (इस लोकं- में) होने लगता है. ऐसी प्रबल शक्तिके धारन करने. वाला ये विधि युक्त किया हुवा ध्यान है.

यह क्षेत्रादी ८ प्रकारकें शुद्धाशुद्ध ध्यान सा- धनोंमें से अशुद्धकोत्याग शुद्धको ग्रहण करनेवाले और यम नियम आदि अष्ट प्रकारके जो साधन बताये उनकी साधना यथा विधि करनेसे ध्याता ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सकेंगे.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के बालब्रम्हाचारी मुनी श्री अमोलक ऋषिजी रचित ध्यानकल्पतरु की शुभध्यान नामे उपशाखा समाप्तं.
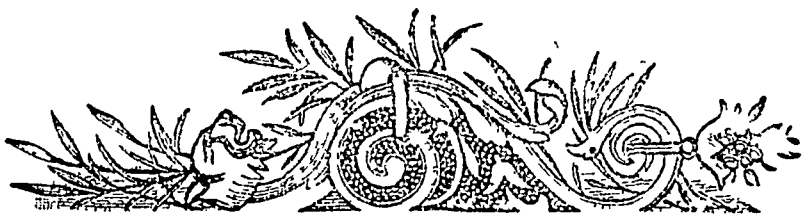
तृतीयशाखा—"धर्मध्यान"

जैसे पहिले अशुभ ध्यानके दो भेद [आर्त-ध्यान और रौद्रध्यान] किये, तैसे शुभध्यान के भी दोही भेद जाणना:–धर्म ध्यान, और २ शुक्ल ध्यान इनका वर्णन अब आगे चलेगा.

पहले उपशाखामें शुभध्यान करने की विधि बताइ. अब यहां ध्यानस्थ हूये पीछे, अच्छा जो विचार करना सो कहते हैं. अच्छे विचार दो तरह से होते हैं,–१ एकांत कर्मोंकी निर्जरा कर, सर्व कर्मोंको नष्ट कर, मोक्षरूप फलका देने वाला, उसे शुक्लध्यान कहतेहैं. इसका बयान आगे किया जायगा. और २ जो विशेष अशुभ कर्म तथा किंचित् शुभ कर्म का नाश कर. और निर्जरा और पुन्य प्रकृति का उपार्ज, न करे सो धर्मध्यान; इसका वर्णन यहां करता हूं.

सूत्र-धम्मेझाणे चउविह चउप्पडायारे पण्णंते तंजहा.

अर्थ—धर्म ध्यान के-चार पाये, चार लक्षण, चार आलम्बन, और चार अनुप्रेक्षा, यों सोलह भेद श्री तीर्थंकर भगवंत ने फर माये हैं, वैसेही यहां कहतेहैं:-

प्रथम प्रतिशाखा-धर्मध्यानके 'पाये'

आणा विजय, आवाय विजय, विवाग विजय, संठाण विजय.

अर्थ—धर्म ध्यान के चार पायेः—१ आज्ञाविचय, २अपाय विचय, ३ विपाक विचय, और ४संठाण विचय.

जैसे तरु(वृक्ष) की चिरस्थाई के लिये पाया (जड) की मजबुताइ की जरूर है. तैसे ही ध्यानको स्थिर करने के लिये चार प्रकारके विचार करते हैं:- १ श्री भगवंत ने इस जीवके उद्धारके लिये हेय(छोडने योग्य) ज्ञेय (जाणने योग्य) उपादेय (आदरने योग्य) क्या क्या हुकम फरमाया ? उसका विचार करे सो आज्ञा विचय धर्मध्यान. २ यह जीव अनंत कालसे क्यों दुःखी है ? यह दुःख दूर कायसेहोते हैं? ऐसा विचार करना सो अपाय विचय धर्म- ध्यान,३ कर्म क्या है ? कैसे उत्पन्न होते हैं ? और क्या क्या

फल देते हैं? यह विचार करे सो विपाक विचय धर्म ध्यान. और ४जिस जगत् में इस जीवकोपरीभ्र-मण करते अंनत काल व्यतिक्रांत होगया, उस जगत् का कैसा आकार है? यह विचार करेसो संठाण विचय धर्म ध्यान,

इन चारहीका विस्तार से वर्णन आगे कहते हैं:-

प्रथम पत्र-"आज्ञा विचय"

"आज्ञा विचय" धर्म ध्यानके ध्याता ऐसा ध्येय (विचार) करेकि-इस विश्वमें रहे हुये बहोतसे जीव आत्म कल्याण की इच्छा करते हैं, वो आत्म कल्याण एक श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामें प्रवर्त्तने (चलने) से ही होता है. श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामेंही रहके साधू, श्रावक जो करणी करते हैं, वो करणी ही आत्म कल्याणकी करने वाली है. आज्ञासे-ज्यादा कमी और विपरीत श्रद्धन करे, वोही मिथ्या-त्व की गिनतीमे है. इस लिये श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा क्या है? उसका अव्वल विचार करनेकी बहुत आवश्यकता (जरूर) है, श्री जिनेश्वर भगवान सर्व ज्ञाता (केवल ज्ञान) को प्राप्त हो, अधो (नीचा) मध्य (विचला) उर्ध (उंचा) तीनही लोकमें. भूत(गया)

भविष्य [होनेवाला] और वर्त्तमान (वर्ते सो) इन तीनही कालमें, जीव और पुद्गलकी अनंतानंत पर्यायों का जो परावर्त्तन [पलटा] हो रहा है उनका प्रकाश किया. तबही आपन उनके हुकमसे जगत् के चराचर (चल स्थिर) पदार्थोंके कोविद [जाण] हुये हैं. और अगोचर [बिन देखते] पदार्थोंके गुण और पर्याय इतने सूक्ष्म-अग्राही हैं कि अपन तो क्या, परन्तु बडे २ चार ज्ञानके धारी, द्वादशांग के पाठी, महा मुनिवरों केही ग्रह्य (लक्ष) में आने मुशकिल होते हैं. जो पदार्थ अपने समजमें नहीं आते हैं, तो भी उन्हे अपन शास्त्रादिमें पढकर सत्य मानते हैं. यह निश्चय अपनकों श्री तीर्थेश्वर भगवानकी आज्ञाके मानने सेही हुवा हैं; क्यों कि अपन निश्चयसे समजते हैं कि श्री वीतराग देव राग द्वेष रहित हैं, उन्हे किसीकाभी पक्ष नहीं हैं, कि वो कभी अन्यथा [झूठ] बोलें. श्री सर्वज्ञ प्रभूने केवल्य ज्ञानमें जैसा देखा वैसा फरमाया, वो सर्व सत्य है.

श्री जिनेश्वर भगवाननें जोजो फरमाया है उसमेका कुछ आवश्यक्य ज्ञान यहां स्तोक करके कह-

सुत्रार्थ मार्गणा महाव्रत भावनाच,
पञ्चेन्द्रिययोप शमता ति दयार्द्र भावः;
बन्ध प्रमोक्ष गमना गति हेतु चिन्ता,
ध्यानतु धर्म मिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञः.

सागर धर्मामृत

अस्यार्थ—सुत्रोंका अर्थ' जीवोंकी मार्गणा, महाव्रत भावना, पांच इन्द्रियों दमनका विचार, दयार्द्रभाव, कर्मसे बन्धनका और छुटनेका उपाय—का विचार, चार गति और ५७ हेतुकी चिंतवना, इत्यादि विचार करे उसे धर्म ध्यानका ध्याता श्री तत्वज्ञ प्रभूने फरमाया है.

ध्यान कर्ताको श्रुतज्ञानकी अव्वल आवश्यक्ता है; इस लिये पहले यहां श्रुतज्ञान का वरणन करते हैं.

"सूत्रार्थ"

गाथा—सुयकेवलं च णाणं, दोणी वि सरिसा-
णि होति बोहओ. सुयणाणं तु परो-
क्खं, पच्चक्खं केवल णाणं.

गोमटसार,

अर्थ—श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान दोनों बरोबर हैं, फरक इत्नाही है कि श्रुत ज्ञान तो परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है, क्योंकि-केवली भगवानने जो जो भाव

केवल ज्ञानमें जाणे हैं, वो सर्व [प्रकाशे उत्ने] श्रुत ज्ञान करकेही श्रोता गणको समजा सके हैं, और केवली के वचनसेही नरक स्वर्ग जावत मोक्ष तक की रचना छद्मस्थ जाणते हैं. वो भी श्रुत ज्ञान ही है. सयंभू रमण समुद्रसेभी अधिक गंभीर; लोकालोकसेभी बडा. सर्व पदार्थोंके अतिरिक्त, कोट्यान सूर्यसेभी अधिक प्रकाश कर्ता श्रुत ज्ञान है. श्रुतज्ञानको *द्वादशांग, और चार ‡ अनुयोग करके, तथा †अंग§

---

* अचारांग, सुयगडायांग, ठाणायांग, समवयांग, भगवती. ज्ञाता, उपशकदशांग, अंतगडदशांग, अणुत्तरोववाइदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, और द्रष्टीवाद, यह द्वादशांग, ‡ प्रथम चरणानुयोग–जिसमें आचारका कथन जैसे आचारंगादी शास्त्र. द्वितीय गणितानुयोग-गणित (संख्या) के शास्त्र जैसे- चंद्रप्रज्ञाप्ती आदि शास्त्र, तृतीय धर्मकथानुयोग सो कथाके शास्त्र जैसे- ज्ञाताजी आदि शास्त्र, और चतुर्थ द्रव्यानुयोग, जिसमे धर्मस्ति आदि षटद्रव्यका विचार जैसे सूयगडायांगजी आदि शास्त्र, यह चार अनुयोग. † आचारांग आदी द्वादशांगके नाम कहे उसमेंसे अब्बी इस कालमें दृष्टीवादांगका अभाव है, इस लिये ११ ही अंग गिणे जाते हैं. §उपांग १२–उववाइ, रायप्रसेणी, जीवा भिगम, पन्नवणा; जंबुद्वीपप्रज्ञाप्ती, चंद्रप्रज्ञाप्ती सूर्य प्रज्ञाप्ती. निरिया वलिका कप्पया, पुप्फिया, पुप्फचुलियो, वन्हीदशा. यह १२ उपांग

उपांग ‖ छेद, %मूल, और अनेक प्रकीर्ण ग्रन्थों क रके विस्तृत कियागया है. * अनेक चमत्कारिक वि-% द्याका सागर है. यह शब्दों करके अवर्णिय है, बडे २ विद्वान भी इसका पार नहीं पासक्ते हैं, श्रुत ज्ञानही सच्चा तीर्थ हे, कि जिसमें पापका लेशभी नहीं है. और इसमें स्नान करनेसे बडे २ पापात्मा पवित्र हो गये हैं. येही जगत् जंतुओंके उद्धार करने सामर्थ्य है, योगीयोंका तीसरा नेत्रहै. इत्यादि अनेक गुणों करके प्रतिपूर्ण भरा हुवा श्रुत ज्ञान है. इसको अभ्याससे प्राप्त करनेमें धर्मध्यानीको बिलकुल ही प्रमाद नहीं करना चाहिये.

‖ व्यवहार.बृहत्कल्प, नशीत, दशाश्रुतस्कंध, यह ४ छेद.
%दशावैकालिक, उत्तरध्ययन नंदी, अनुयोगद्वार.ए ४मूल.

* अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान के मूल अक्षर ६४ हैं. उन में ३३ व्यंजन, २७ स्वर और ४ योग वह हैं, इस के सं-योग जनिक अर्थात-द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी इत्यादि चोसट संयोगी पर्यंत भंग करिये. और उन सम स्त भंगो की जोड देना. तब एक धारि एकट्टीप्रमाण स समस्त अपुनरुक्त अक्षर श्रुतज्ञानके१८४४६७४४०७३७०९५-१६१५ इतने होतेहैं, इनमें सर्व श्रुत ज्ञानका समावेश होजाता है. इन को परमागमा विषे जो प्रसिद्ध जो म ध्यम पद उसके अक्षर—१६३४८३०७८८८, इन का भाग देना सो ११२८३५८०००५, यहतो अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान-

अब आगे जोजो बयान चलता है वो सब श्रुत ज्ञान के पेट मेंही समझना

"मार्गणा"

गाथा—गइ इंदीए काए, जोए वेए कसाय णाणेय,
संजय दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहरे.

तृतीय कर्म ग्रन्थ

अर्थ—गति[1], इन्द्रिय[2], काया[3], जोग[4], वेद[5], कषाय[6], ज्ञान[7], सेजम[8], दर्शन[9], लेश्या[10], भव्य[11], अभव्य सम्यक्त्व[12] सन्नि असन्नि[13] आहारिक अनाहारिक[14], यह १४ मार्गणा. मार्गणाका ज्ञान अतीहीगहनहै. इसके विचारसेध्यानमें अच्छी स्थिरता रहनेका संभव है.इस लिये यहां मार्गणा कहते हैं;

१ "गति', गति उसे कहते हैं कि जिसमें गतागत (आवागमन) करे. वह गती ४ हैं:—(१) 'नरकगति' जो अधो (नीचे) लोकमें ७ दुखमय स्थान हैं. [२] 'तीर्यंच गती' जो एकेन्द्रीय सूक्ष्म तो स-

---

के पदका परीमाण आया. इनके तोद्वादशांग रूप भुक्तहै.और आवशेष अक्षर ८०११८९५. इतने रहे सो अंग बाह्य कहाये,इन अक्षर के १४ प्रकीर्णक दश वैकालिक उत्तराध्येन आदिक कहा वै है. ऐसा लेख दिगम्बर मत के तत्वार्थ सुत्र की अर्थ प्रकाशीका नामक वचनी का के पहिले अध्यायमे लिग्वा है.

वें लोक व्यापी हैं, और बादर एकेंन्द्रिय तथा बैन्द्री-यसे पंचेन्द्रिय पर्यंत पशु (जानवर) जीव हैं. (३) मनुष्य गति' जो तिरछे लोकमें कर्मभूमि, अकर्म भू-मी मनुष्य जीव हैं. (४) 'और देव गति' जो पात-ल (नीचे) लोकवासी भवन पति, बाणव्यंतर, देव-तिरछे लोकमें चंद्र सूर्यादि जोतिषि देव, और उर्द्ध (उंचे) लोकवासी-कल्पवासी १२ स्वर्ग (देवलोक) में रहे वह, कल्पातित सो ९ ग्रीवेग और अनुत्तर वि-मान वासीदेव. यह चार गति. और पंचमी मोक्षको भी गति कहतेहैं परंतु वहां गये पीछे पुनरावृति [आ-ना) नहीं है.

२ " इंद्रिय" इन्द्रिय उसे कहते हैं, जिससे जीव, की जातकी समझ होए. वह इन्द्रिय ५ हैं-(१) एकेंद्रीय' जो पृथव्यादिक एक स्पर्श इन्द्रिय वाले जीव. (२) 'बेन्द्रिय' जो किटकादिक स्पर्श और रस इन्द्रियवाले जीव. (३) 'तेन्द्रिय' जो यूका [ज्यूं] दिक स्पर्श रस और घ्राण इन्द्रिय वाले जीव. [४] 'चोरीन्द्रिय' जो मक्षिकादिक स्पर्श, रस, घ्राण, और चक्षू इन्द्रिय वाले जीव. (५) और 'पंचेन्द्रिय' जो मच्छादि जलचर, [पाणीमें रहे] पशु गायादि स्थलचर (पृथवीपर रहे) हंसादि पक्षी खेचर, (आ-

काशमें उडे) तथा नरक मनुष्य और देवता स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोतेंद्रीयवाले जीव. इन सिवाय *अनेंद्रीय जीव केवली भगवानको कहते हैं.

३ 'काए' काया, शरीरको कहते हैं, वह जीवयुक्त काया ६ हैं- [१] 'पृथ्वी काय' (मट्टी) (२) 'अपकाय' [पाणी] (३) 'तेउकाय' (अग्नि) वाउकाय' (वायु-हवा) (४) 'वनस्पति' [सबजी-लीलोत्री] (यह पांच एकेंद्री हैं) और (६) 'त्रसकाय' (हलते चलते बेंद्रीय से लगा पचेंद्रिय पर्यंतके जीव).

४ "जोग" जोग-दूसरेसे सम्बन्ध करे वह जोग ३ हैं:—[१] 'मन योग' [अंतःकरणके विचार] (२) 'वचन योग' [शब्दउच्चार] (३) 'कायायोग [प्रत्यक्षशरीर]

५ 'वेए' वेद विकारका उदय होवे वह वेद ३:— (१) स्त्री, (२) पुरुष, (३) नपुंसक.

६ "कसाय" कषाय संसारका कस्स (रस) आके आत्माके प्रदेशपे जमे वह कषाय ४ हैं:—(१) क्रोध, (गुस्सा] (२) 'मान' (अभीमान) (३) 'माया' (कपट) (४) 'लोभ' (तृष्णा).

---

*केवल ज्ञानीने अनंत आत्मे शब्दादि विषयको एकहि आत्म रूपे हैं इस लिये उनके कर्णादि अवयव नहीं, उनके विषयसे उनको प्रयोजन नहीं है

७"नाण" ज्ञान—जिससे पदार्थको जाणे वह ज्ञाने ८ हैं:—(१, 'मति ज्ञान' (बुद्धि) (२) 'श्रुति ज्ञान (शास्त्र सम्बन्धी)(३)'अवधी ज्ञान'(रूपी सर्व पदार्थ जाणे)(४) 'मन पर्यव ज्ञान' (मनकी बात जाणे) (५) 'केवलज्ञान-(सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणे (यह) (५ ज्ञान सम्यग द्रष्टिकों होये हैं)और(६) 'मति अज्ञान' (कुबुद्धी २ 'श्रुति अज्ञान'(कुशास्त्राभ्यास)३ 'विभंग ज्ञान'(उलट जाणे) यह ३ अज्ञान मिथ्यात्व द्रष्टीको होते हैं'

८ "संयम—कूकर्मोंसे आत्मा का निग्रह करना रोकना वह संयम ७ हैं:—१ 'अवृति'—जिस सम्यक द्रष्टी ने मिथ्यात्वसे आत्माको बचाइ] २ 'देशव्रति'—श्रावक. ३ 'सामाइक'-देशसे [श्रावककी) और जाव-जीव (साधुकी] ४ 'छे दोपस्थापनिय'-[दोषसे निवा रनेवाला] ५ 'परिहार विशुद्धि (शुद्ध चरित्र)६ 'सू-क्ष्म संपराय' (थोडें लोभाविगर सब दोष रहित) ७ 'यथा ख्यात'—[सर्वथा दोषरहित]

९"दंसण" दर्शन—देखे या दरशे सो दर्शन ४ हैं: १ चक्षु दर्शन —आँखोंसे देखे २ 'अचक्षुदर्शन' —आँ-खविना चार इन्द्रीयसे और मनसे दरशे ३ अवधी दर्शन' रूपिपदार्थ दूरसे देखे, और ४ 'केवल दर्शन'=

सर्व द्रव्य. क्षेत्र, काल भाव देखे -दर्शी

१०"लेश्या"(कर्मसे जीवको लेशे-लेप चढावे-वह)लेशा ६हैं.-१ 'कृष्ण लेश्या,-महा पापी, २ नील लेश्या,-अधर्मी, ३ 'कापातलेश्या'-वक्रस्वभावी -धीठ, ४ 'तेजूलेश्या-न्यायवंत, ५'पद्मलेश्या'-धर्मात्मा, ६' शुक्ललेश्या मोक्षार्थी, और 'अलेशी'अयोगी केवली व सिद्ध भगवंत'

११"भव" संसारमें जीव दो तरहके हैं-१ भव्य वह मोक्षगामी. और २'अभव्य' वह कदापि मोक्ष न जाय. [नो भव्याभव्य सिद्ध भगवंत.]

१२"सन्नि', संसारमें जीव दो तरहके हैं: १'सन्नि' वह ज्ञान व मन युक्त; मातापिताके संयोगसे उत्पन्न होय सो मनुष्य तिर्यंच. और देवता ओं तथा नेरिये. और २ 'असन्नि', वह पाच स्थावर, तीन विकलेंद्रीय और समुर्च्छिम(माता पिता विन हुये)मनुष्य तिर्यंच[नो सन्नी नोअसन्नी सिद्ध भगवंत]

१३ 'सम्मे' यथार्थ पदार्थ की श्रद्धा वह समकित ७ हैं:-१'मिथ्यात्व, वाह्य श्वरूप मिथ्यात्वका और अन्दर समकित पावे सो. २ 'सास्वादान'=लव मात्र धर्म श्रद्धकर पडजायसो. ३ 'मिश्र'=श्रद्धाकी गडबड. ४ 'क्षयोपशमिक'-मोह कर्मकी प्रकृतिं कुछ

क्षयकरी और कुछ उपशमाइ [दांकी] ५'औपशमिक' मोहकी प्रकार्ति उपशमाइ. ६ 'वेदिक' प्रकृती वेदे यह (यह क्षायिकके पहले क्षण मात्र होती है) ७ क्षायिक मोहकी प्रकृतियों क्षय करे.

१४"आहारे" आहार करे वह आहारिक, और मार्ग वहता (एक शरीर छोड दूसरे शरीरमें जाता) तथा मोक्षादिकके जीव अन—आहारिक.

यह १४ही मार्गणा तो अर्थकी सागर है परन्तु ग्रन्थ गौरव के लिये यहां संक्षेपसें चेताया है. ध्यानी इने विस्तारसे चिंतवन करेंगे

'महाव्रत.'

महाव्रत—बडे व्रत, जैसे तलावके नाले रोकनेंसे तलाव में पाणी आना बंद होजाता है. वैसेही व्रत-प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) करनेसे उस जीवके जगत्-का पाप आना बंध होजाता है.

श्रावकके व्रतकी अपेक्षासे बडेसोसाधुजीके पंच महा-वृत ध्यानी जब बहुत करके महावृती होते हैं, इस लिये उन्हे अपने व्रतोंपें ध्यान देनेकी बहुतही जरूर है.

१ "सव्वं पाणाइ वायाओ विरमणं"=अर्थात्-त्रस, स्थावर. सूक्ष्म, बादर, सर्व जीवोंकी हिंसासे त्रिविध२ सर्वथा निवृते. (सर्वथा हिंसा त्यागे).

करे नहीं मनसे वचनसे कायासे. करावे नहीं मनसे वचन से कायासे. अच्छा जाने नहीं मनसे, वचनसे, कायासे. यह ९ कोटी

२ "सव्वं मोसा वायाओ विरमणं"=अर्थात्-क्रोध से, लोभसे, हँसिसे, और भयसे, सर्वथा त्रिविधे २ मृषा (झूठ) बोलनेसे निवर्ते.

३ "सव्वं अदिण्णा दाणाओ विरमणं"=अर्थात् थोडी, बहुत, हलकी, भारी, सचित्त [सजीव] और अचित्त [निर्जीव] इनकी सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ चोरीसे निवृत्ते.

४ "सव्वं मेहुणाओर विरमणं"=अर्थात्-देवांगना मनुष्याणी. और तिर्यंचणी, इत्यादि से मैथुन सेवने-से सर्वथा प्रकारे त्रिविधे २ निवृते.

५ "सव्वं परिग्गाहाओ विरमणं" थोडा ,बहुत, हलका, भारी. सचित्त, और अचित्त, इत्यादि परिग्रहसे सर्वथा प्रकार त्रिविध २ निवृते.

(छट्टा,व्रतसव्वं राइ भोयणं विरमणं" अन्न, पाणी, मेवा मिठाइ, और मुखवास (तंबोलादि) इत्यादि अहार रात्रीको सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ नहीं भोगवे) ध्याती इन महावृतोंको इनकी भावना भांगे तणावे सहित चिंतवन करनेसे अपने कृतव्य परायण होंगे.

१२ "भावना."

१ "अनित्य भावना"-द्रव्यार्थिक नयसे अविनाशी

स्वभावका धारक जो आत्मद्रव्य है उससे भिन्न (अ-लग) रागादि विभाव रुप कर्म हैं, उनके स्वभावसे ग्रहण किये हुवे, स्त्री पुत्रादि सचेतनद्रव्य. सुवर्णादि अचेतन द्रव्य, और इन दोनोसे मिले हुये मिश्र द्रव्य जो हैं सो सर्व अनित्य, अध्रुव, विनाशीक हैं. ऐसी भावना जिसके हृदयमें रमती है, उनका सर्व अन्य-द्रव्योंपरसे ममत्वका अभाव होजाताहै (जैसे वमन किये हुये पैसे ममत्व कमी होता है.) वो महात्मा अक्षय, अनंत, सूखका स्थान, जो मोक्ष उसे पाते हैं.

२ "असरण भावना"—इस आत्माको-ज्ञान दर्शन, चरित्र, तथा अरिहंतादि पंच प्रमेष्टी छोड, अन्य देविन्द्र, नरिंद्र, स्वजन सेना, घर, धन, या मंत्र. जंत्र तंत्रादि कोइभी, शरण—आश्रय देनेवाले नहीं हैं. यथा दृष्टांत—(१) जैसे हरिणके बच्चेको सिंहने ग्रहण किया. उसे छोडाने समर्थ दूसरा हरिण नहीं होताहै. (२) तथा समुद्रमे झाजमेंसे पडे—हुये मनुष्यको कोइ आश्रयभूत नहीं होता है; तैसे. ऐसा जाननेवाले परद्रव्य-से ममत्व उतार, एक-निजस्वभाव-निजगुनकाही आ-लंबन करेंगे; वोही निजात्म स्वरूप—सिद्ध अवस्था कों प्राप्त होवेंगे.

३ संसार भावना—(१) इस संसारमें जितने द्रव्य

हैं, उन सबको ज्ञानवरणीआदि अष्ट कर्मके योगसे तथा शरीर पोषणेके लिये अहार पाणी आदीसे, तथा श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे अपने जीवने अनंतवार ग्रहण किये और छोडदिये, इसे द्रव्य संसार कहना. तथा (२) असंख्य प्रदेशमें व्याप्त यह लोक है उनमेंसें एकेक प्रदेशपर यह जीव अनंत वक्त जन्मा और मरा, यह क्षेत्र संसार है. (३) तथा सर्पिणी और उत्सर्पिणी काल २० कोटा-कोटी सागरका है, उसके एकेक समय में इस जीवने जन्म मरण किये, यह काल संसार. (४) और क्रोधादि ४ कषायके, मनादि त्रियोगके जो प्रकृत्यादि बन्धके भाव हैं, उन्हे अनंत वक्त ग्रहण कर २ के छोडदिये, यह भाव संसार, ऐसे ४ प्रकारके संसारमें यह जीव अनादि कालसे परिभ्रमण करता थका नहीं. अब इस भ्रमणसे निवर्त संसारकी घृणा लावेगा, वोही मोक्ष पावेगा.

४ "एकत्व भावना"—इस जीव कों सहज्ञानंद (स्वभावसे होता) सुखकी सामग्री देखनेवाला अनंत गुणका धारक कैवल्य ज्ञान है. वोही आत्माका सहज शरीर है; वोही अविनाशी हित कर्ता है. और द्रव्य सज्जनादि कोइ भी हित कर्ता नहीं है. क्यों कि अन्य पदार्थ मनको विकल्प उपजाते हैं, और अनेक

प्रकारके दुःख देते हैं. ऐसा जान सर्व बाह्यवस्तुओं से ममत्व उतार, एक आत्मापेही जो द्रष्टी जमावेगा, वोही आत्म तत्वकी खोज कर निजानंद-सहजानंद सुखको प्राप्त होगा.

५ "अन्यत्व-भावना" जगतमें रहे हुये कितनेक सजीव पदार्थोंको कुटुम्ब समजते हैं, और कितनेक अजीवको सहायक मानते हैं. परंतु वो सर्व कर्माधीन और कर्ममय हैं. वो बेचारे आपही सुखी होने सामर्थ्य नहीं हैं; तो अपनेको क्या सुख देंगे, वो अपने ही विनाशसे बच नहीं सके हैं, तो अपनेको क्या बचायेंगे. इतने काल जो इस जीवने संसारमें दुःख पाया, वो सब उन्हीका प्रसाद है. ऐसा निश्चय कर के हे जीव! अन्य सर्व पदार्थ अलग हैं. और मैं शुद्ध चैतन्य अलग हुं. यह मेरे नहीं मैं इनका नहीं. ऐसा निश्चयकर सर्व द्रव्यसे अलग हो, अपने निज स्वरूप को प्राप्त कर सुखी होवे.

६ "अशुचि-भावना" इस शरीरको शुचि करने कितनेक असंख्य अपकाय (पाणी) के जीवोंका वध करते हैं, सो मिष्टाके घटको शुचि करने जैसा करते हैं. देखीये! यह शरीर रुद्र और शुक्रके संयोगसे तो उत्पन्न हुवा है. हुवा और विष्टाके खातसे उत्पन्न हुवे प-

दार्थोके भक्षणसें वृद्धि पाया, और जिन पदार्थोंकी इस शरीमें वृद्धि हुइ वोभी अशुचि हैं, इस शरीरके संयोगसें शुचि पदार्थ अशुचि होते हैं. सुगंध दुर्गंधी होते हैं. प्रशंसनिय निंदनीय होते हैं. मनोहर दुगंच्छनिय होते हैं. बहुत कालसे प्रेमकर संग्रह करके रखे हुये पदार्थ इस शरीरका सम्बन्ध होतेही उकरडीपे डालने जेसे बन जाते हैं ! ! और इस शरीरमेंसे निकलते हुये सर्व पदार्थ घृणाको उत्पन्न करते हैं. ऐसे इस शरीरमें प्रेम उत्पन्न करने जैसा कोनसा पदार्थ है ? परन्तु मोहमद्यमें छके हुये जीव अशुचिकोही प्राण प्यारे बनाते हैं. इससे और ज्यादा अज्ञान दिशा कोनसी ? उनकेही शरीरके उनको प्यारे लगते पदार्थ शरीरसें अलग कर उनहीके हातमें देके दखीये, वो कैसा प्यार करतें हैं. इत्यादि विचारसे अशुचि शरीरपेसे ममत्व त्याग, इस शरीरके अन्दर रहा हुवा जो आत्मा (जीव) परम पवित्र ज्ञानादि रत्नोंका धारक है, इसे अशुचिमय कराग्रह (कैदखाने) से छुडानेके लिये ब्रह्मचर्यादि पवित्र व्रतोंको धारण कर, परम पवित्र शिवस्थानका वासी बनावो.

७"आश्रव-भावना"—जैसे सछिद्र नाव पाणीमें डुबतीहै, वैसेही मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, इन

पाप रूप पाणी, शुभाशुभ जोग रूप छिद्र करके, आ-त्मरूप नावमें प्रवेश कर, संसार रूप समुद्रमें आत्माको डुबाता है, ऐसा जाण आश्रवको छोडके आत्मा को संसार समुद्रसे तारनेका उपाय करे.

८"संवर-भावना"-आश्रव भावनामें आत्माको डुबाने वाले बताये. उनको रोकनेका उपाय सो संवर सम्यक्त्व वृत, अप्रमाद, अकषाय, और स्थिरयोग है. इनसे आत्माको रोक ज्ञानादि रत्नत्रय रूप अक्षय निधि के साथ संसार समुद्रके किनारे, मोक्ष रुप पट्टन है, उसे प्राप्त करे.

९"निर्जरा-भावना"-जीवका स्वभाव तो मोक्षमें जानेकाही है; परंतु अनादि सम्बंधी कर्म रूप वजनसे दबकर जा नहीं सक्ता है. जैसे तुम्बेका स्वभाव तो पाणीके उपरही रहनेका होता है, परन्तु उसपे कोइ मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पाणीमें डाले तो तुम्बा पातलमें बैठ जाता है. फिर पाणीके संयोगसे उसके लेप गलने से वो उपर आताहै, तैसेही जीव रूप तुम्बा, अष्ट कर्म रुप लेपकर, संसारमेंडुब रहाहै; उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षु जन द्वादश (१२) प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाल, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै

उसे प्राप्त करते हैं.

१० "लोकभावना" अनंतानंत आकाश रूप अलोकके मध्य भागमें, ३४३ घनाकार राजू* जित्ने क्षेत्र में लोक हैं, लोकके मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू चौडी त्रस नाल है. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा है. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान है. जो जीव कर्म से मुक्त होते (छूटते) हैं वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापि चलाय मान नहीं होते हैं. सदा निरामय सुखमें लीन रहते हैं. हे आत्मा! उस स्थानको प्राप्त होनेका उपाय कर.

११ "बोध बीज दुर्लभ भावना"—और सर्व वस्तु प्राप्त होनी सहज है. परंतु बोध-बीज सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ति होनी बहुतही मुशकिल है; सो विचारिये! बोध बीज की प्राप्ती विशेष कर, मनुष्य जन्ममें ही होती है, "दुल्लहा खलु माणुसा भवे" अर्थात् मनुष्य जन्म मिलना बहुतही मुशकिल है. ९८ बोलकी अल्पाबहु-

---

*३,८१,२७,९७० मण लोहेको एक भार कहते हैं. ऐसे हजार भारेका एक गोला बना. कोइ देवता बहुत उपर से छोडे. वो ६ महीने. ६ दिन ६ घडीमें जितना क्षेत्र उलंघे सो एक राजू क्षेत्र.

तमें पहलेही बोलमें कहा है कि—"सबसे थोडे गर्भेज मनुष्य" इस बोलकी सिद्धि करते हैं—३४३ राजूका संपूर्ण लोक जीवोसे ठसाठस भरा है, बालाग्र जित्नी-भी जगा खाली नहीं है. उसमें त्रस जीव फक्त १४ राजमें है. जिसमें ७ राजु नीचे नरक और ७ राजू माठेरा (कुछकम) उपर स्वर्ग जिसके बीचमें १८०० जो जनका जाडा और १ राजू चौडा तिरछा लोक गिना जाता है, जिसमें असंख्य द्वीप समुद्र हैं. उसमें ४५ लाख जोजन मेंही मनुष्य लोक गिना जाता है. जिसमें—२० लाख जोजन जगह तो समुद्रनें रोकी है और कुलाचलों (पर्वतों) ने. नदीयोंने बनो ने बहुत जगा रोकीहै मनुष्यके फक्त १०१ क्षेत्रहैं. (इत्ने थोडे मनुष्य हैं) जिसमें फक्त १५ क्षेत्र कर्म भूमीके हैं.उ-ससें भी आर्य भूमी कम है. जैसे भरत क्षेत्रके ३२०००-देशमें फक्त २५॥ देश आर्य हैं. ऐसे अन्य क्षेत्रोमें भी आर्य भूमिकी नून्यता है. और १५ क्षेत्रमें से फक्त ५ महा विदेह क्षेत्रमें तो सदा धर्म करणी का जोग रहता है. और भरत एरावत १० क्षेत्रोंमें दश क्रोडा-क्रोडी सागर सर्पिणी कालमें फक्त १ क्रोडाक्रोडी सा-गरही धर्म करणीका होता है. सो प्राप्त होना बहुत किल है. यह भी मिलगया तो आर्यक्षेत्र, उत्तम

कुल, दीर्घ आयुष्य, पूर्ण—इन्द्रीय, निरोगी-शरीर, सुखे उपजिविक, सद्गुरु दर्शन, शास्त्र श्रवण—मनन निदि ध्यासन, इाके भी-भव्य पणा, सम्यग् द्राष्टिपणा, सुल्लभबोधी, हल्लूकर्मी, स्वल्प संसारीपणा वगैरे जोग मिले, तब धर्मपर रुचि जगे, और वोध बीज सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे. देखा ! कित्ना दुल्लभ बोध वीज मिलता है सो, हे भव्य जनो ! अत्यन्त पुण्योदयसे अपन वहोत उंचे आये हैं. बोध बीज हाथ लगा है (तो अब इसे व्यर्थ न गमाते) आत्म क्षेत्रमें इस वीजको रोप, ज्ञान जल (पाणी) से सींचन करो, की जिससे धर्मवृक्ष लगे जो मोक्ष पल देवे.

१२ "धर्म भावना"—धारयातिती धम्मं" पडते जीवको धर (पकड) रक्खें सो धर्म.* "संसारमी दुःख पउ रए" संसार सागर महा दुःखसे भरा है. इसमें पडते जीवको रोकके. मोक्ष स्थानमें पहोंचावे सो धर्म कहा जाता है. मोक्षार्थीको धर्मकी वहुत आवश्यकता है, वो धर्म कौनसा ? जैन कहते हैं—"धम्मो मंगल मुक्किठं, अहिंसा संजवोतवो" अर्थात् मंगलकाकर्ता, सर्वसे उ-

* "दुर्गति पततः प्राणी धारणा च्चते" अर्थात् दुर्गति पडते हुवे प्राणी को धर रक्खे पकड रक्खे उसे धकहते हैं.—योग शास्त्र-

त्कृष्ट धर्म वोही है की जो-अहिंसा (दया) संयम (इन्द्रीय दमन) और तप करके सयुक्त होए. वेद की श्रुति कहती है "अहिंसा परमोधर्मः" अर्थात् परमोत्कृष्ट धर्म वोही है कि जहां अहिंसा (दया)ने सर्वांग निवास किया है. विष्णु-पुराण कहता है- "अहिंसा लक्षणो धर्मः, अधर्मः प्राणी नांबंधः" अर्थात्-अहिंसा (दया) है सोही धर्मका लक्षण है, और हिंसा हैसो अधर्म है. कुरान कहते हैं. "फला तजअलूबुतन् कुक मकाबरलहयवनात" अर्थात्-तूं पशू पक्षीकी कबर तेरे पेटमें मतकर. बाइबल कहते हैं-"दाउ शाल्ट नोट कील" (*Thou shalt not kill*) अर्थात् तूँ हिंसा करे मत. इत्यादि सर्व शास्त्रोंमें धर्मका मूल 'दया' ही फरमाया है. दयाके दो भेद, १ परदया तो छ काय जीवकी रक्षा करना, और २ स्वदया सो अपनी आत्माको अनाचीर्ण (कुकर्मों)से बाचना. कि जिससें अपणी आत्मा अगामिक कालमें सर्व दुःखसे छूट मोक्षके अनंत अक्षय सुखकी प्राप्ति करे

यह १२ ही भावना मुमुक्ष, प्राणीयोंकों मोक्ष गमन करते हुये पंक्तिये निसरणी रूप है.

"पञ्चेन्द्रियोपशमता."

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोष मृच्छत्य संशयम् ॥

सन्नियम्यतुतान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

अर्थ—जीवों इन्द्रियोंके वश में होनेसे अनेक बिटम्बना पाते हैं. और इन्द्रियोंको अपने वश में करने से आनंदमय मोक्षपद प्राप्त करते हैं.

१ 'श्रोतेंद्री'—कानका स्वभाव जीव, अजीव, और मिश्रके शब्द ग्रहण करनेका है, इसके वश में पड मृगपशु मारा जाता है. २ 'चक्षु इन्द्री'—आँखका स्वभाव काला-हरा-लाल-पीला और श्वेत, रूपको ग्रहण करनेका है. इसके वशमें पडके पतंग मारा जाता है. ३ 'घर्णेन्द्री'—नाकका स्वभाव सुगंध और दुर्गंधकों ग्रहण करनेका है. इसके वशमें पड भ्रमरपक्षी मारा जाता है. ४ 'रसेन्द्री'—जिव्हाका स्वभाव-खट्टा मीट्टा-तीखा-कडू-कषायला, रसको ग्रहण करनेका है. इसके वशमें पड मच्छी मारा जाता है. ५ 'स्पर्शेन्द्री'—इसका स्वभाव हलका-भारी-ठन्डा-उन्हा-लुखा-चिकना-कौमल-खरदरा स्पर्शोंकों ग्रहण करनेका है. इसके वशमें पडके हाथी माराजाता है. अब जरा सोचीए! एकेक इन्द्रिके वशमें पडे, उनकी अकाल मृत्यु हुइः तो जो पांचही इन्द्रिके वशमें पडे हैं, उनका क्या हाल होगा? इन कर्मका बदला [illegible] जाके अवश्यही भोगवेंगे,

अज्ञानसे जीव दुःखरूप इन्द्रियोंके विषयमें सुख मानते हैं. यह आश्चर्य (तमाशा) भी तो जरा देखीये! (१) जो शब्द सुननेसे सुखही होयतो गाली सुन संतप्त क्यों होते हैं, क्योंकि उत्पती और ग्रहण करनेका स्थान तो एकही है, और जो गालीयोंको दुःख रूप मानते हैं वो स्नेही स्त्रीयोंकी गाली सुन खुशी क्यों होते हैं. (२) रूप देखके प्रसन्न होते हैं तो अशुचि देख क्यों घ्राण (दुगंच्छा) करते हैं. क्यों कि वोभी कोइ वक्त में चित्त को हरण करने वाला पदार्थ था! तथा आगमिक काल में रूपान्त्र प.के मजा देनेवाला होजाता है. और सच्चीही अशुचीसे नाखुष होवेतो स्त्री सम्बन्ध अशुची के मथनमें क्यों मजा मानते हैं. [३] दुर्गंध आनेसे नाक क्यों फिरा-ना क्योंकि वोभी एक तरहकी गंधही है. रूपांत हो मनोहर हो जाती है. और जो सच्चेही दुर्गंध से ना-राज होते होतो मृत्यु लोककी ५०० जोजन उपर दुर्गंध जाती है, उसमें क्यों राचे हो! (४) मन्योग-मधुर रस सेही जो सुख प.ते हैं वो फिर हकीमसे क्यों कहें कि शक्कर खाइ जिससे बुखार आगया, और घृत खाया जिससे खांसी होगइ. जो घृत शक्कर जैसे पदार्थ ही दुःख दाता हैं. तो फिर अन्यका क्या

कहें. वैदक कहता है. "रस्साणी ते रोगाणी" अर्थात् रसका भोग रोगकाही कारण है. फिर इस में सुख कैसे माने? ५ चित्त मुनीने ब्रम्हदत्त चक्रवर्तीसे कहा है-"सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामदुहावहा." अर्थात् सर्व भूषण (गहणें) भार भूत हैं, और सर्व भोग दुःख दाता हैं, सो सच्चही है. जैसे सुवर्ण धातु है वैसा लोहाभी धातु है. राजाकी तर्फसे सुवर्णकी बेडी-बक्षीस हुइ तो खुश होते हैं कि हमें पाव में पेहरने सोना मिला और लोहेकी बेडीकी बक्षीस होनेसे रुदन करते हैं. इस विचारसे जाना जाता है कि भूषण में सुख दुःख नहीं परन्तु माननेमेंही है! ऐसेही सर्व काम भोग दुःख दाता है, उनका नामही विषय भोग है; अर्थात्-जेहर खाना परन्तु; जैसे विष (जेहर) और विशेष 'य' प्रत्यय विशेषहैतो यह जेहरसेभी अधिक घाती है. जेहर फक्त भोक्ता-खानेवालेकोही मारता है और विषयतो विचार मात्रसेही विव्हाल-बावलाबना कर अनेक फजीती करता है. औरभीः—

विषयस्य विषयाणांच । दूर मत्यन्त मन्तरम्॥
उपभुक्तं विषंहन्ति । विषया स्मरणादपि ॥

अर्थ—विष (जहर) में और विषय (भोग) में बहुतही अंतर है; क्यों कि-विष तो खाने से प्राण काढ

रण करता है और विषय समरण मात्र सेही मार-डालता है.

भगवंतने फरमायाहैकि-'काम भोगाणुरयणं, अनंत संसार बद्धणं,' अर्थात्-काम भोगमें रक्त रहनेसे, अनंत संसार बढता है. मतलबकी—विषतो एकही भवमें मारता है, और विषय भोग अनंत भवतक मारतेही रहते हैं, बडे २ विद्वानोंको और महा ऋषियोंको बावला बना देते हैं, ऐसा दुरुधर जेहर है. विषय सुखकी इच्छा कर भोगवते हैं. परन्तु क्या २ हानी होती है सोभी तो जरूर देखो! शक्ति, बुद्धी, तेज, स्तव, इनको नष्ट कर, अत्यंत लुब्धतासे, सुजाक आदि रोगोंसे, सड, कीडेपड मरके नरकमें पोलादकी गर्मागर्म पूतलीके साथ गमन कर आक्रांद करते हैं. ऐसे दुःखके सागर विषयको सर्व सुख सागर माने वो शाणा कैसा? ❀ इस तमाशेपे लक्ष दे, धर्म ध्यानी पंचन्द्रियके विषय भोगकी अभीलाषा रूप अज्ञानताको दूर कर, निर्वि-षयी-निर्विकारी-बन सुखी होते हैं.

❀ सवैया-दीपक देख पतंग जला और स्वरशब्दसुणमृग दुःखदाइ; सुगंधलेइ मरा भ्रमरा और रसके काजमच्छी वि रलाइ, कामके काज खुना गजराज, यह परपंच महा दुःख दाइ; जो अमरापदचाहनहो इन पांचोंको वशकीजेरे भाइ

किंबहु लेखनै नेह । संक्षपादिद मुच्येत॥
त्यागो विषय मात्रस्य । कर्तव्योऽखिल मुमुक्षुभिः॥

अर्थ—ज्यास्ति लिख कर क्या करना है. संक्षेप-में इतनाही कहना है कि—मोक्ष के अभिलाषीयोंको सर्वथा विषयका त्याग करनाही चाहीये.

"दयार्द्र-भावः"

श्री सुयगडांग सूत्रके द्वितयि श्रुत्स्कंधके प्रथम अध्यायनमें भगवंतने फरमाया है:—

सूत्र—तत्थ खलु भगवंता छ जिवणिकाय हेउं पण्यता तंजहा, पुढवी काए जाव तसकाए, से जहाणामये मम अस्सायं दंडेणवा अठीणवा. मुठीणवा. लेलूणवा, कवालेणवा, आउट्टिज्जमाणस्सवा, हम्ममाणस्सवा; तार्ज्जिज्जमाणस्सवा; ताडिज्जमाणस्सवा, परियाविज्जमाणस्सवा, किलविज्जमाणस्सवा, उद्दविज्जमाणंस्सवा; जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुक्खं मयं पडिसंवेदेमि; इच्चेवं जाण सव्वेभूता सव्वेपाणा, सव्वेसत्ता-दंडेणवा जाव कवालेणवा आउट्टिज्जमाणावा. हम्ममाणावा. तज्जिज्जमाणावा, ताडिज्जमाणावा, परियाविज्जमाणावा. किलविज्जमाणावा. उद्द विज्जमाणावा. जाव लोमुक्खणणमायमवि;

हिंसाकरंग,दुक्खंभयं पडिसंवेदेति. एवं नचा सव्वेपा- णा जाव सत्ता णहंतवा, ण अज्जावेयव्वा. ण परि- घेतव्वा; ण पारित्तावे यव्वा; ण उद्दवेयव्वा; ॥श्री॥ से बेमी-जेय अतिता, जेय पडुप्पन्ना, जेय आगामि- स्सामि अरिहंत भगवंत. सव्वेते एव माइक्खंति एवं भासंति. एवंपण्णवेति एवंपरुवेति सव्वेपाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा. ण परिघे- तव्वा; ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा. एसे धम्मे धुवे, णीतिए, सासए. समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदेति.

अर्थ,—द्वादश जातिकी परिषदामें भगवंत श्रीतीर्थं- कर देवने निश्चयके साथ फरमाया है कि-छेः जीवका- योंकी हिंसा कर्मबन्धका कारण है. वो छे जीवकाया- के नाव कहते हैंः—पृथवी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्प- ति, और त्रस, इनको दुःख होता है वो यहां द्रष्टांत करके बता ते हैं. "जैसे * मुझे असाता देवे दंडेसे हडीसे, मुष्टिसे, पत्थरसे, कंकरसे, मुझे मारते, तर्जना, ताडना करते परिताप उपजाते, दुःख देते, उद्वेग उ- पजाते, या जीव काया रहित करते, जावत् शरीरपे- का रोम (बाल) मात्रभी उखाडते. इन हिंसाकेका-

*खुद, श्री महावीर परमात्मा अपनेही को बता- के फ़रमाते हैं ?

रणोंसे जैसा दुःख और डर मेरको होता है, ऐसाही जाणो-सब जीव (पंचेन्द्रीयों) को, सब भूत (वनस्पति) को, सर्व प्राणी [बेन्द्रीय तेन्द्रीय चौन्द्रीय] को, और सर्व सत्व [पृथिवी, पाणी, अग्नि, वायु) को दंडेसे मारते जावत कंकरसे मारते, अक्रोश, ताडन, तर्जन—करते. परिताप उपजाते, किलामणा (दुःख) देते, उद्वेग उपजाते, जावत् जीवकाया रहित करते, रोम मात्र उखेडतेभी, इन हिंसाके कारणोसे वो जीव दुःख और डर मेरे जैसाही मानते हैं—अनुभवते हैं." ऐसा जाणके सब प्राण, भूत, जीव, सत्वको मारना नहीं, दंडसे ताडना नहीं, बलत्कार जब्बर दस्तीकर पकडना नहीं- या किसी काममें लगाना नहीं. शरीरी, मानसिक दुःख उपजाके परिताप देना नहीं. किंचितही उपद्रव करना नहीं; और जीव काया रहितभी करना नहीं. ऐसा उपदेश गयेकालमें जो अनंत तीर्थकर हुये वर्तमानकालमें जो विद्यमन हैं. और आवते कालमें अनंत तीर्थकर होयंगे उन सबहीने ऐसाही फरमाया है, संदेह रहि कहाहै, ऐसा उपदेश दिया है, कि—"सर्व प्राण भूत जीव सत्वको मारना, ताडना, तरजन परिताप, करना बंधनमें डलना नहीं, शरीरिक मानसिक दुःख उपजाना नहीं, जावत् जी-

व काया रहित करना नहीं, येही धर्म दया मय नि-श्चय है नित्य है. शाश्वता (सनातन) है. इन बच-नको विचारनाकि सब जीव बेचारे कर्मोंके वशमें हो दुःख सागरमें पढे हैं, उनके दुःखको जाणनेवाले ख-दज्ञ. ऐसे श्री तिर्थंकर भगवानने फरमाया है कि स-बकी दया पालो रक्षा ! करो ! !

गाथा—कल्लाण कोडिजणणी, दुरंत दुरियादूरठवणी;
संसार भवजलतारिणी, एगंत होइसिरिजीवदया-

अर्थ—क्रोडो कल्याणको जन्म देने वाली दुर्दंत दु-रित (पाप) के नाशकी करनेवाली, संत पुरुषोंके स्थान रूप. संसार महा सागर को तारने नाव समान. इत्यादि अनेक सुकार्योंकी करनेवाली सत्फलदेनेवा-ली श्री जीव दयाही है-

'दयाही धर्मका मूल है,' सर्व मत मतांतर एक द-याकेही सारेस चलरहे हैं. दया-अनुकम्पा सम्यक्त्वी-यो (धर्मात्माओं) का लक्षण है. ऐसी पवित्र दया

☞ दीर्घ द्रष्टिसे महा दयाल श्री तीर्थंकर भगवानके वचनोंके तर्फ लक्ष दीजीये! खुद भगवानही फरमाते हैं कि, छे कायकी हिंसा करनेसे उन्हे मेरेही जैसा दुःख होता है! ऐसे दयाल प्रभूको छेही काया की हिंसा कर खुशी करना चहाते हैं, यह किती जब्बर मोह हिंसा !!

का धर्म-ध्यानी आपणी आत्मामें सदा निवास देते हैं अर्थात् सदा दयार्द्र भाव रखते हैं.*

दयाल अन्य जीवोंको दुःखीदेख करुणा लाते हैं. त्रस स्थावर जीवोंको शरीरिक (रोगादिक और मानसिक (चिंता) से पिडित देख, करुणा लावे. जैसे अठवी कोइ दयावंत किसी बधीर (बैरे) को देख. बिचारते हैं कि इस बेचारेके कैसा पापका उदय है, कि यह सुण नहीं सक्ता है. बधीर और अन्धा दोनो दुःखसे पिडित देखनेसे विशेष दया आती हैं. वैसेही किसीको अंगोपांग व अन्न वस्त्र हीन देख, रोग सोगसे पीडाते देख, बहुत दया आती है. तैसेही बेचारे तिर्यंच (पशु) अन्न वस्त्र गृह रहित निराधार हैं,पराधीनतासे क्षुधा-तृषा-शीत ताप आदि अनेक दुःख भोगवते हैं, तीर्यंच पंचेन्द्रीयसे चौरिंद्रीयको दुःख ज्जा-

* श्रेणीक राजारे सुत, हाथी भवदया पालीः मेघरात दयकाज, माडदीयो मरणो॥धर्मरुची दयाधार, करगयाखे वापार; श्रेणिक पडहवजायो, सूत्रमें निरणो॥-नेमजीने दया पाली, छोडदी राजल नारी; मेतारजदया पाल मेट दियो मरणों॥तेवीसमां जिनराय, तापसके पासजाय जीवने बचादीयो–नवकारकोसरणो ॥सवैयों सवायो कीयो घनाक्षरी नामदीयो; जीवदया धर्मपालो, जो थे चावो निरणो. १-कृपारामजी महाराज.

दा है क्यों कि वो एक इन्द्री रहित हैं. चौरिंद्रीसतें-द्रीमें, तेंद्रीसे, बेद्री. बेद्रीसे ऐकेन्द्रीमें और एकेन्द्रीसे निगोद (कंदमूलआदि) में दुःख अधिक है. क्यों कि ये एक शरीरमें अनंत जीव एकत्र रहते हैं. और एक मुहूर्त (४८ मिनिट) में ६५५३६ जन्म मरण करते हैं. इत्नी वे बसी है कि–दुःखसे छूटने का उपाय करनेकी शक्तितो दूर रही परन्तु अपना दुःख दूसरेको दर्शाभी नहीं शक्ते हैं! बेचारे कृतकर्म के फल भुक्तते हैं. और उनकी घात करनेवाले वैसे-ही नवे कर्मोंका बंध करते हैं, वो भोगवते उनके भी ऐसेही हाल होते हैं. ऐसा ज्ञानसे जाणनेवाले फक्त एक श्रीजिनेश्वरके अनुयायीयोंजहैं. वोही सब जीवों को अभय देते हैं,*नहीं तो सब स्थान घमशाण मच

☞* एकेंद्रीके हिंसा सें बेंद्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा बेंद्रीसेतेंद्रीकीमें, तेंद्रीसे चोरिंद्रीकीमें, ओरचौरिंद्रीसे पचें-द्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा, इसका मतलब यह है कि– जो उच्च स्तिति को प्राप्त हुये है वो अनंतानंत पुन्यकी वृधी होनेसे, जैसे गरीबको गाली देनेसे कोइ गिनतीमें नहीं लाता है, और बडेको गाली देनेसे बडे संकटमें पड जाता है, तैसे. तथा जितनी उच्च स्थितीको प्राप्त हुवे है, उत्नेही आत्म कल्याण के नजीक आये. उनको मार नासो उनके आत्म कल्याण का जब्बर नुकशान करना है, तथा एकेंद्रीकी घात बिन अस्थवास नहीं चलता है.

रहा है. मेरे जब्बर पुण्य हैं, कि श्री जैन धर्मका ज्ञान मुझे प्राप्त हुवा. सुयगडांग सूत्रमें फरमाया है कि "एवं खु णाणीणो सारं, ज ण हिंसइ किंच्चणं" अर्थात्-निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है कि किंचित् मात्र जीवकी हिंसा नहींज करना ! इस लिये अब मैं सब जीवोंको त्रिजोगकी विशुद्धि से अभय दानका दाता बनू. सबके वैर विरोधसे निवर्तूं कि फिर मुझे मोक्षमें ज ते कोइभी किसी प्रकार की हरकत करनें समर्थ न होये, दयाही मोक्ष का सच्चा हेतू है.

"बन्ध"

कर्म बन्धनसे छूटनेसेही जीव को मोक्ष मिलता है, इस लिये सुमुक्षु को बन्धका स्वरूप जाणने की आवश्यक्ता है; वह बन्ध के कारण सूत्र में ४ बताये हैं-से-"पयइ टिइ रस पदसा" अर्थात्-१ प्रकृति बन्ध, २ स्थिति बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध. ४ प्रदेश बन्ध, यह ४ बन्धका का स्वरूप मोदक (लड्डु) के दृष्टांत से कहते हैं.

(१) 'प्रकृतिबन्ध' का स्वभाव-जैसे सूंठादिक नेपजे मोदकका स्वभाव होता है कि वायुनाम रोग नाश करना; वैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है

दा है क्यों कि वो एक इन्द्री रहित हैं. चौरिंद्रीसतें-द्रीमें, तेंद्रीसे, बेद्री. बेद्रीसे ऐकेन्द्रीमें और एकेन्द्रीसे निगोद (कंदमूलआदि) में दुःख अधिक है. क्यों कि ये एक शरीरमें अनंत जीव एकत्र रहते हैं. और एक मुहूर्त (४८ मिनिट) में ६५५३६ जन्म मरण करते हैं. इत्नी वे बसी है कि—दुःखसे छूटने का उपाय करनेकी शक्तितो दूर रही परन्तु अपना दुःख दूसरेको दर्शाभी नहीं शक्ते हैं! बेचारे कृतकर्म के फल भुक्तते हैं. और उनकी घात करनेवाले वैसे-ही नवे कर्मोंका बंध करते हैं, वो भोगवते उनके भी ऐसेही हाल होते हैं. ऐसा ज्ञानसे जाणनेवाले फक्त एक श्रीजिनेश्वरके अनुयायीयोंजहैं. वोही सब जीवों को अभय देते हैं,*नहीं तो सब स्थान घमशाण मच

☞* एकेंद्रीके हिंसा सें बेंद्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा बेंद्रीसेतेंद्रीकीमें, तेंद्रीसे चोरिंद्रीकीमें,ओरचौरिंद्रीसे पचें-द्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा, इसका मतलब यह है कि-जो उच्च स्तिति को प्राप्त हुये है वो अनंतानंत पुन्यकी वृधी होनेसे, जैसे गरीबको गाली देनेसे कोइ गिनतीमें नहीं लाता है, और बडेको गाली देनेसे बडे संकटमें पड जाता है, तैसे. तथा जितनी उच्च स्थितीको प्राप्त हुवे है, उत्नेही आत्म कल्याण के नजीक आये. उनको मार नासो उनके आत्म कल्याण का जब्बर नुकशान करना है. तथा एकेंद्रीकी घात विन ग्रस्थ वास नहीं चलता है.

रहा है. मेरे जब्बर पुण्य हैं, कि श्री जैन धर्मका ज्ञान मुझे प्राप्त हुवा. सुयगडांग सूत्रमें फरमाया है कि "एवं खु णाणीणो सारं, जं ण हिंसइ किंचणं" अर्थात्-निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है कि किंचित् मात्र जीवकी हिंसा नहींज करना ! इस लिये अब मैं सब जीवोंको त्रिजोगकी विशुद्धि से अभय दानका दाता बनू. सबके वैर विरोधसे निवर्तूं कि फिर मुझे मोक्षमें जाते कोइभी किसी प्रकार की हरकत करनें समर्थ न होये, दयाही मोक्ष का सच्चा हेतू है.

"बन्ध"

कर्म बन्धनसे छूटनेसेही जीव को मोक्ष मिलना है, इस लिये मुमुक्षु को बन्धका स्वरूप जाणने की आवश्यकता है, वह बन्ध के कारण सूत्र में ४ बताये हैं-से-"पयइ ठिइ रस पदसा" अर्थात्—१ प्रकृति बन्ध, २ स्थिति बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, ४ प्रदेश बन्ध, यह ४ बन्धका का स्वरूप मोदक (लड्डु) के दृष्टांत से कहते हैं.

(१) 'प्रकृतिबन्ध' का स्वभाव-जैसे सूंठादिक से नपजे मोदकका स्वभाव होता है कि-वायुनाश रोग नाश करना; तैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है

कि-ज्ञानकूं ढकना. २ दर्शनावरणी कर्मका दर्शनको ढकना, ३ वेदनीयसे निराबाध—सुखकी हानी, ५ आयुष्यसे अजरामर पदकी हानी, ६ नाम कर्मसे अरूपी पदकी हानी, ७ गोत्रकर्मसे अखोडकी हानी, और ८ अंतराय कर्मसे अनंत शक्तिकी हानी होती है.

(२) 'स्थिति बंध' का स्वभाव, जैसे वो मोदक महीनादि काल तक टिकते हैं. तैसे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, अंतराय, इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट ३० कोडाकोड सागर, मोहकी ७० कोडाकोडी सागर, आयुष्यकी ३३ सागर, और नाम तथा गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति वीसकोडाकोड सागरकी है.

(३) 'अनुभाग बन्ध' का स्वभाव जैसे उन मोदकमें कोइ कडूवा होवे, कोइ मीठा होवे. तैसे ज्ञानावरणी-सूर्यको बद्दल ढके जैसा. दर्शनावरणी-आँखका पट्टा बन्धे जैसा. वेदनी-मद्य (सहत) भरी तरवार चाटे जैसा, मोहनी-मदिरा के नशेके जैसा. आयुष्य खोडे जैसा. नाम-कुम्भार जैसा, गौत्र-चित्रकार जैसा; और अंतराय पहरायत जैसा है. (४) 'प्रदेश-बन्ध' का स्वभाव, जैसे वह मोदक कोइ दुगणी, कोइ तिगुणी सकरके होते हैं, तैसे कितनेक कर्मका बन्ध शिथल (ढीला) और कितनेका निबड (मजबूत) होता

है, कोइ न्हश-थोडी स्थितिवाले, और कोइ दीर्घ (लम्बी) स्थितिवाले होते हैं.

इन चार बन्धमेंसे प्रकृति और प्रदेश बंधतो योगोंसे होता है. तथा स्थिती और अनुभाग बन्ध कषायोंसे होता है. इन बन्धनसे जीव अनादीसे बन्धा है. किसीको तीव्ररसोदय, और किसीको मंद रसोदय हुवा है. ऐसे जगतवासी जीवोंके देखते हैं कि कोइ क्रूर प्रकृति वाले, और कोइ शांत प्रकृतिवाले, कोइ दीर्घायुषी तो कोइ अल्पायुषी, कोइ सुसंयोगी तो कोइ दुसंयोगी, और कोइ सुवर्ण सुसंस्तानी तो कोइ दुवर्ण दुसंस्थानी. इत्यादिके प्रसंगसे अच्छेपे राग और बुरेपे द्वेश नहीं करना, क्योंकि वो वेचारे क्या करें, जैसा२ जिनके बन्धोदय हुवा है वैसा वैसा संयोग बना है, इसे पलटानेकी उनमें सत्ता हैकि जो अपन उनको खोडीला कहें! इत्यादि विचारसे. और स्वसम्बन्धी भीश्रेष्ट नष्ट संयोग वियोग को देख धर्म ध्यानी समभाव रक्खे; जिससे सदा परमानंदी, परम सुखी बनें रहें.

"मोक्षगमन"

"बन्धहेत्वभाव निर्ज्जराभ्यां कृतस्नकर्मविप्रमोक्षामोक्षः"

तत्वार्थ सूत्र.

अर्थ—जैसे बीज में अंकूर उत्पन्न होनेका जो अनादि सम्बन्ध है, उस बीजको अग्निसे दग्ध करने से वो उत्पत्ति सम्बन्ध नष्ट होजाता है, तैसेही ऊपर कहे जो बंधके चार कारण उनकी कृतस्न-संपूर्ण निर्ज्जरा-अभाव होना अर्थात्-ध्यान रूप अग्नि कर उन बंधके कारण को अत्यन्त दग्ध करना-उनसे छूट निर्लेप होना उसेही मोक्ष कहते हैं.

जैसे बन्धनके योगसे तुम्बा पाणीमें डूबा रहता है, और वह बन्धन टूटतेही उस तुम्बेका पाणी उपर आके ठेहरनेका स्वभाव है. तैसेही जीव कर्म बन्धनसे छूटतेही मोक्ष स्थानमें जा ठेहरनेका स्वभाव है. * वह मोक्ष स्थान, लोकके मध्या भाग में जो त्रस नाल १४ राजू लम्बी है, उसके उपर अग्रभाग में एक सिद्ध शिला ४५ लक्षयोजनकी लम्बी चौडी (गोलपतासे जैसी) मध्य में ८ जोजन जाडी, कम होती २ किनारेपे अत्यंत पतली श्वेत सुवर्णकी है उस ऊपर एकही जोजन लोक है. उस जोजनके उपरके चौथे हिस्सेके छट्टे विभागमें सिद्ध स्थान मो-

* जैसे पाणीके आधार विन तुम्बा आगे जाता नहीं है. तैसे ही धर्मास्तिके आधार विन जीव मोक्ष(लोकाग्र के आगे (आलोकमें) जा सक्ता नहीं है.

क्ष स्थान है, वहां मोक्ष प्राप्त हुये जीवके विशुद्ध निजात्म प्रदेश संस्थित (रहे) हैं. वो ऊपर अलोक को लगे हुवे हैं. जो वो विशुद्ध आत्म प्रदेश हैं. सो ही जीवोंकी सिद्ध अवस्था है वो सिद्ध भगवंत कैसे हैं सो कहते हैं.

आत्मो पादानसिद्धं स्वयं मतिशय व द्वीत बांध विशालं
वृद्धीऱ्हास व्यापेतं विषयविरहितं निष्प्राति द्वन्दू भावम्,
अन्यद्रव्या न पेक्षं निरूप ममितं शाश्वतं सर्वकाल
मुत्कृष्ठा नन्तसारं परम, सुख मतस्तस्य सिद्धस्य जातम्

अस्यार्थ–श्री सिद्धपरमात्मा–निजात्म स्वरूप संस्थित, स्वय अतिशय युक्त, अव्याबाध (सर्व व्याधा निर्मुक्त) हानी बृद्धि रहित, प्रातिक्षिकता वर्जित, अनोपम=किसीभी द्रव्यकी औपमारहित, ज्ञानादीकी अपेक्षा अपार. नित्य, सर्व काल उत्तम. परम सारयुक्त इत्यादि अनंत सुख सिद्ध परपात्मा विलसतहै.

और भी सिद्ध परमात्मा अतिन्द्रिय सुखके भुक्ता हैं. क्यों कि इन्द्रि जनित सुखतो फक्त कहने रूपही हैं. परिणाम उनका दुःख रूप होता है-क्योंकि इन्द्रीय के विषय को पोपणसे दुःखही होता है, सो पहिले बताहो दिया. इस लिये सिद्ध भगवंत अनंत सुख के भुक्ता हैं.

सिद्ध परमात्मा ज्ञाना वर्णिय कर्मके नष्ट होनेसे, अनंत केवल ज्ञानवंत हुये, दर्शनावर्णियके नाश होनेसे अनंत केवल दर्शनवंत हुये. वेदनीय कर्मके नाशसे निरावाध सुखसे भुक्ता हुये, मोहनिय कर्मके क्षयसे शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी हुये. आयुष्य कर्मके नष्ट होनेसे अजरामर हुये. नाम कर्मके नाशसे अरूपी हुये. गोत्र कर्मके नाशसे खोड (अपलक्षण) रहित हुये. और अन्तराय कर्मके क्षयसे अनंत-दानलब्धि, लाभलब्धी भोग लब्धि, उपभोगलब्धि और अनंत बलवीर्यलब्धि के धरन हार हुये. ऐसे अनंत गुण सिद्ध भगवंतके हैं. उनका ध्यान ध्यानी करे.

"गति गमन"

पांच गतिमे गमन करनेके २० कारणः— १ महारंभ=सदा त्रस स्थावर जीवोंका आरंभ (घमशाण) हो, ऐसा कारखाना चलावे. २ महा परिग्रह—महा अनर्थ से द्रव्योपार्जन करता अचके नहीं. और "चमडी जावो पण दमडी मत जावो" ऐसा लालची (कंजूस) ३ कुणिमाहारी मांस मदिरादि अभक्षका भक्षक. ४ पंचेंद्रिय बधक—मनुष्य पशुका घातिक. इन चार कर्मोसे नरकमे जाय. ५ माया—दगाबाज. ६ नि-

विड माया=मीठा ठग, धूर्त. ७ मच्छरी—गुणीका द्वे-
षी. ८ कुड माणे—खोटे तोले मापे रक्खे. इन ४ क-
र्मोसे तिर्यंच (पशु) गतिमें जाय. ९ भद्रिक—सरल
(दगा रहित.) १० विनीत—नम्र कोमल स्वभावी मि.
लापू ११ दयाल—दुःखी देख करुणा करे, यथा शक्ति
सुख देवे. १२ 'अमच्छरी'—गुणानुरागी शुभउन्नति इ-
च्छक. इन ४ कर्मोंसे मनुष्य गति पावे. १३ 'सराग
संयनी'—शरीर, शिष्य, उपग्रहणपर ममत्व रखने वाले,
साधु. १४ 'संयमा संयम'—श्रावक. १५ 'बालतपस्वी'
हिंसा युक्त तप करने वाले (कंद भक्षादि) १६ 'अ-
काम निर्जरा'—परवशसे दुःख सहके मरने वाले. इन
४ कामों से देवता होय. १७ ज्ञान—जीवादी ९ पदा-
र्थ जाणें. १८ दर्शन—यथार्थ श्रद्धावंत. १९ चरित्र-शु-
द्ध संयमी (साधु) और २० तप—ज्ञान युक्त तपश्च-
र्या करने वाले- इन चार कामोंसे मोक्ष में जावे. इन
२० कर्मों में से धर्म ध्यानी ४ गति के १६ कामोंको
छोड मोक्ष गमन जाने के ४ कर्मोंका साधन करे.

"हेतू"

संसार के हेतू ५७ हैं—२५ कषाय. १५ योग, १२
अव्रत. ५ मिथ्यात्व. यह ५७ हुये. इनका विस्तार:—
२५ कषाय— १ अनंतान बन्धी क्रोध—पत्थर की तरह

जैसा. (कधी मिले नहीं) २ अनुतान बन्धी मान-पत्थर केस्थंभ जैसा (कधी नमें नहीं] ३ अनुतान बन्धी माया-वाँशकी जड जैसे. (गांठ में गांठ) ४ अनुतान वन्धी लोभ-किरमची रंग जैसा (जले तो भी न जाय) :[यह मिथ्यात्वी नरक में जाय] ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध-धरती की तगड (बर्षाद से मिळे) ६ अप्रत्याख्यानी मान-काष्ट स्थंभ (मेह-नत से नमें) ७ अप्रत्याख्यानी माया-मींढाका श्रृं-ग (आंट दिखे)८ अप्रत्याख्यानी लोभ-*खंजरका रंग (क्षार से निकले) [यह देशव्रत घाती. तिर्यंच में जाय]९ प्रत्याख्यानी क्रोध-रेती की लकीर(हवा से मिले.) १० प्रत्याख्यानी मान-बेत स्थंभ (नमाये नमें) ११ प्रत्याख्यानी माया-चलते बैल का मूत (वांक साफ दिखे) १२ प्रत्याख्यानी लोभ-कादव-का रंग (सूखन से अलग हो) (यह सर्व व्रत घा-तिक, मनुष्य होय.) १३ संज्जलका क्रोध-पाणी की लकीर. १४ 'संज्वलकामान-त्रणस्थंभ १५ संज्वलकी माया=वांशकी छूंती. १६ 'सज्जलका लोभ-पंतगका रंग (यह केवल ज्ञानका घातीक, देवता होय) १७ 'हास'-हँस, १८ 'रति' खुशी, १९ 'अरति'-उदासी,

* गाडीके पहेयेका ओंगन.

२० 'भय'—डर. २१ 'शोक' चिन्ता. २२ दुगच्छा. २३ स्त्रीवेद. २४ पुरुषवेद, २५ नपुंसक वेद, यह पच्चीस-ही कषाय कर्मके रसको आत्मापे जमाती है.

१५ जोग—१ सत्यमन,३मिश्र मन, (साचा झूठा भेला) ४ व्यवहार मन, (साचाभी नहीं और झूठाभी नहीं *) ५ सत्य भाषा ६ असत्य भाषा, ७ मिश्र भाषा, ८ व्यवहार भाषा. ९ औदारिक—सप्त धातु मय, मनुष्य, तिर्यंच, का शरीर, १० औदारिक मिश्र औदारिक उत्पन्न होते, या वेक्रय करते वक्त मिलता रहे. ११ वेक्रीय-शुभाशुभ पुद्गलोंसे वना, नरक, देव, का शरीर. १२ वेक्रिय मिश्र वेक्रिय उपजे तव, या उत्तर वेक्रिय करे तव मिश्रता रहे, १३ अहारिक-पूर्वधारि मुनी संशय निवारने आत्म प्रदेशका पूतला निकाले सो. १४ अहारिक मिश्र—पूतला निकालते व स-मावते वक्त मिश्रता रहे. १५ कारमाण जोग प्रथम शरीरको छोड दूसरे शरीरमे जाती, वक्त वोलावू रूप साथ रहे सो. यह १५ योग कर्मोंका आकर्षण करते हैं.

१२ "अव्रत" (१—६) पृथवी. पाणी. अग्नि, वायु वनस्पति और त्रस. (इन छे कायका जितना

---

* जैसे जलता तो तेल वत्ती और कहे दीवा जले. जाते तो आप हैं. और कहे ग्राम आया इत्यादि.

आरंभ) (७–१२ श्रुत, चक्षू, घ्रण, रस, स्पर्श और मन (इन छे इंद्रियोंके पोषणे लिये जगत में होता है. उन) की अव्रत समय २ अपच्चक्खाणीके आती है. और कर्मका बन्ध करती है. देखीये! इंद्रीयों पोषणे अनेक पचेंद्रीयका कट्टा कर चमडा लाते हैं. और वाजिंत्र मंडाते हैं, धातू गलाके कशाल भंभा प्रमुख बनाते हैं. अनेक मनोहर स्थान वस्त्र, भूषण भोजनादि सामग्रही अनेक आरंभ कर निपजाते हैं. मदिरा मांस अभक्षका आहार, परस्त्री वैश्या गमन, इत्यादि एकेक कर्म के पापके सामे जो दीर्घ द्रष्टी से विचारते हैं तो बेचारे पृथव्यादि जीवोंका घमशाण दृष्टी पडता है. (१) एक वस्त्र निपजाणे-पृथ्वी का पेट हलसे चीरना, और खेती में खात न्हाख उसमें असंख्य त्रस स्थावर का कट्टा. निदाणी प्रमुख अनेक खेती के पापसे झाड होवे, कपास लगे, उसे चूंट भेला करे, फिर गिरनी पे लोढावे, जावत वस्त्र तैयार होवे वहां तक असंख्य त्रसस्थावरोंका घमशाण हो जाय. फिर रंगण कर्म वगैर होवे वहां का पाप विचारीये. एसे महा अनर्थ से एक वस्त्र निपजता है. तैसेही भूषण को देखीये! धातुर्वादी धातुसे मट्टी अलग कर, सोनार उसे गला वाट घड उज्वलादी क्रिया में

कितना आरंभ होता है. ऐसे भोजन मकान वगैरे संसारके अनेक कार्योंको अलग २ उत्पत्ति से उपयोग में आवे वहां तक के पापोंके तर्फ द्रष्टि लगाने से रो मांच होते हैं. ऐसा महा पाप करके यह संसार भरा है, और एकेक वैपारमें द्रष्टि लगाके देखो कितना जु- लम निपजता है. कित्नेक पापतो अपने जाण में हो ते हैं. और कितनेक महा घोर जगत्के पातकोंसे अपन वाकेफ भी नहीं हैं. तो भी उनकी अव्रत(पाप का हिस्सा) अपच्चक्खाणी सब जीवोंको लग रहा है. जैसे घरके किमाड न लगाये तो विना जाणे देखे और बिना मनभी कचरा घरमें घुस जाता है, तैसे विन पच्चक्खाण किये पाप आत्माको लगता है. ऐ सा जाण मुमुक्षु जीवोंको वारेही अव्रत्त रोकना चाहीये.

५ "मिथ्यात्व"—इस जीवने इस संसारमें अनंत परिभ्रमण किया उसका हेतू मिथ्यात्व ही है, यह छू टना बहूतही मुशकिल है. क्योंकि अनादी कालका सोबती है. और इसके छूटे विन मोक्ष नहीं मिले. इसके लिये मुमुक्षु को इन की पहिचान जरूरही कर ना चाहीये. इसके मुख्य ५ भेद हैं:—

१ "अभिग्रह मिथ्यात्व"—खोटा पक्ष पक्का धारण

करे, अर्थात् जो अज्ञान[1], मंद[2] क्रोध[3], मान[4], माया[5], लोभ[6], रति[7], अरति[8], निंद्रा[9], शोक[10], झूट[11], चोरी[12], मत्सर[13], भय[14], हिंसा[15], प्रेम[16], क्रीडा[17], हांस[18] यह १८ दोष युक्त होवे उन्हे सत्‌देव माने, और इन १८ दोष रहित देव हैं उन्हे कुदेव माने. ऐसेंही हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन परिग्रह, पचेंद्रीके विषय भोगी चार कषायमें उनमत्त इन दुर्गण युक्त ज्ञान दर्शन चरित्र तप विर्य(पंचाचार) इर्या, भाषा, एषणा आदान निक्षेपना, परिठावणिया (यह समिती) मन, बचन, काय, की गुप्ती इन सद्गु णों रहित उनको गुरु माने. हिंसा झूठ, चोरी, मैथुन परिग्रह कोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश, चु गली, निंदा, हर्ष, शोक, रात्री भोजन, मिथ्यात्व यह अठारह कामोंमें धर्म माने, और इससे सुलट जो है उसे अधर्म माने. ऐसे तीनही कुतत्वका पक्का कदाग्र, ह धारण किया. पूछे से कहे कि-हमारी पीडीयों से यह धर्म चला आता है. इसे हम कदापि नहीं छोडें गे, ऐसा हठाग्राही होवे सो अभिग्रह मिथ्यात्वी.

२ "अनाभिग्रह मिथ्यात्व"=सुदेव, कुदेव, सु- गुरू कुगुरू, सुधर्म कुधर्म सबको एकसा(सरीखा) स- मज के वंदे पूजे. सत्यासत्य का निर्णय नहीं करे. को इ समजावे तो कहे कि-अपनको इस झगडेसे क्या मत

लब, सब महजबमें वडे २ विद्वान गुणवान बैठे हैं. तो किसे झूठा कहें? सब अच्छे हैं.

३ "आभिनिवेशिके मिथ्यात्व"-कुदेव-गुरु धर्म और शास्त्रको किसी सत्संग करके यथार्थ समज जाय कि-यह खोटा है; परंतु लोकोंकी कुल गुरूओंकी शरम में पड उन्हे छोडे नहीं; विचारे कि जो में इसे छोड देवुंगा तो मेरे गुरु और मित्रों स्वजनो मुझे ठपका देंगे, निंदा करेंगे. और इस महजब के तो यहां वहुत लोक हैं, मुझे आगेवानी कर रखा है, सव मेरे हुकम में चलते हैं, मेरा मान महात्म खूब वडा है, जो मैं इसे छोड देवूं तो सब वदल के निंदा अपमान करेंगे इत्यादि विचार सें खोटे को खोटा जाणता हुवा ही छोडे नहीं; अपना जन्म काली धार डूब रहा है, उसका उसे बिलकुल फिकर नहीं. ऐसे भारी कर्मी जीवको आभिनिवेशिक मिथ्यात्वी कहना.

४ "संशय मिथ्यात्व"=कितेक अल्पज्ञ जीव, तथा अज्ञानी, किसी पुण्य योग्यसे जैन धर्म तो पागये, जैन के शास्त्र सुणे, क्रिया करे, परतुं कित्नीक गहन बातों नहीं जचनेसे शंका करे कि—सुइकी अग्र जित्नी जगेहमें अनंत जीव, पाणीकी बूंदमें असंख्याते जीव, पूर्व पल्योपम और सागरोपम का आयुष्य, इ-

जारो लाखो धनुष्यकी अवगहना, नगरीयोंका प्रमाण और वस्ती, चक्रवर्तीकी ऋद्धि और पराक्रम, लब्धीयों, भुगोल खगोल का हिसाब, तथा अरूपी जीवरशी, सूक्ष्म जीवों, और मोक्षके सुख तथा-आस्तित्व वगैरे २ बातोंमें वैम लावे, कि—यह असंभव बातों सच्ची कैसे मानी जाय? परंतु यों नहीं विचारे कि—यह अनंत ज्ञानीके समुद्र जैसे बचन मेरी लोटे जैसी बुद्धिमे कैसे समावे. वीतरागी पुरुष मिथ्यालाप कदापि नहीं करनेके, केवल ज्ञानमें जैसा दृष्टी आया वैसा फरमाया. और सच्च है. अब्बीभी १ जो क्रोड औषधी के चूर्ण का राइ जित्ने विभागमें भी क्रोड औषधी का अंश समजतेहैं, यह तो करतबी है तो कुदरती कंदमूलके टुकडेमें अनंत जीव होवें उसमें क्या आश्चर्य.? २ अब्बी भी हाथीका बडा और कुंथवेका छोटा शरीर होता है. वैसे ही गत कालमें मनुष्यादि की जादा अवगेहणा और जादा आयुष्य होवे उसमें क्या आश्चर्य? ३ तथा हाथी वहुत दूरसे दिखता है और कूथवा नजिकसेही मुशीवत से दिखता है.उससेभी ज्यादा सूक्ष्म पृथिव्यादिकके जीव होवे और वो दृष्टी न आवे इसमें क्या आश्चर्य? ४ अब्बीभी अन्यस्थानोंमें बडे २ शेहर हैं तो प्राचीन कालमें १२

योजनके नगर शहर होवे उसमें क्या आश्चर्य ? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी घर और मनुष्योंकी वस्ती से शंका लाते है; परंतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होय ऐसा न समझीये, अब्बी भी कहीं ६ को और कहीं २० को कोडी कहते हैं. ऐसे ही उस वक्तभी किसी बडी संख्याको कोडी कहते होंगे. ६ अब्बी भी एकेक मिनिटमें हजारो का व्याज आवे ऐसे श्रीमंत बेठे हैं. उस वक्त इभ पति आदि होवें उसमें क्या हरकत ? ७ अब्बी भी लोहेकी शांकल तोडने वाले मनुष्य हैं. तो गत कालमें अनंत बली होवें उसमे क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी का अंतः किन्ने देखा है, जो केवलीके वचनको उत्थापके अमुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बताते हैं; और जो द्वीप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हमें प्रकाश करने वाले चन्द्रा सूर्य भी असंख्य हुये चाहिये. ९ आँखसे विन देखे शब्द गन्ध आदि से गृही वस्तुको कबूल करें, तो फिर अरूपी पदार्थको बिन देखे क्यों नहीं माने, १० घृत भोगव करके भी उसका स्वाद नहीं कह सक्ते हो, तो मोक्षके सुखका वर्णन मुखसे कैसे हो सके. भोगवे सोही जाने, इत्यादि स्थूल विचारोंसे कितनेक स्थूल बातोंका निर्णय होसके. और कितनेक अग्रह्य बातोंका निर्णय नहीं भी

हो सके तो भी सम्यक्त्व द्रष्टी वीतरागके बचनोंपे आसता रखते हैं. जैसे जवेरीके कहेनेसे लाख रुपैके हीरेको लाखहीका मानते हैं- और मिथ्यात्वी संशय में पड सम्यक्त्व गमा देते हैं. सो संशयिक मिथ्यात्वी.

५ "अनाभोग मिथ्यात्व"=एकांत जड मूढ, न कुछ समझे और न कुछ करे, धर्म धर्म के नामको भी नहीं पहचाने, जैसे एकेंद्रियादी जीव अव्यक्तव्य (अजाण) पण मे हैं. सो अनाभोग मिथ्यात्वी.

मिथ्याका अर्थ झूठा होता है, अर्थात् सत्यको असत्य, और असत्यको सत्या श्रद्धे, सोही मिथ्यात्व है. इसे बुद्धिको भ्रमिष्ट बनाके आत्म हितका नाश करने वाला जानके ध्यानी त्यागते हैं.

यह धर्म ध्यानका आज्ञा विचय नामे प्रथम पायेका फक्त एकही गाथा का सविस्तर अर्थ यत्किंचित वरणन किया. इस में से ज्ञेय (जाणने योग्य) को जाणें. हेय (छोडने योग्य को) छोडे. उपादेय (आदरने योग्यको) आदरे अंङ्गीकार करे.

औरभी भगवानकी आज्ञाका चिंतवन करेकी बहुतसे शास्त्र में साधुओंके लिये फरमाया हैः—"संयमेणं तवसा अप्पाणं भावे माणा विहरइ" अर्थात् पांच स्थावर तीन विकेंद्री; पंचेंद्री, और अजीव (वस्त्र

पात्र इनकी यत्ना करे. मनादि तीयोग वस में करे, सबके साथ प्रिती (मैत्री भाव) रक्खे, सदा उपयोग युक्त प्रवर्ते, दिनके द्रष्टीसे और रात्रि को रजोहरणसें पुंज (झाड) के हरेक वस्तु काम में ले. अयोग्य वस्तु यत्नासे एकांत परिठावे (डालदे) यह १७ प्रकारके संयम. और 'अणसण'—दो घडी, या जाव जीव अहार त्यागे. २ 'उणोदरी'—उपाधी और कषाय कमी करे, ३ भिक्षाचारीसे उपजीवे. ४ रस [विगय] का परित्याग करे. ५ कायाको लोचादिकर क्लेश दे, ६ प्रतिसंलीनता—इन्द्रीयों कषाय योग की प्रवर्ती घटावें, ७ लगे पापका प्रायश्चित ले शुद्ध होवें, ८-१२ विनय वयवच्च, सझाय, ध्यान, कायो उत्सर्ग करें. यह १२ प्रकारका तप ज्ञान युक्त करके अपणी आत्माको भावे (आत्मामें रमण करते) हुवे विचरे प्रवर्ते.

और भी भगवानने श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र फरमाया है कि—"समय गोयम मा पमाए" अर्थात् गौतम! तथा मुमुक्षु जीवों! आत्म साधन मोक्ष के करने के उपाय के कार्यमें किंचित समय[वक्त] प्रमाद मत करो!!

"पांच प्रमाद"

श्लो-मदाविसयकसाय. निंद्दा विकहाय पंचमाभणिया

ए ए पंच पमाया, जीवा पाडंति संसारे ॥१॥

१ मद–जाति, कुल, बल, रूप, लाभ, ज्ञान तप और ऐश्वर्य (मालकी) यह ८ प्रकारकी उत्तमता जीवोंको पुण्योदयसे होती है, और इनका मद-अभीमान करके जो संयम-व्रत ब्रम्हचर्य परोपकारादि में नहीं लगाते हैं; तथा कुछेक अच्छे कार्य के प्रभाव से यत्किंचित कीर्तिवंत हो, कि मैं पण्डित हूं. शुद्धाचारी हूं. वक्ता हूं, सब जन मुझे सत्कार सन्मान देते हैं. मैं जगत्प्रसिद्ध हूं. सरस्वती कंठा भरण, वादी, विजय, वगैरे उपाधियों मुझे मिली है. कि बहू में एक आद्वितीय महात्मा हूं. ऐसे विचारसे जो भरा हो या स्वमुखसे कहता हो, वो ज्ञानादि गुणसे नष्ट हो-भ्रष्ट बनता है. अभीमानी अपने किंचित् सद्गुणको मेरू तुल्य देखता है, और अन्यके अपार गुणको तथा अपने अपार दुर्गुणोंको राइ तुल्य किंचित समजता है, इस लिये वो अपना उद्धार नहीं कर सक्ता है इत्यादि दुर्गुणोंसे मद भरा है. इस लिये इसे मद-मदिरा (दारू) के नाम से बोलाया है.

२ "विसय" शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांचहीकी पूर्णता पुण्योदयसे होती है. इने ज गुणी गुण उच्चार, साधु दर्शन, तप वगैरे सत्कार्य

नहीं लगाते; वीभत्सशब्दाचार, रूप अवलोकन, गंध ग्रहण, अभक्ष भक्षण, और भोग विलासमें लगाके नष्ट करते हैं. अमृत समान इन ५ गुणोंको विषय में लगा विष (जहर) रूप वना, दोनो भव में दुःखके भुक्ता होते हैं; इस लिये इसे विषय (जेहर) के नाम से वोलाय हैं.

३ "कसाय"—क्रोध, मान माया, और, लोभ यह चारही कषाय महा पापका मूल है. इनके वशमें हो जीव आपा (भान) भूल जाता है. आत्म घात द्रव्यनाश, यशकी क्ष्वारी, कुलका संहार, अयोग्य कार्य करते बिलकुल अचकाते नहीं हैं. निवल अनाथ को स्व पराक्रम से और वलिष्टोको दगा से नष्ट कर महा पापों से अपणी आत्माको मलीन कर, दोनो लोक में दुःखके भुक्ता होते हैं. इस लिये इन्हे कषाय (कर्म का रस आय) या कसाइ (घातकी) नाम से वोलाते हैं.

४ "निंदा"—इस शब्दके दो अर्थ होते हैं:— (१) निंदा (निंद्य.) इस दशवैकालिक शास्त्र में कहा है कि "पीट्टि मांसं न खाइज्जा" अर्थात् किसी के पीछे निंदा (दुर्गुण प्रगट) करना है, उसे मांस भक्षण जैसा वताया है. निंदक ज्ञानी, शुद्धाचारी,

प्रभावक, धर्मोन्नती कर्ता, तपस्वी, क्षमाशील, वगैरे के गुण नुवाद श्रवण कर सहन नहीं कर सक्ता है, और उन्हे ढांकने उनकी निंदा करता है, अच्छे आल बज्जा देता है. कूतर्कोसें उनकी भक्तिपेसे भोले लोकोंके भाव उतारता है. ऐसी नीच निंदा ही निन्दा पात्र है. ❋

निन्दा विषय सद्बोध.

अहो आत्मान्? तूं अहो निश दूसरेके दोष देखने में तत्पर रहता है, विचारता है कि–अमुक क्रोधी है, अमुक अभिमानी है, अमुक दगाबाज है ऐसही-लालची है- विश्वास घाती है, घातकी है, झूंठा है, चोर है, व्यभिचारी है, उपरसे भक्त दिखता है. प्रभु २ स्मरण करता है परन्तु बडा पाखंडी है– धूर्त-ठगारा है. वृत भंग करने वाला है. इत्यादि अनेक प्रकारके दुसरे के दोषोंका अवलोकन कर उनको

❋सवेया-नर्क निगोद भमे निन्दा का करणहार, चण्डाल समान ज्यांकी संगत न कामकी; आपकी बडाइ पर हाणीमें मगन मूढ, ताकत पराये छिद्र नीत है हरामकी वाकी निंदा काँन सुण, खुशी नहीं होणा कधीं, पीछेसे करेगा नर, तेरी बद नाम की. त्रिलोक कहेत तेरे दोष. हे निंदक माहे! यहांसे मर जाय. आगे गती यमधाम की. ॥ १ ॥

दोषी ठहगता है. जिससे जिसका मन मलीन रहता हैं, फिरवो मन उसमें तल्लीन होनेसे उस दोष का संस्कार सचोट मन पर होता है और वचन द्वाराभी उच्चार करने लग जाता है, जिससे उन दोषोंकी अन्य अनेकोकी आत्मा में प्रेरना करता है. और फिर वोही कार्य आपभी करने लगजाता है. यों दूसरे के दोषोंका अवलोकन करने से दुसरे का सुधारा होना तो दूर रहा परन्तु खुद आपही उन दोषों में डूब मरता है. अनेकोकी आत्मा के दोषों देखने से आप आर दोषीत हो अनेकोका विरोधी हो वो आपही बहुतों का निन्द नीय वन जाता है.

निन्दक मनुष्य स्वभाव से बुरा- खराव होता है, यथा द्रष्टान्त-किसी महाराजाने रत्न जडित मनो हर महल वनाया उसको देखने अनेक मनुष्य आये और परसंशा करी. परन्तु एक चांडाल आया सो कहने लगा कि इस महल में पाखाना तो रखाही नहीं! एसे निन्दक मनुष्य की सदा नीच वुद्धि रहती है, सर्व सद्गुणोंको त्याग दुर्गुण कोही देखता है.

रे आत्मान्! तूं दुसरे के दुर्गुणों को देख उन की निंदा करता है उनही दुर्गुणो से तेरी आत्मा वची है. क्या? तू सर्व सद्गुणों संपन्न है? सर्वतः निर्दोषी है?

इतना तो जरा तेरे मनकी साक्षी से विचार कर. अवल तो तेरे में यह निन्दा रूपही बडे दुर्गुण ने निवास किया है. और भी तूं राजा ब्राह्मण साहुकार पटेल इत्यादि उत्तम नामों से पुजा कर, उस पद की शुद्ध निती प्रमाणे चलता है क्या? धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सम्यग द्रष्टी, श्रावक, साधु, महात्म, आचार्य, तपश्वी, पण्डित वगैरे नाम धरा कर उस पर के आचर को पूर्णता सेपालते है? ऐसी तरह अंतर आत्म द्रष्टि से विचार करने से सहजही भास होगा कि मैं खुदही निन्दा पात्र हूं. और जब आपही खुद खराब है तो फिर अपनी खराबी का सुधारा छोड, उलट दुसरे के दुर्गुण अपनी आत्मा में भर कर विषेश खराब करना यह कितनी जबर मूर्खता! इस लिये दुसरे की निंदा करनी यह सत्पुरुषोंका कर्तव्य हैही नहीं.

"दुनिया दोरंगी" यह जो जगत् की कहवत है उसपर लक्ष रख कर हे आत्मान्! तूंतेरी आत्मा के सद्गुण किसी को वताकर पर संशा कराने की इच्छा मत कर. और तेरेसद्गुणों का स्वरूप समजे विनकोइ निंदा करे, सद्गुणों कोभी दुर्गुण रूप देखे तो भलाइ देखो. उनके आगे तेरे सद्गुणों को सिद्ध कर केव ताने की कुछ जरूर नही है. क्यों कि इस दुनियां में

कोइ एकही मनुष्य नही है कि– जिसको तूम समजा कर चुप बैठ रहेगा. आज एक को समजावेगा कल दूसरा निंदा करेगा दूसरेको समजाये तीसरा करेगा. यों सर्व मनुष्यों को तूने गुन समजाते २ थकजायगा. और तेरा इष्टितार्थ भी सिद्ध नही कर सकेगा. क्योंकि मुख्य में आत्म श्लाघहीं सद्गुणोंको नीच स्थिती को पहोंचाती है और नीचस्थीति ही निंदा पात्र होती है.

जैसे आरीसे में अच्छी बुरी वस्तु प्रती बिम्बित होते उसका कुछ नुकशान नहीं होता है, परन्तु द्रष्टाही राग द्वेष मय परिणाम से संकल्प विकल्प कर सुखी दुःखी होता है; तैसे ही शुद्धात्मि की किसीप्रवृत्ति किसीको अयुक्त भासे और वो निन्दा करे तो उस से शुद्धात्म कदापि दोषित नहीं होंगे, परन्तु निंदक की आत्महीं मलीन होगी.

तीर्थंकर जैसे अत्यन्त विशुद्ध महात्मओंको भी दुनिया के अज्ञ मनुष्योने दोषित ठहराये, तो दुसरे की कहनाही क्या ? जैसे तीर्थंकरो गोसाल के जैसे प्रति स्वार्थीयों की निंदा से बिलकुल ही नहीं अचकाते सूर्य की माफिक धर्म प्रकाश की वृद्धि करते रहे, तैसे ही आत्म साधक को भी किसीके शब्द पर वि-

लकुल ही लक्ष नहीं देते. बिलकुलही शब्दोचार नहीं करते अपने इष्ट साधनेकी तरफ लक्ष बिन्दू रख प्रवर्तने से आपो आप स्वभावसेही सद्गुण निन्दकों के हृदय मे सूर्य तुल्य प्रकाश करने लगजायगे, तो अन्यकी कहनाही क्या ?

जैसे किसी गरीब मनुष्य को कोइ श्रीमंत-धनाढ्य कहने से वो धनाढ्य होता नहीं है, और धनाढ्य को गरीब कहने से वो गरीब होता नहीं है, वोतो जैसे है वैसाही रहता है, तैसेही कोइ सद्गुणी को दुर्गुण कहे तो वो दुर्गुणी होता नहि है, और दुर्गुणी वो सद्गुणी भी होता नहीं है.

अपनी कीर्तिकी इच्छा करनी हे यहभी एक प्रकार की कायरता हैं' क्योंकि जिसके मनमें कीर्ती की इच्छा रहती है उसको हमेशा चारोंही तरफ का डर रहता है कि रखे, मैं ऐशा करूंगा जो दुनिया मेरे को क्या कहेगी? अथवा मैं कौनसा कार्य करूं कि जिससे सब मुझे अच्छा कहे ? इत्यादि विचारों से वो कितनेक आत्मोन्नति के लोकिक विरुद्ध और लोकोत्तर शुद्ध कामो का साधन करता अचकता है, बराबर आत्मोन्नति नहीं कर सक्ते हैं.

आत्मानन्दी को लोकों की दृष्टी में शुद्धता दर्शा-

नि का प्रयत्नछोड सर्वज्ञ की द्रष्टि में शुद्धता प्राप्त भाष होवे एसा पहेन्त करना चाहीये क्योंकि जगत् के जीवोंको शुद्धता बताने से इष्टितार्थ—मोक्ष की प्राप्ति कदापि न होगी, परन्तु सर्वज्ञ आपकी शुद्धता को स्वीकारी तो फिर दुनिया की क्या रूग दूर है जो आप को सिद्धी प्राप्ति के मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न कर सके.

(२) निद्रा (नींद) यह भी सत्कार्यमें विघ्न करने वाला जब्बर शत्रू है, इसकी धर्म स्थानमें विशेषता द्रष्टी आती हैं. कित्नेक मुनिव्रत धारण कर पापी श्रमण (साधु) बनते हैं, अर्थात् विना मेहनतके अहार, वस्त्र, उपाश्रयआदि सामग्री के प्राप्त होने से बे फिकर हो, बहुत काल निद्रामें गुजारते हैं. यह [illegible] प्रमाद भी दोनो भवमें दुःख प्रद है.

५ विकहा=देशकथा, राजकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा यह चार प्रकारकी वी (खोटी) कथा कहीहै. और भी चोरोंकी धन की, धर्म खंडनकी. वैर विरोध की गुणवधक. कामोत्तजक कलेश कारिणी, परपीडा कारिणी ग्लानी उत्पन्न करने वाली, इत्यादि अनेक प्रकार की वी कथा है. उसमें जो अमूल्य मनुष्य जन्मका आयुष्य क्षय करते हैं वो अन्याय करते हैं.कि-

ऱनेक विद्वानो परिषादा को खुश करनै अनेक कपोल कल्पित बातोंसे, कल्पित विषयिक ढालोंसे, हाँस,शृंगार वभित्सादि रसमें, लीन बनाते हैं× वो फुटी नाव के गाती भक्त जनों सहित पातालमें बेठते हैं.

यह पांचही प्रमाद बडे दुरुधर हैं. श्री भगवती जीके ८ में शतकमें फरमाया है कि, चार ज्ञानी, चउदे पूर्वी, आहारिक शरीर, ऐसे मुनिराज इन पंच प्रमादके वसमें पड आयुष्य पूर्ण करें तो अधोगति पावें, ऐसे दुष्ट प्रमादोको जान भगवंत ने फरमाया है कि "समय मात्र भी इसका सहवास मत करो ?" क्यों कि इसकी किंचित् संगतही ऐसी असर करती है कि फिर प्राणांत होते भी छूटना मुशकिल है. इस वक्त जैन जैसे पवित्र धर्मकी दुर्दशा हो रही है वो इन्ही का प्रसाद समजना. जो महात्मा पंच प्रमाद से बचे- हैं वो ध्यान सिद्धि प्राप्त कर सकेंगे

यह आज्ञा विचय ध्यान अपार अर्थ से भरा है, परंतु यहां इत्ना कहके अब सबका सारांश थोडेमे कह यह पूरा करुंगा.

गाथा—किं वहुणाइह। जहा २ रागदोसा लहू विज्जइ
तह २ पयट्टियव्वं, एसा आणा जिणिंदाणं

+ दुहा—दग बोगा दश बोगली, दग बोगाका बचा। गुरुजी नो गप्पा मारे. सबही जाणे सच्चा ॥ १ ॥

अर्थ—यहां विषेश कहनेसे क्या प्रयोजन है ! वस थोडे मेंही समजीये कि जैसे २ राग और द्वेष शीघ्रता (जल्दी) से कमी होवे, वैसी २ प्रवर्त्ति करो ! येही श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा है.

यह आज्ञा विचय धर्म ध्यानमें प्रवेश करनेसे मिथ्यात्वादि अनादि मलका नाश कर चैतन्य को पवित्र बनाने जलवत हैं. आधि, व्याधि, उपाधि, रूप ज्वालासे जलते जीवको शांत करने पुष्करावर्त मेघवत् है. मोह वनचरों के नाशके लिये केशरीसिंहवत, बुद्धि वीवेक वढानेको सरस्वतिवत्. योगीयोंके मनको रमाणे शांत आवास है. इत्यादि अनेक गुणोंके सागर आज्ञा विचय का चिंतवन धर्म ध्यानी सदा कहते हैं.

“द्वितीय पत्र-”अपाय विचय”

गाथा अप्पाण मेव जुंज्झाहिं, किंते जुज्झेणव जओ
अप्पांण मेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमे हए,

अर्थात्—श्री नमीराज ऋषि शक्रेंद्रसे फरमाते हैं कि, सुख इच्छाको कों अपणी आत्मामें रहे हुये दुर्गुणों का परांजय करना चाहीये. अन्यके साथ वाह्य (प्रगट) युद्ध करने की क्या जरूर है ज्ञानादि आ-

त्मा से कषायादि आत्माके साथ युद्ध करनेसेही आत्मा सुख पाती है.

"अपाय विचय" धर्म ध्यान के ध्याता ऐसा विचारे कि-मेरा जीव सदासुख चाहता है; अनंत भव हुये सुख के लिये तडफ रहा हूं. अनेक उपाय करते भी अपाय होता है, की हुइ मेहनत निर्फल होती है. इसका क्या कारण? यह मेरे उपाय को नष्ट कर मेरे को प्राप्त होते हुये, मेरे पास रहे, अनंत अक्षय अव्याबाध सुख की व्याघात करने वाला शत्रू हे ही कौन? हां! इतना निश्चय तो हुवा कि वो शत्रुओं बाहिरका कोइ पदार्थ नहीं है. क्योंकि बाहिर होयतो मुझे दुःख देने आते हुये दृष्टी आते. मेरे शत्रुओं तो मेरे घर मेंही घर कर बैठे हैं. (ठीक हुवा ढूंढनेका प्रयास घटा)आश्चर्य के इत्ने दिन मुझे क्यों नहीं दिखे? पर कहांसे दिखे, क्योंकि मै तो आजतक इनको देखने स्व घर छोड पर घरमें भटकता फिरा-और वो अन्दर रहे मेरे उपायोंको नष्ट करते रहे. अच्छा अब तो मेरी भूल सुधारूं. अंदर रहे बाह्य मिल आंतारिक शत्रुओंको अच्छी तरह पहचानने वाह्य दृष्टी बंध करूं. क्योंकि भगवानने फरमाया हैकि "एक समयमें दो कार्य न होवें" (ऐसा विचार आँख मीच

अन्दर अवलोके) अहो! यह मेरे शत्रु वडे जब्बर हैं. इनोंने वडा ठाठ पाट जमा रक्खा है.

"मोहकी ऋद्धि"

यह तीन अज्ञान त्रिकोटसे घेरी हुइ प्रकृति कांगूरे और चार गति दरवज्जे युक्त 'अविद्या' नगरी के मध्य में 'असंयम' महल की 'अधर्म' सभामें भृष्ट ज्ञाति सिंहासणपे अति प्रचंड शरीरका धरणहार, मद मछका हुवा "मोहो" नामें महाराजा अनाज्ञा शिरछत्र, और रति अरति दासीयोंके पास हर्ष शोक चमर डुलाते वेठे हैं; यह पाप पोशाक्का भलका. अव्रत मुकुटादि भूषणाको चलका, और क्रिया खड्ग मन मुखमली म्यान में झलकता है, जडता ढाल पीछे ढलकती है. यह इनकी मायारूप पटरागणी, चार सज्ञा दासीयोंसे परवरी अर्धांगना वनी है. यह काम देव कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयादि ७ मांडलिक महाराजा मिथ्यात्व प्रधान, प्रमाद पुरोहित, राग द्वेष सेन्यापति कूरभाव कोटवाल. व्याक्षेप नगर श्रेष्ठ, कुव्यश्न भंडारी, कुसंगदाणी, निंदक पटेल, कूकर्वीभाट, प्रणामवृत, दंभ दुर्दंत, पाखंड द्वारपाल इत्यादि महाजनो कर. सभा एक महाभयंकर रूपको धारण कररही

त्मा से कषायादि आत्माके साथ युद्ध करनेसेही आ त्मा सुख पाती है.

"अपाय विचय" धर्म ध्यान के ध्याता ऐसा विचारे कि-मेरा जीव सदासुख चाहता है; अनंत भव हुये सुख के लिये तडफ रहा हूं. अनेक उपाय करते भी अपाय होता है, की हुइ मेहनत निर्फल होती है. इसका क्या कारण? यह मेरे उपाय को नष्ट कर मेरे को प्राप्त होते हुये, मेरे पास रहे, अनंत अ- क्षय अव्याबाध सुख की व्याघात करने वाला शत्रू है ही कौन? हां! इतना निश्चय तो हुवा कि वो श त्रुओं बाहिरका कोइ पदार्थ नहीं है. क्योंकि बाहिर होयतो मुझे दुःख देने आते हुये दृष्टी आते. मेरे श त्रुओं तो मेरे घर मेंही घर कर बैठे हैं. (ठीक हुवा ढूंढनेका प्रयास घटा)आश्चर्य के इत्ने दिन मुझे क्यों नहीं दिखे? पर कहांसे दिखे, क्योंकि मै तो आजतक इनको देखने स्व घर छोड पर घरमें भटकता फिरा- और वो अन्दर रहे मेरे उपायोंको नष्ट करते रहे. अ- च्छा अब तो मेरी भूल सुधारूं. अंदर रहे बाह्य मिल आंतरिक शत्रुओंको अच्छी तरह पहचानने बाह्य दृष्टी बंध करूं. क्योंकि भगवानने फरमाया हैकि "एक स- मयमें दो कार्य न होवें" (ऐसा विचार आँख मीच

अन्दर अवलोके) अहो! यह मेरे शत्रु बडे जब्बर हैं. इनोने बडा ठाठ पाट जमा रक्खा है.

"मोहकी ऋद्धि"

यह तीन अज्ञान त्रिकोटसे घेरी हुइ प्रकृति कांगूरे और चार गति दरवज्जे युक्त 'अविद्या' नगरी के मध्य में 'असंयम' महल की 'अधर्म' सभामें भृष्ट ज्ञाति सिंहासणपे अति प्रचंड शरीरका धरणहार, मद् मछका हुवा "मोहो" नामें महाराजा अनाज्ञा शिर-छल, और रति अरति दासीयोंके पास हर्ष शोक च-मर डुलाते बेठे हैं; यह पाप पोशाकका भलका. अ-व्रत मुकुटादि भूषणाका चलका, और क्रिया खड्ग मन मुखमली म्यान में झलकता है, जडता ढाल पीछे ढलकती है. यह इसकी मायारूप पटरागणी, चार सज्ञा दासीयोंसे परवरी अर्धागना बनी है. यह काम देव कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयादी ७ मांडालिक महाराजा मिथ्यात्व प्रधान, प्रमाद पुरोहित, राग द्वेष सेन्यापति क्रूरभाव कोटवाल, व्याक्षेप नगर श्रेष्ठ, कुध्यक्ष भंडा-री, कुसंगदाणी, निंदक पटेल, कूकवीभाट, प्रणामदूत, दंभ दुर्दंत, पाखंड द्वारपाल इत्यादि महाजनो कर, सभा एक महाभयंकर रूपको धारण कररही

है. नगर में चौरासी लक्ष चोहटे. अनेक शरीर रूप सदनों में, विचित्र प्रकृतियों प्रजाका वास है. प्रजाज नभी विचित्र स्वभावी हैं; जरा सत्कार से फूलजाना और जरा अपमान से रूस जाना. जरा लाभमें हर्ष और जरा नुकशान मे शोक इत्यादि विचित्रता धरते हैं. मानगजाधीश, क्रोध अश्वाधीश, कपटरथाधीश और लोभ पायदलाधीश वगैरे सेनाभी बिकट है, हय २ बडा जब्बर शत्रु निकला; में इकेला इसका कैसे पराजय करूं? और इच्छित सुख वरू! मेरा तो कोइभी नहीं दिखता है. हे भगवन्! अब क्या करूं?

"चैतन्यकी ऋद्धि

उसी वक्त, एक नजीकही रहा हुवा 'विवेक' नामे चैतन्यका परम मित्र दोनों हाथ जोड बोला, क्यों चैतन्य महाराजा! क्या फिकर में पडे हो? शत्रु ओं कों प्रबल देख शूर में वणो! कायरता तजो? (इन वचनों से चैतन्य नें विवेकको आपणा हितेच्छु जाणा) और जवाब दिया, भाइ! विना शक्ति शूर माइ क्या कामकी?

विवेक—वहा, महाराजा हो यह क्या शब्दोच्चार करते हो! आपके क्या टोटा, आपकी ऋद्धि

तो इस मोहकी ऋद्धि से सर्व तरह अधिक है. परिवार सैन्य विद्धर और प्रबल है. परन्तु आप शत्रुके ताबे में हो इतने दिन में कभी हमारे तर्फ द्रष्टि ही नहीं करी! तब हम बेचारे स्वामी के आदर बिन चुप चाप बैठे. आज आपने जरा सुदृष्टि कर, हमारी तर्फ अवलोकन किया तो सेवक सेवा में उपस्थित हुवा; और अर्ज करता हूं कि—आपके परिवारकी खबर लीजीये, सब को संभालके हुशीयार कीजीये, और फिर आप हुकम दीजीये,, कि फिर मोह जैसे केइ शत्रुओंको क्षण में नष्ट कर आपका इच्छित करें!

इतना सुणते ही चैतन्य को धैर्य आया, और कह ने लगा—प्यारे मित्र! मेरा परिवार मुझे बता.

विवेक—यह देखीये! आपका तीन गुप्ति-त्रि कोटे से घेरा हुवा दान, सील, तप भाव दरवज्ज युक्त यह 'श्रद्धा' नगरके मध्य में संयम मेहलकी धर्म सभा में 'समिति' सिंहासण, जिनाज्ञा छत्र, और सम सम्वेग चमर कर शोभता हैं. शुभ भाव सेठीये पुण्य दुकानो में ऋधी सिद्धी युक्त बैठे. सुक्रिया व्यापार कर रहे हैं. औरभी बहूत परिवार आपका है. सो शहर मे प्रवेश किये मिलेगा; परन्तु हुशीयारीके साथ प्रवेश करिये. क्यों कि मोहनृप ने अव्वलही

पहरा चौकी का पुक्त बंदोबस्त किया है. डरीये न-हीं. यह लीजीये अति तीक्षण 'ज्ञान खड्ग' इस से सर्व कार्य फते होंगे.

इतना सुण चैतन्य श्रद्धा नगरमें प्रवेश करने प्रवर्त्त हुवा कि तुर्त मिथ्यात्वके-मिथ्यामोह, मिश्रमोह सम्यक्त्व मोह और अनंतानु बंधका चौक यह सात-ही जूँजार सुभट सन्मुख हो बोले-खबर दार चैतन्य राय! आगे बढ ने देनेका मोहो महाराज का हुकम नहीं है.

चैतन्य ज्ञान खड्गले उनके सन्मुख होतेही सा तही मोहके सुभट भग गये. चैतन्य उत्साहाके साथ नगर में प्रवेश किया, छटा देख बहुत खुश हुवा. इतने में अव्रत के रखे १२ सुभट सन्मुख हो बोले, तुमे संयम महल में पेशने देनेका हुकम नहीं है. चै-तन्यने प्रत्याख्यान भालसे उनको भगाये और संयम महल में गये सुमति सिंहासणपे जिनाज्ञा छत्र धार-ण कर लज्जा और धैर्य दासीसे सम सम्वेग चमर ढुलाते हुये विराजे. उसी वक्त उनका सब परिवार सहर्ष विनय युक्त हाजिर हुवा, चैतन्य नें सबका यथा योग्य सत्कार किया तरा रुचि और सुबुद्धि विरक्ती पटरागणीयोंको अंकितमें स्थापन करी, पंच महाव्रतों

को मंडलिक पद दिया. सम्यक्त्व प्रधान, उद्यम-प्रोहित, उपशम-शैन्याधीश, शांत भाव-कोतवाल, शुभ भाव-नगर श्रेष्ठ, विज्ञान-भंडारि, परमागमसे भंडार भरपूर, सत्संग- दाणी, व्यवहार-पटेल. गुणीजन—भाट. सत्य-दूत. न्याय-द्वारपाल. मन निग्रहअश्वाधीश, मार्दव -गजाधीश, आर्जव-रथाधीश,और संतोष-पायकाधीश,इत्यादि को यथा योग्य पद पे स्थापन्न कर, चैतन्य माहाराजा अनद से राजकरने लगे. परन्तु मोह के प्रबल प्रता रूप छाप उनके हृदय मे चमक रही थी.

एक दिन सभामें बोले कि—मेरे प्यारे मंत्रिसामंत गणो ! मे आप के संयोग से बहूत आनंद पायाहूं तथापी जब तक मोह शत्रू नष्ट न होगा, तब तक मुझे पूरा सुख प्राप्त हुवा नहीं मानता हूं. इस लिये मोह के नष्ट होनेका अव्वल प्रयत्न किया चाहता हूं. इत्ना सुणतही, विवेकादि सर्व नम्रतापुर्वक बोले- नाथ! की जय सजाइ. चलिये अब्बी एक क्षण में मोह का नाश कर,आपके इष्टितार्थ सिद्ध करें.जिससे सर्व सुखी बनीये. चैतन्य का हुकम होतेही सब सुभटों मोहके पराजय की सजाइ करने लगे.

यह समाचार परिणाम रूप सुभट द्वारा मोहो नृपने मिलेकि—चैतन्यने श्रद्धा नगरीका संयम महलयु-

क्त तावे में कर खूब ठाट जमाया है. और आपको प-रांजय करनेकी तैयारी कर रहा है. इत्ना सुणतेही मो-हो क्रोधातुर हो बोला—देखो मेरे प्यारे मित्र सामंतो ! अनंत वक्त चैतन्य को मना किया कि तूं यह ढोंग मत कर. परंतु वेहया (निर्लज्ज) इत्नी २ फजीती होतेभी नहीं शरमाता है. चलीये उसे जरा समजा-कैद करें, अपने तावेमें करें. इत्ना सुणतेही मोहके पा, खंड सेवकने कुबोध भेरी वजाके सैन्य कों होशीयार करी, सब सेवक चौक उठे. और अपनी २ सजाइ स-जी मद मत वाले अभीमान हाथी, चंचल चपल मन अश्व, रंगी वेरंगी झणणाट करते कपट रथ, और अति-वालिष्ट लोभ पायदलों के समोह से परिवरे, तामश वस्त्र पेहन, कुक्रिया शस्त्र धार, तीन कुलेश्या रूप काले, नीले, हरे, निशाण फरराते, कुअलाप वाजिंत्रों के झ-णकारसे गग न गर्जावाते, कर्मोदय मूहूर्त में प्रयाण कर. कर्मरोहण मार्गमे आ, मोह महाराजा स परिवार खडे हुये.

मोह की सेन्या देख, अध्व्यशाय सन्धीपाल चैतन्य के पास आ करअर्ज करने लगे कि—हे आत्मा ! हम दोनो पक्ष का भला चहाते हैं, और चेताते हैं कि " मोह नृप वहुत प्राचीन वृद्ध हैं. आप जे॰

तरुण महा राजाको उनका अपमान करना योग्य न ही है. आपजानते हो, उनकी सैन्यका प्रबल प्रताप कि –तीनही लोकको ताबे कर रक्खा है. उनसे आपकी जीत होनी मुशकिल है; वक्तपे ऐसा न हो कि-आपकी सैन्य उन में मिल जानेसे आपका अपमान-हो, और राज भी जाय ! इस लिये आप सन्मुख जाके सम्प कर लीजीये. वृद्धा की सेवामें अपमान न समजीये.

यह सुण चैतन्य हँस के बोले–मै सब समजता हुं. जहां लग सिंह गुफामें निद्रित रहता है वहां तक ही वनचरो को उन्माद करनेका अवकाश मिलता है. समजे ! बहुत कालके उडते धूलेकों क्षणमें मेघ दबा देता है ! मेरे विन उस मोहको पहचानने वाला दूसरा हे ही कोन? इतने दिन गम्म खाई, यह मेरी भूल हुइ. अन्यायीकी पायमाली करनाही हमारा कर्तव्य है ! ! क्या तुम नहीं जानते हो, मै मोहके ताबेमे था जब मरी कैसी फजीती करी है. उसका क्षण २ मुझे स्मरण होता है, अव मैं मूर्ख न रहा कि-पीछा उसकें ताबेमें हो फजीती करावूं ! इतने दिन मेरे परिवारकी मुझे पहचान नहीं थी. पर विवेक मंत्रीश्वरका भल हो. इस दुःखसे छूटाने उनोने मुझे युक्ति और सामग्री

बताइ. मैं मोहके सन्मुख हो नष्ट करने तैयार था. अच्छा हुवा की वो सामे आगया. जरा तुम खडे रहो' और मेरी सैन्याका पराक्रम तो देखीये कि-त्रिलोक पूज्य मोह महाराजा की क्या दुर्दशा होती है. इतना कह, चैतन्य रायनें सद्गुरु सुभटके पाससे सद्बोध भेरी बजवाके सैन्य सज कराइ. उसी वक्त शांत रसमें भरे हुये मन निग्रह अश्व, वैराग्य मदमें घुमते हुये मार्दव गज, सरलतासे शोभित आर्जव रथ. और सदा तृप्त संतोष पायदल, यह चतुरंगणी सैन्य. क्षमा वक्तर, तप रूप अनेक शस्त्रसे सज हो, स्वध्याय रूप नगारे घुर्गते भजन रूप सणणाइयों सणणाते. वैराग्य पंथमें आगे बढते, तीन शुभ लेश्या रूप-लाल, पीले और श्वेत, निशाण फर्राते, गुणस्थान रोहण रणांगणमें आ, खडे हुये.

दोनो मालिको का हुकम होतेही संग्राम सुरू हुवा,—मोहकी तर्फसे 'मिथ्यात्व मंत्रीश्वर' पच्चीस उमराव और अनंत सुभटोंके साथ, चैतन्य का सामना कर, कहने लगे-क्योंरे चैतन्य! तुझे मेरे त्रिलोक व्यापी पराक्रम का विस्मरण होगया दीखता है. तेरी अनंत वक्त खुवारी करी तोभी बेशरम लडने तैयार हुवा है' देख अभी एक क्षणमें तुझे तीव्र बाणसे पतन कर

पातालमें पहोंचाता हूं. कूदेव कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र, यहमेरे सेवकोंके हाथ फजीती कराता हूं. ऐसा बकबकाट काता, बाण खैंच खडा रहा.

तब चैतन्यसे विवेक बोला देखीये स्वामी! यह मोहका मानेता प्रधान मिथ्यात्व है, यह सम्यक्त्व प्रधानजीकी द्रष्टि मात्रसेही मर जायगा. इसके मरनेसे मोहकी सब सैन्य शिथिल होजायगी, और अपनी श्रद्धा नगरी निर्विघ्न होजायगी. यह सुन 'सम्यक्त्व' मंत्रीश्वर पांच समकित महा जोधे और सैन्य साथ मिथ्यात्वके सन्मुख हो. तत्वातत्व विचार रूप बाण छोडतेही मिथ्यात्वका सपरिवार नाश होगया. चैतन्यकी सैन्यमें जीत नगारा बजा. और मोह तो अति बलिष्ट मंत्रीके वियोगसे अत्यंत खेदित हुये. तब 'अव्रत्तराय' मोहसे बोले—आप फिकर न कीजीये! अब्बी मै प्रधानजीका बदला लेता हूं. बिचारा चैतन्य मेरे आगे क्या करेगा? ऐसा कहे बारे उमरावोंके साथ चैतन्यके सन्मुख आ कहने लगे. रे चैतन्य! ऐसे तेरे ढोंगोंको मैंने बहुधा नष्ट किये तो भी तू सामे होता नहीं शरमाया, आ, देख मजा.

तब चैतन्यसे विवेक बोले-इसे जीतने समर्थ अपने सर्व वर्त्तिराय हैं. वो इसका क्षणमें नाश कर संयम

महलको निर्विघ्न कर देंगे. यह सुन 'सर्व व्रत राय' तेरे चारित्र और अनेक शुभ परिणाम सुभटोंसे परिवरे. वैराग्य बाणके वृष्टीसे अव्रतजी को काल धर्म प्राप्त किये, चैतन्यकी जीत हुइ. और मोह तो अत्यंत दिल. गीर हो कहने लगे कि--अबके चैतन्यसे फते पानी मुशकिल है. तब 'प्रमाद सिंघजी' हँसने २ बोले--ऐसे ढोंग चैतन्यने केइ वक्त किये हैं. मैने पूर्वधारी महा मुनियोंको भी नरकगामी बना दिये तो इस बिचारे की क्या गिनती ! दक्षिणके बद्दल ज्यों वायू विखेरता है, त्योंमें अब्बी चैतन्यक सब सैन्य भगा देता हूं. ऐसा गरुर करते, पांच उमराव, और केइ शुभटों से परिवरे, चैतन्य सन्मुख हो कहनें लगे कि-अब मेरे आगेसेभग के कहां जायगा. तेरे घमंड को अब्बी नष्ट करता हूं. तब विवेक बोलें--इनको भगाने उपशम रावजी समर्थ हैं, उसीवक्त उपशमराव तुर्त पंच अप्रमादरूप पांच उमराव और केइ सुभटों साथ प्रमादके सन्मुख हुवे. प्रणाम धारा रूप गोलीयोंके वर्षाद से प्रमादका पतन किया कि चैतन्य ध्यानमें लीन हो सुखी हुवे.

मोह, प्रमाद रावका मृत्यु सुन, होंस हवास भूल गये. तब कामदेव बोले, पिताजी मेरे जैसेपराक्रमी पुत्र आपके होतें आप फिक्र क्यों करते हो, अ-

ब्बी बातही बातमें चैतन्यको कब्जमें कर लाता हूं-कंवर साहेब के यह बचन सुन स्त्री, पुरुष, और नपूंशक यह तीनही उमराव खडे हो कहने लगे की हम कुँवर साहेबके मदतमें जाते हैं. चैतन्यका घमंड एक, क्षणमें गमाते हैं. तब अश्वाधिप क्रोधजी खडे हो ध मधमायमान होते बोले. किसने जननी का दूध पचाया है कि-जो मेरे सन्मुख खडा रहे. क्रोधराग-द्वेष, कलह-चड, भंड विवाद यह सुभटोंके सामे टिके. तब गजाद्विप अभीमानजी बोले, मैंनें केइ वक्त चैतन्य को हीन दीन बना दिया है, क्या अविनय मान मद, दर्प, स्थंभ, उत्कर्ष, गर्व, यह मेरे सुभटोंका पराक्रम कमी है. तब रथा धिप कपटजी कहने लगे—मैने चैतन्यको केइ वक्त लेंग लुगडे, चुडीयों पहनाइ है- अब क्या छोड दूंगा. माया, उपाधी, कृती, गहन, कूड, बंचन, यह मेरे सुभट कम पराक्रमी हैं क्या ? यो यह तीनिंही स-परिवार कामदेवके साथ हुये, इनसे काम देवका ठाठ सबसे अधिक हुवा, अनुराग रण सिंग्घा बजाते. एकदम चैतन्यपे विषय रागरूप बाणों का वर्षाद सुरू किया, क्रोधजी ज्वालामय बाण छोडने लगे, अभीमान जी स्थंभन विद्या डाली, दगाजी गुप्तरीत क्षय करने परावृत हुये; यह अविमासा एकदम

जुलम होता देख, चैतन्यसे विवेक बोले- आप घबराइये नहीं; शांति ढालकी ओटमें विराजे रहो. कामदेवको निर्वेद राय, क्रोधका क्षमाचंद्र, मानका मार्दव सिंह, दगाका अर्जव प्रसाद, एक क्षणमें नाश कर डालेंग इतना सुणतेही सर्व राजेंद्रो सजहो १८००० शीलांग रथ के झणझणाट करते सन्मुख हुवे. नवबाड रुग्वीन शैन्यके कोटसे घेरे हुये, वैराग्य बाणो की मेघ धारा परे वृष्टि होतेही, कामदेव मृत्यु पाये. उनके तीनही उमराव भग गये. उदर क्षमाचंद्रने क्रोधका, मार्दव सिंहने मान का, और अर्जव प्रसादने दगाका नाश किया. चैतन्य की सैन्यमें जय २ कार हुवा. चैतन्य निर्विषयी शांत सरल हो परमानंद भोगवने लगे.

मोह नृप, प्यारे पुत्र और तीनो बलिष्ट उमरावोंकी मृत्यु सुन मूर्छा खागये. हाय त्रहा करने लगे, लल आँख कर कहने लगे कि-अब मै खुदही चैतन्य का नाश करूंगा ! तब 'लोभ राय' बोले आप जेसे महाराजाको चैतन्य जैसे वच्चे के सामे जाना लाजम नहीं है, मैंने एक उपाय विचारा है, वो यह है कि चैतन्यको 'उपशम मोह' किल्ला देनेका लोभ देवा, उसमें गया की उसमें गुप्त रहे हुये अपने सुभट उसकी सब फिरका नाश कर आपके तावेमें कर देंगे. यह सल्ला

मोहको पसंद पडी. और कहा जल्दी करो. की तुर्त लोभचंन्द्र सज्ज हुये. उन्हके साथ हांस, रत्य, अरति, भय, शोक, दुगंछा यह उमरवों सपरिवार सज्ज हो चले.

इधर-चैतन्यकी आज्ञा ले विवेक चन्द्र धर्म स्थानमें अपने सर्व मंडलिक और सामंत सुभटोंकी सभा कर कहने लगे. भाइयो ! अपना बहुतसा काम फते होगया. और जो कुछ रहा है, वो थोडेहीमें पार पडनेकी आशा है. परन्तु गुप्त एलची द्वारा खबर मिली है कि उपशम किलेमें मोहनें गुप्त सुभटों बेठा रक्खे हैं. इस लिये किसीभी लालचसें ललचा. उस किल्लेमें कोइभी प्रवेस मत करना. रस्ते के सर्व उपसर्ग अडग पणे सहे, क्षण कषाय किल्ले में प्रवेश करें कि,—जिस से मोहका एक क्षणमें पराजय कर, इच्छित काम फते हो. यह विवेक का बोध सर्वने सहर्ष वधा लिया. और तुर्त सज्जहो क्षीणमोह किल्लेकी तर्फ प्रयाण किया.

रस्तेमें 'लोभचन्द्र' मिल गये. और मधुरतासे कहने लगे—अब क्यों भगते हो हमारा सत्यानाश तो तुमने मिला दिया. अब हम सब तुमारे ही हैं, डरो मत ! वह 'उपशम कषाय' किल्ला तुमाराही है. इसमें बे फिकर रहो. मोह रायतो बेचारे चुपचाप बेठे हैं. अब तुम्हारा नामभी नहीं लेवेंगे.

इन सब दगोंसे विवेक ने अब्बलही वाकिफ किये थे. इस लिये लोभके मिष्ठ बचनसे कोइ ठगाये नहीं, और आगे चलने लगे. तब लोभचन्द्र असुरक्त हो स-परिवार सामे हुवा, और कहने लगा दुष्टो ! मेरे भा-इयोंको मार कहां जाते हो, अब मै तुमे छोडने वाला नहीं !! योंकह सर्व सैन्य युक्त चैतन्यकी सैन्य पर इच्छा तृष्णा मूर्च्छा कांक्षा, गृद्धता, आशा इत्यादि बाणोंकी वृष्टि कर ने लगे, कि उसही वक्त चैतन्यने क्षायिक बाणोंका प्रहार कर लोभका सपरिवार नाश कर बे फिकर हो क्षीण कषाय किल्लेमें भराके परमानंद पाये.

लोभचंद्रका सपरिवार नाश कर क्षीण कषय किल्लमे चैतन्यने निवास किया है. ऐसी मोह को खबर हो-तेही सतंग ढिले पडगये. जीतनेकी आशातो दूर रही, परंतु. इज्जत और जान बचाना मुशीबत हो गया. तो भी मानके मरोडे आप खुद चैतन्यका पराजय करने खडे हुये. तब ज्ञानावरणि आदि सात महा मंडालिक राजा, अपने असंख्य दल बलेल साथ हुये. सब साथ चैतन्यकी तर्फ चले.

यह चैतन्यको खबर होतेही क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक यथाख्यात चरित्र, यह महा पराक्रमी राज

ओंके साथ, करण सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, वरक्तर से सज्ज हो. वितिरागा, अकषायी शस्त्र ले, संपूणसंबुड-ता रूप चारो तर्फ बंदोबस्त कर, संपूर्ण भावितात्मा रूप मद छक हो. महज्ञान बाजिंत्रोंके झणकार से महाध्यान निशाण फररीते, महा तप तेज कर दीपते असोह अविकारी पणे. अपडवाइता दृढताधार. खपक श्रेणीरूप चौगानमें सब परिवार से परिवेर खडे हुवे-

चैतन्यको ऐसे ठाठसे सामे खडा देख, मोह मद छक हो बोला, रे चैतन्य! तूं मेरे घरमें बडा हुवा, अंनतकाल मेरी सेवामें तुझ हुवे, निमकहरामी! अब मेरे सेही लडने तैयार हुवा, यह तुझे जो ऋधि प्राप्त हुइ है. सो सब मेराही पुण्य प्रताप है; ऐसी २ ऋद्धि तुझे पहिलेकेइ वक्त मिली, और तूं केइ वक्त मेरा सामना किया. अनंत वक्त तेरी मैने खुवारी करी. तो भी तूं नहीं शरमाया, और सब बीती भूल, मेरा सा मना करता है. लिहाज कर २ शरमा आवतो जरा!!

चैतन्य—हांजी, मेरी लाज को गमा अनंत का लसे मेरी फजीतीकरनेवाले आपको अब मैने पेछाने, तबही मुझे लिहाज पैदा हुइ. तबही तुमारे सर्व परिवार का नाश कर तुमारे सामे अडग खडा हूं. तुमे भी मरनेका शोक हुवा है, जो सबका नाश देखतेही

मेरे सामे आये हो, तो संभालिये. इतना कहतेही चैतन्य ने मोहके मस्तक में क्षायिक खड्गका प्रहार कर मोहका नाश किया. उसी वक्त ७ मंडलिकोमेंसे ज्ञानावराणिय, दर्शनावर्णिय, और अंतराय इन तीनोंका स्वभाविक नाश होगया. उसी वक्त आकाश में सब देवताओंनें जय २ कार किया. अष्ट द्रव्यकी वृष्टि करी. देव दुन्दुभि बजने लगी. चैतन्य महाराज को कैवल ज्ञान कैवल्य दर्शन रूप महा ऋद्धि कि प्राप्ति हुइ. और तीनही लोकमें चैतन्यकी आण दुवाइ फिर गइ. सर्व जगत् के वंदनिय पूज्यनीय चैतन्य महाराजा हुवे,

विवेक मंत्रीश्वर की सल्लासे चैतन्य रायका सब काम सिद्ध हुवा जाण, सब परिवार से संयम महल में परमानंद भोगने लगे, एक दिन विवेक चन्द्रजी बोले, स्वामी! आपके इष्टितार्थ सिद्धिसे मै बडा खुश हुवा हूं. और आप सर्वज्ञ सर्व दर्शी हुये. इस लिये मै आपको किसी प्रकार सल्ला देनेभी असमर्थ हूं, आप जानते ही हैकि आपके चार शत्रू आपसे मिले हुये हैं. उनकाभी कुछ विचार?

चैतन्य महाराजा बोले-कुछ विचार नहीं. वो बेचारे निर्बल होके पडे हैं और वो जो कुछ करते हैं

सो जग जीव का भला होवे, वैसाही करते हैं. मुझ उनसे कुछ हरकत नहीं है. आयुष्य, नाम गौत्र, और साता वेदनिय, यह सब एक आयुष्य के आधार से टिके हैं. और आयुष्य तो बेचारा स्वभाव से ही क्षण २ में क्षय होता है, सर्वथा क्षय हुवा कि-बाकी कर्म ती नही उस के साथ क्षय होजायेंगे; कि फिर अपन सीधे शिव पूर में जाके अजर, अमर, अवीकार हो; अक्षय, अनंत, परमसुख के भुक्ता बनेंगे.

अपाय विचय नामे धर्म ध्यान के दुसरे पाये के ध्याता अनंतकाल से अपाय करने वाले कर्मशत्रू ओंका नाश करने का विचार एकाग्रतासे तथा भूतहो चिंतवनाकरें. और कर्मवृद्धि के कामोंसे निवर्त्ति भाव धारनकर, आत्मा सुख के उपाय में संलग्न बन, मोक्ष मार्ग मे प्रवर्तने सामर्थ्य बने, वो कोइ काल में सुख के भुक्ता जरूरही होवेंगें.

तृतीय पत्र- "विपाक विचय"

हा हा! क्या आश्चर्य कारक इस जगत्का बनाव दृष्टि आता है. जीव जीव सब एकसे हो, कोइ सुखी तो कोइ दुःखी, एसेही-नीच, ऊंच मूर्ख विद्वान, दरिद्री श्रीमंत, वगैरे विचित्र रचना दिखाती है,

इसका क्या कारण? जीव अपना आपही तो बुरा न करे! इस लिये बुरे उपाय कराने वाला जीवके साथ दुसरा भी कोइ है? दुसरा कौन है? (जरा विचार कर) हां, जो अपाय विचय में विचार से पैछानाथा वोही अंदर रहा हुवा कर्म रूप शत्रू है. वो दो प्रकारके विपाक उत्पन्न करता है. (१) अशुभ कर्म रूप कडूवा, और (२) शुभ कर्म रूप मीठा. शुभ कर्मके फळ भोग ते जीव मजा मानता है जिससे अशुभ बंध होता है और दुःख भोगवता है. यों अशुभका क्षय होते शुभकी वृधि होती है. ऐसा रात्रि दिन की तरह यह सिलसिला अनादी काल से चलाही आता है.

अब शुभाशुभ कर्मों उपारजन करनेकी रीति शास्त्रानुसार विचारनेकी आवश्यकता है. कि कौनसे क र्मोंसे जीव सुख पाता है. और कौनसे से दुःख पाता है. यह विचार शास्त्रानुसार यहा करते हैं.

१ प्रश्न–श्रोत इंद्रीयकी हीनता कायसे होवे? उत्तर–विकथा श्रवण कर खुश होय, सत्य को असत्य और असत्यको सत्य ठहराय, बधिर [बैर] की हाँसी करे–चीडावे. अन्यको बाधिर बनाने उपचार करे, दी- न गरिबोंके करुणा [illegible] अर्जी [illegible] ध्यान नहीं

देवे सद्बोध शास्त्र श्रवण नहीं करे. इत्यादि कर्मों करने से बधिर (बेरा) होवे. कानके रोगिष्ट होवे. तथा चौरिंद्रि पना पावे.

२ श्रोत इन्द्रिकी प्रबलताकयसे होय ? उः–शास्त्र और सुकथा श्रवण करे. यथातथ्य (जैसा का वैसा) श्रद्धान करे, बधिरोंकी दया करे. यथा शक्ति सहाय करे, दीनोकी अर्जपे गौर कर मिष्ट बनचसे संतोषे, गुणीयोंके गुण सुण हर्षावे, निंदा श्रवण नहीं करे, तो श्रोतेंद्रीय (कॉन) की नेरोग्यता, सुन्दरता, तीव्रश्रुतापनापावे, तथा पाचेंद्रियपणा पावे.

३ प्रः–चक्षु इन्द्रिकी हीनता कयासे होय ? उ. स्त्री पुरुषके सुन्दर रूपको देख विषयानुराग धरे, कूरूपा देख दुर्गच्छा निंदा करे, अन्धोकी हँसी करे, चिडावे, मनुष्य पशुकी आँखोको इजा करे या फोडे. कूशास्त्रा व पुस्तक पत्र आदी पढे, नाटकादि अवलोकन करे, नेत्रके विषयमें आशक्त होनेसे या करूर द्रष्टीसे देखनेसे, नेत्रकी कुचेष्टा करनेसे अन्धा, काणा, चीबडा वगैरे नेत्रका रोगी होवे, तथा तेंद्री पना पावे.

४ प्र.–चक्षु इन्द्रिकी प्रवलता कयासे पावे. ? उ:- साधु साध्वीयोंके दर्शनसे हर्षावे, धर्मानुराग धरे, विषय जनक रूप देख तुर्त द्रष्टि फेरले, नेत्रके रोगीयोंकी

दया करे, सत्साख्न व पुस्तक पत्रोंका पठ न करे, विषयसे नेत्रवशमे करे, तो निरोगी सतेज, मनहर, दीर्घ विषयीं आँखो पावे

५ प्र– घ्रणेंद्रीकी हीनता कयासे पावे ? उ–सुगन्धी पदार्थोंका अनुराग हो. अतर पुष्पादि सेवन करे, दुर्गंधका द्वेषी होवे, नाका हीनकी (गुंगकी) हाँसी करे, दुःख दे, अन्य मनुष्य, पशु, पक्षिआदिका नासिकाका छेदन भेदन करे करावे, तो गूंगा नकटा, या बेंद्री होवे.

६ प्र–घ्रणेन्द्रकी निरोगता कयासे पावे ? उ–परमात्मा साधु या साध्वी, जेष्ट जन, गुणी जनके सन्मुख नाक नमावे, (नमस्कार करे) सुगन्धी पदार्थोंमें गृध न बने, नाशिका हीनकी साहयता करे, तो सुशोभित निरोगी, नाशीका पावे.

७ प्र–जिह्वा इन्द्रकी हीनता कयासे पावे ? उ–मदिरा, मांस, कंद, मूल, आदि अभक्ष खावे, पटरस पदार्थमें अत्यंत लालुसा धरे, रसना पोषण हरी कायादिका महारंभ करे, असद्बोध कुउपदेश कर हिंसा फेलावे, पाखंड वडावे, मर्म मोस प्रकाशे, कर्कश कठोर भाषा बोले, झूठ बोले, मुकेकी बोबडेकी हाँसी करे, संत सती गुणी जनोकी निंदा करे, अन्यकी रसना (जिह्वा) का छेद भेद करे. श्वासोच्छस्म रुंदन करे,

तो जिव्हाकी हीनता पावे. बोबडा मुका होवे, उसके असुहामणे, बचन लगे, मुखमेंसे दुर्गन्ध निकले, तथा एकेंद्रीयपणा पावे.

८ प्र—रस इन्द्रिकी निरोगता कामसे पावे ? उ—अभक्ष त्यागे, रस शुद्धि नहावे. सद्बोध कर धर्म फैलावे सदा गुणोंकाही उच्चारण करे, सर्वको सुखदाता बोले, रसना हीनकी सहायता करे, तो रसनाका निरोगी, मधुर आलापी होवे.

९ प्र-हस्तकी हीनता कायसे पावे? उ-अन्यके हस्त छेदन करे, खोटे तोले माप वापरे, खोटे लेख लिखे, कुशास्त्र बणावे. चोरी करे, लूले (हस्त रहित को) हांसी करे, दूसरेका छेदन भेदन मारन ताडन करे, पक्षियोंकी पांख काटे. तो लूला (हाथ राहेत) होवे.

१० प्र-हस्तकी प्रबलता कायसे होय? उ-दान देवे- खोटा लेन देन नहीं करे, खोटे लेख नहीं लिखे अच्छे धर्मवृधीके लेख लिखे, विनादी हुइ वस्तु ग्रहण नहीं करे, हस्त हीनकी सहायता करे, तो निरोगी बलिष्ट हाथ पावे.

११ प्र- पांवकी हीनता कायसे होय? उ-रस्ता छोडके चले, हिंसादि पाप कर्मोंमें आगे बढे, धर्म

कार्य में पीछा, हटे, कच्ची-मट्टी-पाणी-हरी-कीडीआदिकों पांवसे दाबे-चांपे, अन्य छोटे बडे जीवोंके पांव तोडे, लंगडे पांगले की हंसी करे, चोरी जारी आदि कु कार्य में प्रवर्ते तो पांव हीन-पांगला होवे.

१२ प्र-पांवकी प्रबलता कायसे पावे? उ-कुरस्ते जावे नहीं, अन्य जातेको बचावे. सजीव पदार्थपे पांव नहीं देवे, लंगडे पांगुलेकी सहायता करे, तो निरोगी बलिष्ट पांव पावे.

१३ प्र-निर्धन (दरिद्री) कायसे होवे? उ-चोरी से दगा से-धूर्ताइसे-ठगाइसे-जुलमसे-हिंसाकारी कूव्यापारसे-द्रव्योपार्जन करे (धन कमावे) धनेश्वरोंपे द्वेष करे, उनको निर्धन बनाना चहावे, मेहनतसे स्वल्प धन कमाया उसे लूंटे, घर-अन्न-वस्त्र से दुःखी करे, गरीबोंको वाक्य प्रहार करे, झूठा आल दे. फसावे, अजीवकाका भंग करे, तथा साधु होकर धन रक्खे, दुसरके कमाइ में अंतराय दे, थापण दबावे तो निर्धन होवे, और किसीका धन अग्नि में जलावे तो उसका भी आग (लाय) में जले, पानी में डूबावे तो झाजादि पाणी में डूबे. इत्यादि जिस तरह दुसरे के द्रव्यका नाश करे वैसेही उसके द्रव्यका नाश होवे

१४ प्र-धनेश्वरी कायसे होय? उ-निर्धनों(दारिद्रियों) की दया करे, उनकी सहायता करे, अन्यकी द्रव्यवृद्धी देख हर्षावे. प्राप्त द्रव्यपे ममत्व कम कर दान पुण्य धर्मोन्नाति अनाथोंकी सहायता इत्यादि सुकृत्योंमें द्रव्य लगावे तो धनेश्वरी होवे.

१५ प्र-अपुत्या कायसे होवे? उ-पशु पक्षी-और मनुष्यादिके अनाथ बच्चोंको, या यूँका (ज्यूं) लीखों को मारे, अन्डे फोडे, पुत्रवंतोपे द्वेष करे. गाय भैंस आदिके बच्चोंको दूध पीते खेंच ले, वेंच दे, बिछोहा पडावे. बीजोंकी मींजी निकाले. तो अपुत्र्य (पुत्र राहित) होवे.

१६ प्र—पुत्रवंत कायसे होवे ? उ—पशु—पक्षी मनुष्यादि के अनाथ बच्चोंका रक्षण—पालण करे, जन्म निर्वाह करने जैसे बनावे तो बहुत पुत्रवंत होवे.

१७ प्र—कुपुत्र काय से होवे? उ—अन्यके पुत्रों को कुबुद्धि देकर माता पिता का अविनय करावे पिता पुत्र का झगडा देख खुश होवे, फूट पडावे. अपने माता पिता को संताप देवे, तथा ऋण और थापण डूबावे, तो उसके कपूत (अविनीत पुत्र होवे.

१८ प्र—सुपूत्र कायसे होवे? उ—आप माता

पिता की भक्ती करे, अन्यको करनेका बोध करे. * पुत्रोंको धर्म मार्ग में लगावे, सुपुत्र देख, हर्षाये तो सुपुत्र्या होवे.

१९ प्र–कु भार्या कायसे मिले? उ-स्त्री भरतार के आपस में क्लेश करावे, उनके झगडे देख हर्षावे. स्त्रीको भरमावे, व्यभिचारणी बनावे, सतियोंकी निंदा करे, कलंक चडावे. अन्यकी अच्छी स्त्री देख दुःखी होवे, तो कुस्त्री मिले.

२० प्र–सूभार्या कायसे मिले? उ-आप शीलवंत रहे, व्यभिचारणीके प्रसंगसे व्रत न भांगे, व्यभिचारणीको सुधारे सतियोंकि प्रशंसा और सहायता करे. स्त्री भरतार का विरोध मिटावे तो अच्छी स्त्री का संयोग मिले.

२१ प्र-अपमान (मानहीन) कायसे होय? उ–अन्यका मान खंडन करे, माता पिता गुरू आदि वृद्धोका विनय नहीं करे. गरिब-निर्बुद्धियोंका निरादर करे शत्रुओंका अपमान सुन खुश होय, अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करे. अपने गुणका अहंकार करे गुणवंतोका द्वेश करे, गुणवंतोको वंदना नहीं करे.

---

*उववाइजी सूत्रमें फरमाया हैकि माता पिताकी भक्ति करनेसे ६४ हजार वर्षके आयुष्य वाला देव होवे.

दूसरे को वंदना करते मना करे, स्वछंद चले, तो-अपमानी होवे.

२२ प्र—सन्मान कायसे पावे? उ-तीर्थंकर, साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका,सम्यक दृष्टी, ज्ञानी,गुणी धर्मादीपक, इत्यादि महाजनोके गुणग्राम करे, गुणदी-पावे. जेष्टोंकाविनय भक्ती करे, कीर्ती सुण हर्षावें, वंदना करे करावे. गुणी जन हो गुणोंको छिपावे, सदानम्र रहे, तो सर्व स्थान सन्मान पावे.

२३ प्र-क्लेशी कुटुम्ब कायसे मिले?उ-कुटुम्ब में झगडा करावे. क्लेश देख हर्ष पावे, तो क्लेशी कुटुम्ब मिले.

२४प्र-अच्छा कुटुम्ब कायसे मिले?उ-कुटुम्बमें सम्प करावे. निरद्रव्य कुटुम्बोंकी सहायता करे. कुटुम्ब में संप देख हर्षावे, तो सुखदाइ कुटुम्ब मिले.

२५ प्र-रोगिष्ट कायसे होवे? उ-रोगीयोंको संतापे, निंदा करे, हँसी करे, औषध दानकी अंतराय दे, रोग बढाने असाता उपजानेका उपाय करे, साधुवो के वस्त्र मलीन देख दुगंछा करे तो रोगिष्ट (रोगळा) होवे.

२६ प्र-निरोगी कायसे होवे? उ-दीन दुःखी योंकों रोगिष्ट देख बचावे, सुख उपजावे. साधू साध्वी

को औषध दानदे, तो निरोगी होवे.

२७ प्र-क्रूर स्वभावी कायसे होवे? उ-कु संगतसे खुश रहे, सत्यसंगसे अलग रहें, बात२ में संतप्तहोवे, तथा नरक गतीसे आय हो सो क्रूर स्वभावी होवे.

२८ प्र-मिलापू कायसे होवे? उ- साधु के दर्शन से प्रसन्नहो, कुसंगत्यागे, कुवचन सुन धैर्य धरे, प्राप्त वस्तुपें संतोष धरे. तथा देवगतीसे आय हो सो सु स्वभावी (मिलापू) होवे.

२९ प्र-पापात्मा कायसे होवे? उ-लोकोंको धर्म से भ्रष्ट करे, सद्धर्मकी निंदा करे, कु धर्म की महिमा करे, अधर्मियोंकी संगत करनेसे पापात्मा होवे.

३० प्र-धर्मात्मा कायसे होवे? उ-अधर्मीयों को धर्मी वनावे, धर्मोन्नती तन धनसे करेसो धर्मी होवे.

३१ प्र-निर्बल कायसे होवे? उ-दीन गरीबों को सतावे, अन्न वस्त्रकी अंतरायदे, निर्बलको दबावे, झगडाकरे, बंध बंधनकरे, अपने बलका अभीमान करे तो निर्बल होवे.

३२ प्र-बलवंत कायसे होवे? उ-दीन, अनाथ जीवोंकी दया कर साता उपजावें. संकटमें सहाय करे, अन्न वस्त्रादि प्रदान करे. तो बलवंत होवे.

३३ प्र-कायर कायसे होवे उ-अन्य जीवको भय उपजावे

धस्का पाडे, इज्जतलूंट,राज, पंच चोर, सर्प, विष,अग्नि, पाणी, देव भूत इन भयंकर वस्तु ओं के नामलै दूसरे कों भय भीतकरे, पशुकों को त्रास दायक बनावे व चमकावे, उन्हे देख हर्षावे सोकायर होवे.

३४ प्र-शूरवीर कायसे होवे? उ-दीन, दुःखी, अपराधीको अभय दानदे, भयसे बचावे, उपद्रव मिटावे-सो शूरवीर होवे.

३५ प्र-कृपण कायसे होवे? उ-छत्ते द्रव्य (धनहोते) दान नहीं देवे, दूसरे कों देते मना करे. देते को देख दुःखी होवे, दानकी निंदा करे, अत्यंत तृष्णवंत होवे सो कृपण होवे.

३६ प्र-दातार कायसे होवे? उ-गरीबी (दरिद्रता) होतेभी दान दे, दूसरेको देते देख खुश होवे, समर्थ हो दीन दुःखीकी सहायता करे, सदा दान देनेकी अभिलाषा रक्खे, धर्मोन्नती सुन हर्षाय, सो श्रीमंत हो दातार होवे.

३७ प्र-मूर्ख कायसे होवे? उ- विद्वानो पंडितोंकी हंसी मस्करी निंदा अविनय अशातना करे, ज्ञान प्रसारकी अंतराय दे, ज्ञानके उपकरण पूस्तकादि नाश करे, ज्ञानपे अरुचि करे. ज्ञान चोरे, सत्य शास्त्र को झूठे बनावे,और झूठको सच्चे बतावे, तो मूर्ख होवे.

३८ प्र-पण्डित कायसे होवे? उ-विद्यादान दे, विद्याप्रसार में धन तन का व्यय करे, विद्वानोकी महिमा करे, धर्म पुस्तकोंका मुफत में प्रसार करे, सो पण्डित होवे.

३९ प्र-पराधीन कायसे होवे? उ-अन्यको बंदीखानेमें डाले, बहुत मेहनत करा थोडी मजूरी देवे. कर्जदारोंका घर लूटे, इज्जत ले कुटुम्ब को नोकरों को अहार की अंतराय दे, जबरदस्तीसे काम करावे, पशु पक्षीको बाडेमें पिंजरमें रोक रक्खे, दूसरेको पराधीन देख खुशी होवे. दूसरेकी स्वाधीनता नष्ट करे सो पराधीन होवे.

४० प्र-स्वाधीन कायसे होवे? उ-कुटुम्बको, नोकरोंको संताप नहीं दे; अहार, वस्त्र स्थानकी साता दे, शक्ति उपरांत काम नहीं करावे. मनुष्य, पशु, पक्षी, आदिको बंदीखानेसें छोडावे, स्वाधीन करे अपणा स्वछंदा रोकके गुरूके च्छंदे, (हुकममें) चले सो स्वाधीन-स्वतंत्र होवे.

४१-प्र- कुरूप कायसे होवे? उ-आप रूपवंत हो, अभिमान करे, दूसरे सुरूपवंतोंका निंदा करे, कुरूपाकी हाँसी अपमान करे, आल चडाय श्रृंगार बहुत भेजनो कुरूपी होवे.

४२ प्र—सुरूप कायसे पावे ? उ-सुन्दर होके भी अभीमान नहीं करे, सुरूपणी स्त्रियादिको विकार दृष्टी से नहीं देखे, कुरूपोंका निरादर न करे, शील पाले सो सुरूप होय.

४३ प्र—धनेश्वरीहो धन विलस क्यों नहीं सके ? उ—अन्यको खान पान वस्त्र भूषणकी अंतराय दे, आप समर्थ हो अच्छे भोग भोगवे. और आश्रितोंको तरसावे, अन्यको भोगोपभोग भोगवते देख आप दुःखी होय, वो धन प्राप्त होके भी भोगव नहीं सके.

४४ प्र—सुख विलासी कायसे होय ? उ—आपको-प्राप्त हुये भोगोप भोग भोगवे नहीं. अपने भोगकी वस्तू दान पुण्यमें तथा स्वधर्मीयोंको दे के पोषे, सो इच्छित भोग भोगवे.

४५प्र—क्रोधी कायासे होय? उ—आप क्रोध करे. क्रोधीयोंकी प्रशंसा करे, मनुष्य पशु देवता ओंके युद्धकी बातों सुन हर्षावे. शिकार खेले, क्षमवंत को संताप उपजावे, निंदा करे, हाँसी करे सो क्रोधी होवे.

४६ प्र—धूर्त कायसे होय ? उ—धर्म करणीमें, दान, पुण्यमें जप तप में कपट करे. थोडा कर बहुत बतावे पोमावे, सो दगाबाज धूर्त होवे.

४७ प्र—सरल कायसे होय? उ—सरल भावसे कर-

णी करे, करके पोमावे नहीं, सो सरल स्वभावी होवे.

४८ प्र—चोर कायसे होवे? उ—चोर कर्मको अच्छा जाने, चोरको सहाय दे. चोरकी वस्तु ले, चोरकी कला बतावे, चोरकी परसंस्या करे, सो चोर होवे

४९ प्र—साहूकार कायसे होय? उ-अदत्तवृत्त धारण करें, चोरकी परिचय बर्जे, सो साहुकार होवे.

५० प्र-कसाइ कायसे होय? उ-हिंसाकी प्रशंसा करे, हिंसा करनेकी कला बतावे. हिंसाके शस्त्र बनावे, दया की निंदा करे, सो हिंसक-कषाइ होवे.

५१ प्र—दयाल कायसे होय? उ-हिंसक की संगत बर्जे, हिंसक को उपदेश दे दयावंत बनावे, आजीवका दे हिंसा कर्म छोडावे सो दयावंत होवे.

५२ प्र-अनाचारी कायसे होवे? विकल भाव रक्खे, अशुद्ध अभक्ष वस्तु भोगवे, आचारवंतकी निंदा करे, अनाचार सेवनमें आनंद माने. अनाचारीयों का सहवास करे, अनाचारको भला जाने, सो अनाचारी होवे.

५३ प्र-शुद्धाचारी कायसे होय? अनाचारीयोंको शुद्धाचारी बनावे. अनाचारकी ग्लानी करे, शुद्धाचारीकी सेवा प्रशंसा करे, अभक्षको त्यागे. निती में प्रवर्ते, सो शुद्धाचारी होवे.

५४ प्र-भाइयोंमें विरोध कायसे होवे? उ-हाथी, घोडे, भैंस, मेंढे, कुत्त मुर्गे, वगैरे जानवरोकों आपस में लडावे. या लडाइ देख हर्षावे, तो भाइयोमें विरोध (लडाइ) होवे.

५५ प्र-भाइयोमें संप कायसे रहे? मनुष्यों पशूवोंके झगडे मिटावे, संप करावे संप देखके खुश होवे, संप रहने उद्यम करे, तो भाइयोमें स्नेह होवे.

५६ प्र—अंतरद्वीपेमें किस कर्म से उपजे? उ-मिथ्यात्वी साधु आदी कों दान देवे, उत्तम साधुओंको कपट से, फलकी इच्छासे दान देवे, दान दे अभिमान करे, सो अंतर द्विप में मिथ्यात्वी जुगलिया मनुष्य होवे.

५७ प्र-जुगलिया (भोग भूमीये) मनुष्य कायसे होवे? उ—शुद्धाचारी साधुओं को हुलास भावसे शुद्ध आहार, स्थान, वस्त्र, पात्र देवे; दुसरेके पास से दिलावे. अन्य को देते देख खुश होवे सो अकर्म भूमी मे सम्यग्दृष्टी जुगलिया होवे.

५८ प्र—अनार्य देशमें जन्म किस कर्मसे लेवे? उ—खोटा आलचडावे, म्लेच्छो की सुख संपदा अच्छी लगे, म्लेच्छ वेश धारे, म्लेच्छ कामों की प्रशंसा करे, आर्यदेश छोड अनार्य में रहे, सो आनार्य देश

णी करे, करके पोमावे नहीं, सो सरल स्वभावी होवे.

४८ प्र—चोर कायसे होवे? उ—चोर कर्मको अच्छा जाने, चोरको सहाय दे. चोरकी वस्तु ले, चोरकी कला बतावे, चोरकी परसंस्या करे, सो चोर होवे

४९ प्र—साहूकार कायसे होय? उ-अदत्तवृत्त धारण करे, चोरकी परिचय बर्जे, सो साहुकार होवे.

५० प्र-कसाइ कायसे होय? उ-हिंसाकी प्रशंसा करे, हिंसा करनेकी कला बतावे. हिंसाके शस्त्र बनावे, दया की निंदा करे, सो हिंसक-कषाइ होवे.

५१ प्र—दयाल कायसे होय? उ-हिंसक की संगत बर्जे, हिंसक को उपदेश दे दयावंत बनावे, आजीवका दे हिंसा कर्म छोडावे सो दयावंत होवे.

५२ प्र-अनाचारी कायसे होवे? विकल भाव रक्खे, अशुद्ध अभक्ष वस्तु भोगवे, आचारवंतकी निंदा करे, अनाचार सेवनमें आनंद माने. अनाचारीयोंका सहवास करे, अनाचारको भला जाने, सो अनाचारी होवे.

५३ प्र-शुद्धाचारी कायसे होय? अनाचारीयोंको शुद्धाचारी बनावे. अनाचारकी ग्लानी करे, शुद्धाचारीकी सेवा प्रशंसा करे, अभक्षको त्यागे. निती में प्रवर्ते, सो शुद्धाचारी होवे.

५४ प्र-भाइयोंमें विरोध कायसे होवे? उ-हाथी, घोडे, भेंसे, मेंढे, कुत्त मुर्गे, वगैरे जानवरोंकों आपस में लडावे. या लडाइ देख हर्षावे, तो भाइयोंमें विरोध (लडाइ) होवे.

५५ प्र-भाइयोंमें संप कायसे रहे? मनुष्यों पशूवोंके झगडे मिटावे, संप करावे संप देखके खुश होवे, संप रहने उद्यम करे, तो भाइयोंमें स्नेह होवे.

५६ प्र–अंतरद्वीपेमें किस कर्म से उपजे? उ-मिथ्यात्वी साधु आदी कों दान देवे, उत्तम साधुओंको कपट से, फलकी इच्छासे दान देवे, दान दे अभिमान करे, सो अंतर द्विप में मिथ्यात्वी जुगलिया मनुष्य होवे.

५७ प्र-जुगलिया (भोग भूमीये) मनुष्य कायसे होवे? उ–शुद्धाचारी साधुओं को हुलास भावसे शुद्ध आहार, स्थान, वस्त्र, पात्र देवे; दुसरेके पास से दिलावे. अन्य को देते देख खुश होवे सो अकर्म भूमी मे सम्यगदृष्टी जुगलिया होवे.

५८ प्र–अनार्य देशमें जन्म किस कर्मसे लेवे? उ–खोटा आलचडावे, म्लेच्छो की सुख संपदा अच्छी लगे, म्लेच्छ वेश धारे, म्लेच्छ कामों की प्रशंसा करे, आर्यदेश छोड अनार्य में रहे, सो आनार्य देश

में जन्मले.

५९ प्र—आर्य देशमें कायसे जन्में? उ—आर्यों की चाल चलन पसंदकरे. अनार्य रिवाज-कामें छोडे, अनार्य कों आर्य बनावें, मुनि (साधु) की प्रशंसा करे, आर्यों को यथा शक्ति सहायता करे, तो आर्य देशमें जन्मलेवे.

६० प्र—हम्माल कायसे होवे? मनुष्य, पशुओंपे गजा (शक्ती) उपरांत बजन लादे, बेगारमें पकडे, जबरी में काम लेवे, थोडाकहे बहुत वजन भरे, ज्यादा उठाया देख हर्षावे तो हम्माल, पोठीया, बेल, घोडा वगैरे होवे.

६१ प्र—कु कवी (भाट चारण) कायसे होवे? उ—कु कथा का प्रेमीबने, लोकीक (मिथ्या) शास्त्रका दान दिया, धर्म कथाका नाम रख व्याभिचार उत्पन्न होवे ऐसी कथाके, विषय पोषक कवीता रचे, विषय वचन राग रागणी सुणे, उनपे प्रेम करे, सो कु—कवी भाट चारण होवे.

६२ प्र—सुकवी कायसे होवे? उ—जिनराज मुनिराजके गुण कीर्तन सुण हर्षलावे, शास्त्रकर्ता गणधरो की आचार्यों की प्रशंसा करे. ज्ञानवृद्धी में धन लगावे; धर्म कवीयों को सहाय्यदे, धर्म कवीता की गुन

रहस्यों से हर्षावे सो, विद्वान कवी होवे.

६३ प्र—दीर्घ (लम्बा) आयुष्य कायसे पावे? उ—मरते जीवोंका द्रव्य दे छोडावे. उन्हे खान, पान, स्थानका सहाय दे, बंदीवान छुडावे, संसार में उदासीनता धरे, दया भाव रक्खे, दीन अनाथोंको सहाय देवे, साधुको शुद्ध निर्दोष आहार आदिक देवे तो दीर्घ आयूष वाला होवे.

६४ प्र—ओछा आयुष्य कायसे पावे? उ—जीव घात करे, गर्व गलावे, आजीविका का भंग करे, ज्यूं, खटमलादी मारे, साधुको अमन्योग असाता कारी अहार आदिक देवे, शुद्ध लेने वाले साधुको अशुद्ध आहार प्रमुख देवे, अग्नि विष शास्त्रादि से जीव मारे, सो अल्पआयुष पावे.

६५ प्र-सदा चिंता कायसे रहे? उ-बहुत जीवकों चिंता उत्पन्न होवेसो वैसी बातकरे सदा चिंता करने वाला होवे

६६ प्र—सदा चिंता कायसे रहे? उ—दुसरेकी चिंता का भंग करे, धर्मात्माकों देख खुश होवे दुःख पीडितको संतोष उपजावे. सो सदा निश्चिंत रहे.

६७ प्र—दास कायसे होवे? उ नोकरोंको बहुत सतावें, बहुत काम लेवें परिवारका सैन्याका अभीमान करे, सो बहुत जनोंका दास होवे.

६८ प्र—मालिक कायसे होवे? उ—धर्मी जनोंकी तपस्वियोंकी वैयावच्च करे, धर्मात्मा दुःखी जनोका पोषण करे, अन्यके पास धर्मात्मा की सेवा भक्ती करावे, कर ते देख खुशी होवे, सो बहुतों का मालिक होवे.

६९ प्र—नपुंसक कायसे होवे? उ—नपुंशक के नृत्य गायन ठट्ट देख खुशी होवे. पुरुषकी स्त्रीका रूप बनाके नृत्य करावे, बैल, घोडे, आदि पशू या मनुष्यका लिंग छेदन करे, नपूंसक से बिषय सेवन करे, आप नपूंसक जैसी चेष्टा करे, स्त्री पुरुषके संयोग्य मिलाने की दलाली करें, बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्रकी हिंसा करे, सो नपूंसक होवे.

७० प्र—स्त्री कायसे होवे? उ—स्त्रीयों के विषय में अत्यंत लुब्ध होवे, पुरुष हो स्त्रीका रूप बनावे, स्त्रीयोंकी तरह चेष्टा करे या दगाबाजी करे,सो स्त्री होवे.

७१ प्र—निगोदमें कायसे जाय? उ-देव गुरु, धर्मकी निंदा करनेसे. कंद मूलका भक्षण करनेसे.

७२ प्र—एकेंद्री कायसे होय? उ-पृथ्वी, पाणी,अग्नि हवा, वनस्पति, कंद-मूल, वृक्ष, घास फूल, पत्र, का छेदन भेदन करे सो एकेंद्री होवे.

७३ प्र—विकल्येन्द्रिय कायसे होवे? उ—निर्दयपणे

त्रसकी घात करे अनाज (दाणें) बहुत दिन संग्रह कर रक्खें, तस जीव (कीडे) की उत्पति होवे ऐसी वस्तु का संग्रह करे, इन्हकी घात करे, मच्छर, खट मल, निअरने धूम्रादिक उपचार कर उन्हे मारे, बोर प्रमुख त्रस जीव उत्पन्न होवे ऐसे फलोंका भक्षण करे, मोरी, गठार में पैशाब करे सो मरके विकलेन्द्रि य (बेन्द्री, तेन्द्री, चौरिन्द्री) होवे.

७४ प्र—कलंग (अंगोपंग रहित) कायसे होवे? उ—जीवके हाथा, पांव, कान, नाक, आँक, अंगुली, आदि अंगोपांगका छेदन भेदन करे, कान कतरे-बींदे कंगूरा करे, ऐसा करते देख हर्षावे सो कलंग (अंगो पांग रहित) होवे.

७५ प्र—पूर्ण अंग कायसे होवे? दूसरेके अंगोपांग का छेदन होता देख रक्षण करे, अपंगीकी करूणा करे, उसे सुधारनेका उपचार करे, आजीविका चलावे. सहा य देवेतो पूणागी (संपूर्ण अंगवाला) होवे

७६ प्र—नीच जाति कायसे पावे? उ—अपणी उंच्च जाति कुलका अभिमान करे, उच्च की निंदा करे, नी चका द्वेष करे, नीच कामें करे, सो नीच जाती पावे.

७७ प्र—उच्च जात कायसे पावे? उ—सत्पुरुषके गुण की पशसास्था करे, वंदना नमस्कार करे, अपणें

दुर्गुण प्रगट करे, चार तीर्थकी भक्ति करे, यह मनुष्य जन्म पाय तो राजादिक कुलमें जन्में और तिर्यंच होय तो राज्यका मानेता हो सुख भोगवे.

७८ प्र–उंच जातीका दास क्यों बने? उ–उंच्चक-में कर अभिमान करे, गुरुकी आज्ञाका भंग करे, उंच हो दीनोके शिर आल चडावे उंचहो नीच काम करे-सो उंच हो नीच (दासके) कर्म करे.

७९ प्र–प्रदेश फिरके आजीका क्यों करे? उ–भि क्षूकोंको लालचा वारंवार फिराय फिर दान दे, नोकरों की नोकरी तरसाय २ दे, धर्म नामसे निकला धन बहुत दिन घरमें रक्खे, काशीदको भटकावे, सोप्रदेश फिर अजीवीका करें.

८० प्र–सुखे अजिव का कायसे मिळे? उ–धर्मा त्मा कों स्वस्थान रहे अहार वस्त्रादि पहोंचाय सहा य दे, उनके पास धर्म बृद्धी करावे. आप स्थिर चित से धर्म ध्यान करे, स्थिर स्वभावीकी कीर्ति करे, सो घर बैठ सुख अजीविका कमावे.

८१ प्र–दगाकर अजीविका क्यों चलावे? कपट भावसे दीन जनोंको दान दे. मुनिको भक्ति रहित दान दे, चोरादिक कु कर्मियोंस आजीविका चलावे, उनकी प्रशंसा करे, सत्यज्ञानिसे निर्वाह करने वालेसे

कलंक चडावे. सो महा मुशिवत से दगाकर अर्जीवी का चलावे-

८२ प्र—सच्चावटसे आजीविका कौन करे? उ—सरल भावसे, विनय सहित, धर्मात्मा कों अहार देवे, दीन की रक्षा करे, निर्दोष आजिविका न मिलनेसे क्षुधादि परिषह सहे परंतु कु व्यापार नहीं करे सो सरलपणें सुखे आजिविका उपार्जन करे.

८३ प्र—मनुष्य पशु बजारमें क्योंविके? उ—मनुष्य व पशु कों बेंचे (मोलदेवे) कंन्या विक्रय पुत्र विक्रय करे, या मोल दिलाने की दलाली करे, सो मनुष्य हो दास (गुलाम) पणे या पशु हो विके-बेचाय.

८४ प्र-सामुदानिय कर्म कायसे बन्धे? उ—मनुष्य या पशु का वध होता होय वहां देखने बहुत जन खडे रहें, मनमें आय कि इसे किति वेग मारे अपन अपने घर जावें, उन के. तथा बहुत मतांतरी यों एकत्र हो सत्य देव गुरु धर्म की निंदा करे, उन्हके सामुदानिय कर्म बंधते हैं. वो पाणी मेडूब, आग में जल, या मारी प्लेगा दिके सपाटमें आ एकदम बहुत मनुष्य मारे जाते हैं.

८५प्र—एक दम बहुत जींव स्वर्ग में कैसे जावे? उ—धर्म मोत्सव, दिक्षा ओत्सव, केवल ओत्सव, धर्म

सभा व्याख्यानादिकमें बहुत जन मिल हर्षावे. वैराग्य भाव लावे. उसकी प्रशंसा करे. सो एक दम बहुत जीव स्वर्ग या मोक्ष जावे.

८६ प्र—कोइ बिना काम द्वेष करे इसका क्या सबब ? उ—परभव में किसी को दुःख दिया होय, उस का नुकशान किया होय तो वो बिना दोष ही द्वेष धरता है.

८७ प्र—विना स्नेही स्नेह जगे सो क्या सबब उ— दुः खसे छोडाया होय. साता उपजाइ हो बन में पहाडमें या संग्राममें निराधार हुये को आधार देनेसे. वो पीछा अचिंत्य दुःख में आकर सहाय करे. विना कारण प्रेम करे.

८८ प्र—व्यंतरादिव्याधिसे मुक्त न होवे सो क्या कारण ? उ—वैद्य (हकीम) हो, अनेक जीवों केसाथ विश्वास घात करे, जानता हुवा खराब औषध दे, रोग वढाय और ज्योतिषि हो ग्रह, नक्षत्र भूत व्याधि आदि डर बताय, दूसरे कों लूंटे. देव देवीकी मानता कराय; तथा विष शास्त्र अग्नि से आप घात करे सो अत्यंत उपचार करतेही रोग बिमारी और व्यंतरादि व्याधिसे छूटे नहीं.

८९ प्र—धनेश्वरीका धन धर्म काममें नहीं लगे उ-

सका क्या कारण ? उ-अन्यको कुशीक्षा दें,उसका द्र-व्य. वैश्या नृत्यादि कुव्यसन में खरचाय, अन्यका नुकसान सुन खुशी होवे. जुगार सट्टेके बेपारादि में द्रव्य गमाय, वो धनेश्वरी होके कुमार्गमें धनका व्यय कर सके परंतु धर्म काममें धन नहीं लगा सके

९० प्र-गर्भमेंही मृत्यु क्यों पावे? उ-शोकोंका या स्वता पोता का औषधोपचार या मंत्रादिसे गर्भ गलावे, पाडे, पडावे, सो गर्भ मेंही मृत्यु पावे.

९१ प्र-हित शिक्षा खराब क्यों लगे? उ-अन्यको कुशिक्षा दे कुमार्ग चलावे. गुरूके पिताके हित ब्रचन नहीं सुने, शिक्षककी हँसी करे, उसे हित शिक्षा अ-हित कारी हो परिगमें.

९२प्र-जाती स्मरण और अवधि ज्ञान कायसे होय उ-तप संयम पाला हो ज्ञानीयोंकी वैयावच्च करी हो, ज्ञान की महिमा, बहुमान किया हो, उन्हे जाति स-मरण, अवधीज्ञान, उपजे.

९३ प्र—व्रत-पच्चखाण क्यों नहीं कर सके?उ-अन्य-के व्रत भंग कराय, शुद्धवर्त्तीके दोष लगाय, अन्यके व्रत भंगा देख खुशी हो. पोते व्रत ले प्रणामोंमें सक ल्प विकल्प करे, वार २ व्रत भांगे, उससे व्रत पच्चक्खा ण न हो सक

९४ प्र–कसाइयों के हाथसे कटे सो कोनसा पाप? उ–कसाइयों से वैपार करे, कषाइयों को जानवरा देवे, कसाइके कृत्य करे, दगासे घात करे, बनचरोकी सिकार करें, मांस खाय सो पशु हो कसाइयों के हाथसे कटे.

९५ प्र--पाप कर धर्म माननेका क्या सबब ? उ-भ्रष्टाचारीकी संगत करे. पाप कार्य में धर्म कहे, सत्य देव गुरू धर्मकी निंदा करे, वो पापमेंही धर्म माने.

९६ प्र-व्यभिचारी क्यों होवे? उ-वेश्या के कीशव कमाय, या वैश्या का संग करे, कुशीलीयों की प्रशंसा करे, तिर्यंचणी का संयोग मिलावे, संयोग देख हर्षाय सो व्यभिचारी होवे.

९७ प्र-शीलवंत काय से होवे? उ-शीलपाले. शीलवंत की महिमा करे, शीलवंत की सहायता करे, कुशीलीयोंका संग छोडे. सो शीलवान होवे.*

९८ प्र-ऋद्धिवंत कायसे होवे? उ-सुपात्र दानदेनेसे,

९९ प्र-मांगनेसे ही वस्तू क्यों नहीं मिले? उ-धनवंत हो दान नदेवे आश्रितों को तरसानेसे.

१००प्र-भिखारी, कौन होवे? उ-छिद्री और निंदक

१०१ प्र-स्त्रीयों क्यों मरे? उ-बहुत स्त्रीयोंका पति हो उन्हे मारने से.

---

* यह ९७ बोल सुद्रष्ठ तरंगणी दिगाम्बर ग्रन्थमें के हैं.

१०२ प्र-भ्रमित चित्त क्यों रहे? उ-मदिरा भांग, अफीमादी कैफी वस्तु सेवन करनेसे.

१०३ प्र-दहाज्वर कायसे होवे? मनुष्य पशु पे ज्यादा वज़न लादनेसे.

१०४ प्र-बाल विधवा क्यों होवे? उ-पतिकी घात कर व्यभिचार सेवन करने से. पतिका आपमान करनेसे.

१०५ प्र-मृत्यु बन्धा क्यों होवे? उ-पशु पक्षी के बच्चे अन्डे मारनेसे. या लीखों फोडनेसे. ऊगती व नास्पतिकी कूंपल चूंटने-तोडनेसे.

१०६ प्र-ज्यादा पुत्री क्यों होवे? पाणी पीते पशुओंको रोकके मारनेसे बहु पुत्रीयेकी निंदा करनेसे.

१०७ प्र- विधवा पुत्री क्यों होवे? उ-धर्मका धन खाय तो. धर्म के उप करण चोरे तो.

१०८ प्र-मंद कायसे होवे? उ-मदिरा मांसके भोग वनेसे. मंद बालकी हँसी करनेसे.

१०९ प्र-अपच्छाका रोग कायसे होवे? उ-साधु को खराब अहार देनेसे.

११० प्र-क्षय रोग कायसे होवे? हड्डीका व्यापार करे, सहत (मध्य) झाडे तो.

१११ प्र-कुरूप बेडोल मुख कायसे होवे? उ-दाने

शरीकी निंदा करनेसे- मुखका बहुत शृंगार करनेसे.

११२ प्र-छोड कायसे रहे? उ-गर्भपात करनेसे.

११३ प्र-स्थान भृष्ट कायसे होवे? रस्ने परके झाड काटनेसे. आश्रितों का आसरा छोडानेसे.

११४ प्र-श्वेत कुष्ट कायसे होवे? उ-गौवध, कंन्या विक्रय करनेसे, तथा साधु हो व्रत भंग करनेसे.

११५ प्र-पुत्र वियोग कायसे होवे? उ-गाय भैसके बच्चेको दूध न पानेसे, पशु पक्षीके पुत्र मारनेसे.

११६ प्र-बचपणमें मात पिता क्यों मरे? सरण आयेकी घात करनेसे. मात पिताका अपमान करनेसे.

११७ प्र-जलोदर काहसे होवे? अभक्ष भक्षणसे.

११८ प्र-दांत कायसे दुखे? अत्यंत रसनाकी लुब्धतासे. अभक्ष भक्षणेसे.

११९ प्र-लम्बे दांत क्यों होवे? उ-घराघर, निंदा करनेसे, चहाडी चुगली करनेसे.

१२० प्र-मुल कृछ्य पथरी कायसे होवे? उ-राणीयों या परस्त्रीयोंसे गमन करनेसे.

१२१ प्र-गुंगा कायसे होवे? उ-झुठी साक्षी भरे, गुरुको गाली देनेसे.

१२२ प्र- शूलरोग कायसे होवे? उ-पशु पक्षीको बाणों से मारनेसे, शूल कांटे आर चुबानेसे.

१२३ प्र-उत्तम जाती का मनुष्य भीख क्यों मांगे? उ-माता, पिता, गुरुको मारें, या अपमान करनेसे.

१२४-प्र-गुं ड मस्से ज्यादा क्यों होवे? पशु पक्षी को पत्थर से मारनेसे.

१२५ प्र-चमडी फटे तथा दाद क्यों होवे? उ-सांप, वि छु, गो, खटमल, ज्युं, लीख को मारे तो.

१२६ प्र- सदा बीमार क्यों होवे? उ-धर्मादा का खाके धर्म नहीं करेतो.

१२७ प्र-पीनस रोग क्यों होवे? उ-चीडीयाँ, मयुर तोते आदि मारनेसे.

१२८ प्र--कुष्ट रोग कायसे होय ? उ-साधुको सं ताप देनेसे.

१२९ प्र-शरीर कायसे धूजे? उ-रस्ते चलते-वृक्ष तृण तोडेतो.

१३० प्र-अर्धांगरोग क्यों होवे उ-स्त्रीयोंकी हित्यासे

१३१ प्र-नासूर कायसे होवे? उ-पशु पक्षी मनुष्य की नाक मे नाथ डालनेसे.

१३२ प्र-गलित कुष्टी कायसे होवे? उ-पशु पक्षी मनुष्य को फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र-हरस (मस्सा)कायसे होवे उ-नदी तलाव पाणी शोशनेसे, और जलचर जीव मारनेसे.

१३४ प्र-रातअन्ध कायसे होवे? उ-त्रीसंध्या (फ जर दो प्रहर शाम) को भोजन करनेसे.

१३५ प्र-रांधन वायु कायसे होवे? उ-घोडे. ऊंट. बेल बकरे गाडे आदी भाडे देनेसे.

१३६प्र- भगंधर कायसे होवे? उ-अन्डका रस पीनेसे

१३७ प्र-उल्लू (घुघू) कायसे होवे? उ-रात्री भोजन करनेसे. तथा विन देखी वस्तु खानेसे.

१३८ प्र-सिंह सर्प कायसे होवे? उ-क्रोध मेंक्लेश संतप्त हो आत्मघात करनेसे.

१३९प्र-गधा कुत्ता कायसे होवे? उ-अभीमान कर के वशहो अकार्य कर मरनेसे.

१४० प्र-बिल्ली कायसे होवे? उ.दगा करनेसे.

१४१ प्र-नवल सर्प कायसे होवे? उ-लोभ करनेसे-

१४२ प्र-बाला (नारू) कायसे निकले? विना छाणा पाणी पीवे, जीवाणीका जतन न करेतो.

१४३ प्र-मनुष्य कायसे होवे? क्षमा दया, नम्रतासे

१४४ प्र-स्त्री मरके पुरुष कायसे होवे? उ-सत्यशील, संतोष विनय आदि गुण धारन करनेसे.

१४५ प्र- देवता कौन होवे? साधु, श्रावक, तापस और अकाम (मन विन) निर्जरा करनेसे.

१४६प्र-लक्ष्मी स्थिर कायसे रहे? उ-साधु, दान देके

पश्चताप नहीं करता.

१४७ प्र– काणा कायसे होवे? उ–बीज, फल फूल छेदे, हार गजरे वगैरे बनानसे.

१४८ प्र–गलित कुष्ट कायसे होवे? सुवर्ण चांदी लोहा तांबा वगैरे की खानो खोदनेसे.

१४९ प्र–यश करते अपयश क्यों होवे? उ-अचित औषधी करनेसे. अन्यकृत्य उपकार न माननेसे.

१५० आँख में बामणी कायसे होवे? निमक (लुण) के आगर खोदनस.

१५१ प्र–आँख भँजरी कायसे होवे? सम्यक दृष्टी हो मिथ्यात्वी का अनार्योंका काम करनेसे.

१५२ प्र-रुंड मुंड शरीर कायसे होवे? उ-न्यायाधीश हो कठण दंड देनेसे.

१५३ प्र–कंठमाल कायसे होवे? उ–मच्छीका आहार करनेसे.

१५४ निरोगी दिखे, और रोगिष्ट होवे सो क्या कारण? उ–लांच ले झुठा न्याय करनेसे.

१५५ प्र–संयोग मिल वियोग क्यों होवे? उ–कृतघ्नता, मित्र द्रोह और विश्वास घात करनेसे.

१५६ प्र–डरकण स्वभाव कायसे होवे? उ-कठोर दंडी कोटवाल होवे, सो, तथा अन्यको डरावे सो.

१५७ प्र—खुजली कायसे चले? उ—तेंद्री ज्यूं लीख खटमल पिस्सू उदाइ आदि मारनेसे.

१५८ प्र—ज्यूंवो ज्यादा क्यों पडे? उ—मच्छ आहार करनेसे. ज्यूंवा अग्नि आदि में डाल मारे तो.

१५९ प्र—तपस्या क्यों नहीं बने? उ—तप जपका अभिमान करे तो. तप करते अंतराय देवे तो.

१६० प्र—असुहामणी भाषा क्यों लगे? उ-वाक्य चातुरइका अभिमान करे तो. कठोर बचन बोले तो.

१६१ प्र—अपयशी क्यों होवे? उ—सासू, नणंद' देराणी, जेठाणी, भाइ भोजाइ का ईर्षा करे तो.

१६२ प्र—तरुणपणे स्त्री क्यों मरे? उ—भोगकी तीव्र अभीलाषा रक्खे. अमर्याद विषय सेवे तो.

१६३ प्र—छमुर्छित मनुष्य कौन होवे? उ—नलि-गुलीके कुंड करे छमुर्छिमकी घात करे सो.

१६४ प्र—भूख ज्यादा क्यों लगे? उ—खेतीके कर्म करनेसे. सशक्त आश्रितोंको भूखे मारनेसे.

१६५ प्र—मृगी झोला क्यों आवे? लोहरकी धमण धमे, मृगी, आने वालको सतावेतो.

१६६ प्र—बोलते बगासी क्यों आवे? उ—रंगार के कर्म करनेसे तोतले को चीडानेसे.

१६७ प्र—बोलते थूक क्यों उडे? उ-गोवर सडानेसे

१६८ प्र—ज़ाझ कायसे डूबे? उ—पाखानेमें झाडे जामे. मूतमें मूत्र करे, सर्व रात मूतका संग्रह करनेसे.

१६९ प्र—खोजा क्यों होवे? उ- बहुत बन कटाइ करनेसे. खोजोंके साथ क्रीडी करनेसे.

१७० प्र—योवन अवस्थामें दाँत पडजाय श्वेत बाल होवेसो क्या कारण? कोमल वनास्पाति का छेदन भेदन, चटनी कचुमर करनेसे.

१७१ प्र-भरा नांगल (गुम्बडा) कायसे होवे? उ- फलोको चीर मसाला भरनेसे.

१७२ प्र—शरीरमें कीडें कायसे पडे? उ—दुसरेपे घोडेका पिशाब छिटकनेसे. सडी वस्तु खानेसे.

१७३ प्र=एक साथही सोले रोग कायसे होवे? उ ग्रामोंको उजाड करे लूट धाडा, पाडनेसे,

१७४ प्र—पाले हुवे मनुष्य क्यों बदले? रशोइका व्योपार करनेसे. अच्छी वस्तु दिखा खोटी खिलानेसे

१७५ प्र=१२ वर्ष का छोड कायसे रहे? उ-पेशाब भेला कर सर्व रात्रि रखनेसे.

१७६ प्र—प्र२४ वर्षका छोड कायसे रहे? उ-तीव्र भाव विषय सेवनेसे. गर्भ गलानेसे.

१७७ प्र—सदा शरीर क्यों जले? उ-फूलोंका मर्दन करनेसे. बहोत अत्तर उगटणे लगानेसे.

१७८ प्र—बंध्या स्त्री कायसे होवे? उ-फूलका अत्तर निकालनेसे. मनुष्य पशुके बच्च मारनेसे.

१७९ प्र— बहूत स्त्री होवे भी पुत्र क्यों न होवे? उ=बहुत वनास्पतिका रस निकालनेसे

१८० प्र हलालखोर कायसे होवे? उ-जलचर जीव बहुत मारनेसे. कषाईके कर्म करनेसे.

१८१ प्र—सशक्त धर्म क्यों नहीं बने ? उ=ममइ [मनुष्यका रक्त) बहूत निकाला होवेसो.

१८२ प्र- शरीर भारी कायसे होवे? उ-आसा सराप दारू बहूत पिया होयतो.

१८३ प्र—गर्भ में आडा कायसे आवे? उ-साधुके शिर आल देवे, शुद्ध आहार लेने वाले साधुको अशुद्ध देवे. तो गर्भ में आडा आवे.

१८४ प्रश्नोत्तर-नर्क तिर्यंच गति में अकाम निर्जरा कर मनुष्य हुवा वो पहले दुःखी हो पीछे सुख पावे, कुलीन के शिर कलंक आवे. शक्त सजा पावे, फिर इन्साफ होनेसें निर्दोष ठहरे छुट जावे.

१८५ प्रश्नमोक्ष कायसे मिले? उत्तर ज्ञान दर्शन चारित्र और तपकी सम्यगू प्रकारे आराधन पालन स्फार्शन करनेसे. इति

इत्यादि कर्म बन्ध करनेके, और भुक्तनेके,

अनेक कारण शास्त्र ग्रन्थ में बतायें हैं. कितनेक कर्म इस भवके किये इनही भव में भोगववते हैं. और कितनेक आगे के जन्म मे भोगवते हैं. अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ भगवंत ने संसारी जीवोंकी कर्म विपाकसे होती हुइ दिशाको अवलोकन करी, परन्तु वाणी द्वारा सम्पूर्ण वर्णन कर सके नहीं, क्यों कि सम्पूर्ण विश्व अनंत जीवों कर भरा है. और एकेक जीवकेअनंत कर्म वर्गणाके पुद्गल लगे हैं. और एकेक वर्गणाके वर्णादि पर्यायकी अनंत व्याख्या होती है. एसा अपरम्पार विपाक विचय का वर्णन् भाषा द्वारा कदापि न होसके, तथापि धर्म ध्यानी ज्ञानी की अज्ञानुसार, विपाक विचय का यथा शक्ति विचार करते हुये कर्मों की विचित्रता से वाकेफ होते हैं. वो कर्म बन्ध के कारणसे बचके कर्मक्षय करनेके मार्गमें प्रवर्तन हो, अनंत अध्यात्मिक सुख प्राप्त करते हैं.

चतुर्थ पत्र-"संस्थान-विचय"

संस्थान नाम आकार का है. सो जगत् का तथा जगत में रहे हुये पदार्थोंका आकार का विचार करे सो संस्थान विचय धर्म ध्यान. अनंत आकाश (पोलार) रूप अनंत क्षेत्र है कि जिसका अंतः पारही नहीं. उसे अलोक कहते हैं, इस अलोक के मध्य भा

+ ९६ के उपर के बोल गौतम प्रच्छा और धर्मज्ञान प्रकाशके अनुसार से कुछ बढाके लिक्खे हैं.

लोकाकार

सिद्ध | सिद्ध | स्थान

उच्चालोक

१२ | ११
१० | ९
८
७
६
५
४ | ३
२ | १
जोतषी

मध्यलोक

@ ७
१
२
३
४
५
६
७

नरक

नित्य नीगोद
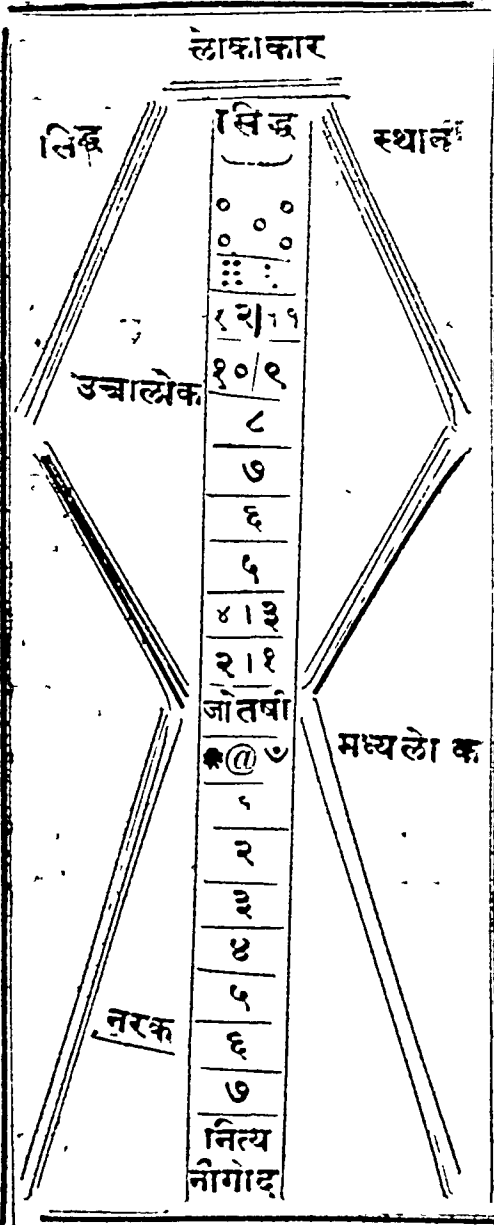
गमें ३४३ राजू घनाकार लम्बी चौडी जितनी जगा मेंजीवाजीव व रूपी अरूपी पदार्थ रुप एक पिंड है, उसे 'लोक' कहते हैं, यह लोक नीचे सातमी नरक के तले ७ राजू का चौडा है, और उपर सात राजू आवे वहां मूल से घटता २ मध्य लोक के स्थान एक राजू का चौडा है, और वहां से उपर चडते चौडास में वढते २ चार राजु (पांचमें देवलोकतक) आवे, वहां ५ राजू का चौडा है, और चौडास मे घटते २ तीन राजु लोकाग्र [मोक्षस्थान] आवे वहां एक राजुका चौडा है. नीचे उलटा उसपे सुलटा और उसपे एक उलटा यों तीन दिवे रखे, तथा पांव पसार कम्मर को हाथ लगा मनुष्य खडा रहे, इत्या

दि संस्थान (आकार) मय लोक है. ऐसा कथन भ गवति आदि शास्त्र में लिक्खा है, इस लोकके मध्य भाग में एक निसरणी जैसी एक राजु चौडी और सातमी नरक से मोक्ष तक १४ राजू लम्बी त्रस नाल है. उस के अन्दर त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीव हैं. बाकीके सर्व लोमेंम एक स्थावरही जीव भरे हैं,, त्रस नालके नीचेका विभाग सात राजु जितनी (उलटे दीवे जैसी) जगा में सात नर्कस्थान है, वहां पापकी अधिकता होती है, वो जीव उपजके कृत कर्म के अशुभ फल दुःखी हो भुक्तते हैं. मध्य में दोनों दीवेकी संधी मिलती है, वहां गोळाकार१८०० जोजन उंची जगा है. उसे मध्य (तिरछा) लोक कहते हैं. वहां मध्य में तो एक लक्ष जोजन का उंचा और नीचे दश हजार जोजनका चौडा उपर एक हजार जोजन चौडा (मूलस्थंभ जैसा) मेरु पर्वत है, उसके चारही तर्फ फिरता [चूडी जैसा) एक लक्ष जोजनका लम्बा चौडा (गोळ) 'जंबु द्विप' है, उसके बाहिर चारही तर्फ (चूडी जैसा) फिरता दो लक्ष जोजनका चौडा 'लवण समुद्र' है. उसके चारही तर्फ वैसाही-फिरता चार लक्ष जोजन चौडा 'धातकी खंडद्विप' है. उसके चौगिर्दा ८ लक्ष जोजन चौडा

'कालोदधी समुद्र है उसके चौगिर्दा १६ लक्ष जोजन चौडा 'पुष्कराद्वीप' है. यों एकेकको चौगिरदा फिरते और चौडासमें एकेकसे दुगणे, असंख्यात द्विप, और असंख्यात समुद्र, सब चुडी (बंगडी) के संस्थानमेंहैं. मेरु पर्वतके जड में समभूमी है, वहांसे ७९० योजन उपर तारा मंडल, वहांसे १० जाजेन उपर * सूर्यका विमान, वहां से ८० जोजन उपर चन्द्रमाका विमान हैं. और उपर २० जोजन के अन्दर सब जोतषीयों- के विमान आगये हैं. अढाइ द्विप के अन्दर के जोतिषीके विमान आधे काबिठके संस्थान है. और बाहिर के इंट जैसे है. आगे उपर (मृदंग के संस्थान) सात राजू मठेरा कुछ कम लोक है, उसे उंचा लोक कहते हैं. वहां १२ देवलोक, ९ लोकांतिक ९ ग्रीवेक

‡ पुष्कर द्विपके मध्य भागमें गोळाकार [चुडा सैसा] मानु क्षेत्र पर्वत हैं. उसके अन्दरही मनुष्य की वस्ती हैं जंवुद्विप घातकी स्वंड द्विप और आधा पुष्करार्ध द्विपयों अढाइ द्विप कहते हैं.

* चन्द्रमां का विमान सामान्य पणे १८०० कोश कचौडा हैं सूर्य चा १६०० कोश चौढा. और ग्रह नक्षत्र तारा के विमान जघन्य १२५ कोश उत्कष्ट ५०० कोश चौडे है और १६ लक्ष कोश सूर्य तथा १७ लाख ६० हजारकोस चन्द्रमा पृथ्वी से उंचा है ऐसा मिथ्य सद्धन ग्रन्थ में लिखा है.

५ अनुत्तर विमान आगयाहै. इनमें सर्व विमान-८४९-७०२३ है. कित्नेक चौखूणे-कित्नेक तीखूणे और कित्नेक गोळाकार हैं. वहां पुण्य की अधिकता होती है वो जीव उरज के कृत कर्म के शूभ फल सुख मय भुगतें है. सर्वार्थसिद्ध विमान के उपर १२ जोजन सिद्ध सिला है सो चित्ते छत्र के जैसी ४५ लक्ष जोजन की लम्बी चोडी (गोळ) है. उसके उपर एक जोजन के चौवीसवें भागमें अनंत सिद्ध भगवंत अरूपी अवस्थामें अलोक सें अड (लग) के विराज मान हैं. यह संक्षेपमें लोक का और लोक में रहे स्थूल पदार्थों के संस्थान-का वर्णन किया.

जीवके ६ संस्थान-१ जिसका चारही तर्फ बरोबर अंग होय-अर्थात् पद्मासन से बेठ के दोनो घुटने के बिचमें की डोर और दोनो खन्धे के बिच की डोरी बरोबर आवे. तैसे वोही डोरी बांहा खन्धा और बाये घुटनेके बिच, और डावे खन्धा और डावे घुटने के बीच बरोबर आवे. जैसे अब्बी कित्नीक जैन मूर्तीं का बनाते है. सो 'समचउरस संस्थान' २ जैसें बट (बड) का झाड. नीचे तो फक्त लक्कड का ठूंठ रुंढ मुंढ दिखता है, और उपर शाखा प्रतिशाखासे शोभे तैसेही कम्मर के नीचे का शरीर अशोभनीक, और उपरका शरीर

शोभनीक होवे, सो 'निग्रोह परिमंडल' संस्थान. ३ जैसे खुरशाणी अम्बली. उपरको तो ठुंठा निकल जाय और नीचे शाखा प्रतिशाखा कर शोभे. तैसेही उपरका शरीरतो अशोभनीक और कम्मरके नीचेका शरीर शोभनीक लगे, सो 'सादी संठाण' ४ बावन ठिगना (छोटा) शरीर होयसो 'बावना संस्थान' ५ पीठपे तथा छातीपे कुबड निकले सो 'कुबडा संठाण' ६ आधा जलामुर्दाका जैसा सबशरीर खराबहोय. सो 'हुंडसंठाण'.

इन ६ संस्थान मेंसे नरक पांच स्थावर तीन विकेंद्री और असन्नी तिर्यंच पचेंद्री मे फक्त १ हुंड संस्थान पावे. सन्नी मनुष्य और सन्नी तिर्यंचमें ६ ही संथान पावे. और सब देवता तिर्थंकर, चक्रवर्ति, बलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषोंका एक समचउरस संस्थान होता हैं.

अजीवके ५ संठाण—१ वट्ट गोळ (⊛)लड्डू जैसा २ तंस=तीखुणा > सिंघाडे जैसा. ३ चौरंसे=चौखुणा [] चौकी (बाजोट) जैसा. ४ परिमंडल—गोल o चूडी जैसा और पांचमा आइंतस—लम्बा । लकडी जैसा. इन पांचही संस्थानमय इस जगत्में अनेक अजीव पदार्थ हैं. वट्ट तो वाटले वेताडादिक, तंस और चौरंसे सो कितनेक देवताके विमाण वगैरे, तथा परि

मंडल द्वीप समुद्रादिक ऐसा औरभी अनेक पदार्थ जानना.

यह संठाण-संस्थोनो का जो वर्णन किया इन आकारके सर्व पदार्थोंमें; अपना जीव अनंत वक्त उपजके मर आया है. स्वतः सर्व प्रकारके उंच नीच संस्थान मय वस्तूका मालिक हो आया है. भोगव आया है. अब्बी यहां रे जीव ! तुझे पुण्योदयसे तेरेशरीर का, स्त्रिआदीका, मनोरम्य संस्थान मिलगया तथा सयनासन, वासन, वस्त्र, भूषण, वाहन, इत्यादि इच्छित ऋद्धी प्राप्त हुइ देख के, क्यों उसके फंदमें फसता है. क्या मरके उसहीमें उत्पन्न होना है? कहते हैं—"आसा वहां वासा" ऐसा जाण, अच्छे संस्थानके पदार्थोंपेसे ममत्वका त्याग करना. और कोइ वक्त अशुभोदय से अशोभनीक संस्थान मय अपना, शरीर यास्त्रिआदिक कुटुम्ब संयोग मिलगया. या अमन्योग्य शयनासनका योग्य बना तो, खेदित न बनें. क्यों कि संस्थान तो फक्त एक व्यवहारिक रूप है, इससे अंतरिक कुछ कार्य की सिद्धी न होती है. जिस मे किसी कार्य की सिद्धी न होवे. उस पे रुष्ट तुष्ट होना येही अज्ञानता जानी जाती है. और भी विचारे कि-रे जीव! तूं ज्ञानी बन के निकम्मे काम

में राग द्वेष कर, कर्म बन्धन करता है, तो तेरे ज्ञानसे तुझे क्या फायदा हुवा. इत्यादि विचार, अच्छे या बुरे, संस्थान मय पदार्थोंपेसे राग द्वेष कमी करे. और सदा एकही आकार में रहने वाले जो निजात्म गुण तथा परमात्म स्वरूप है. उस में अपनी परणमावे.

यह धर्म ध्यान के चार पायोंका संक्षेप में स्वरूप कहा, धर्म ध्यानी इन्हीको यथा बुद्धि प्रमाणें विचार के धर्म ध्यान में अपणी आत्माको स्थिर करे.

द्वितिय प्रतिशाखा 'धर्म ध्यानीके लक्षण'

धम्म सणं झाणस्स चतारी लक्खणा पण्णता तंजहा आणारुइ, नीसग्गरुइ, उवदेसरुइ सुत्तरुइ.

उववाइसूत्र

अर्थम्—धर्म ध्यानके ध्याता को पहचाननेके चार लक्षण है:–१ जिन आज्ञापे रूचि होयसो 'आज्ञा रुचि. २ जिनज्ञान के अभ्यासपे रुचि होय सो 'निसग्ग रुचि.' ३ सद्बोध श्रवण करनेकी रुचि सो उपदेश रुचि. ४ जिनागम श्रवण करनेकी रुचि होय सो; सूत्र रुचि.'

रुचि नाम उत्कृष्ट इच्छा का है, जैसे-कामी को कामकी. दामी को दाम की नामी को नाम की क्षुधित को अन्नकी, तृषित कों जल की. समुद्र पडे को झाज की. रोगी को औषधी की- रस्ता भूले कों साथ की. इत्यादि कार्यर्थिक कों कार्य पूरा करने की स्वभाविक इच्छा होती है; वो कार्य पूर्ण न होवे वहां लग मनमे तलमल लगी रहे, कार्य पूर्ण होनेसे अत्यंत हर्षाय, और वियोग होने से पींछी वैसीही उत्कंठा जगे उसी का नाम रुचि है. संसारी जीवोंकी जैसी रुचि व्यवहारिक पुद्गलिक कामोंकी होती है वैसाही रुचि धर्म ध्यानी की आत्म साधन के कामों में होती है. यह आत्म साधन के परमार्थिक कामोके मुख्य चार भेद किये हैं.

प्रथम पत्र-अज्ञा रुचि

१ आज्ञा रुचिः—अनादि काल से यह जीव जिनाज्ञा का उल्लंघन कर स्वच्छंदा चारी हो रहे जिस सेही इतने दिन संसार में परिभ्रमण किया. उत्तराध्येयन सूत्र में फरमाया हैकि "छंदो निरोहेण सुहोइ मोरकं" अर्थात्-अपना छांदा (इच्छा) का निरुंधन करे जिनाज्ञा में प्रवर्तन से ही मोक्ष मिलती है. इस

लिये मुमुक्ष जन को चाहिये कि अपनी इच्छा को रोक वीतराग की आज्ञा में प्रवर्तने का प्रयत्न करे अब वीतराग की आज्ञा क्या है? उसे विचारिये:— वीतराग—राग द्वेषके क्षय करने वाले को कहते हैं, जिनोंने राग द्वेषके क्षय में ही फायदा देखा, वो राग द्वेष घटानेकी ही आज्ञा करेंगे यह निसंदेह है. ऐसा जाण वीतरागकी आज्ञाके इच्छक सदा मध्य स्थ परिणामी रहे. प्रतिबन्ध रहित रहे. सो प्रतिबन्ध चार प्रकारके होते हैं:—१ द्रव्य से—(१) सजीव सो द्विपद-मनुष्य पाक्षिकादि चतुष्पाद-पशुओआदि. २ अजीवसो-वस्त्र पात्र धनादिकका, ३ मिश्रसो-दोनो भेले, जैसे-वस्त्रा भूषण मंडित मनुष्य, पशु इत्यादि. २ क्षेत्रसे-ग्राम, नगर, घर, खेत इत्यादि. ३ कालसे-घडी, प्रहर, दिन, पक्ष, मास वर्षादि. ४ और भावसे-क्रोधादि कषाय, मोह ममत्व. इन चार ही प्रतिबन्ध रहित रहे. * क्षुधा तृषा, शीत तपादि समभाव से

* यह श्रावक हमारे, यह क्षेत्र हमारे प्रतिबन्धनमें बंधने से ही इसवक्त वीतरागके अनुयायों में धर्म ध्यानकी हानी होकेक्लेशकी वृद्धी होती हुइ दृष्टी आती है. आत्मार्थीयों को इस झगडेसेबच, अप्रतिबन्ध विहारी होना चाहिये कि जिससे धर्म ध्यान अमंद रहे.......

सहन करे, मिष्ट कटु वचनकी दरकार न रक्खे. निद्रा प्रमाद आहार कमी करे, सदा ज्ञान ध्यान तप संयम में आत्मा को रमण करते प्रवर्तें (इस आज्ञा रुचिका विस्तार पहिले आज्ञा विषय में विस्तारसे होगया है. वहां कहा सो तो विचार समजना और यहां कहा सो प्रवर्तन करनेकी इच्छा समजना)

द्वितीय पत्र-"निसग्गरुचि"

२ 'निसग्ग रुचि'—धर्म ध्यानी पुरुष को इस विश्वालय में के सर्व पदार्थ ऐसे भाष होते हैं कि जाने मुझे सद्बोध ही करते हैं. श्री आचारंग शास्त्र के फरमान मुजब ज्ञानी महात्मा आश्रव के स्थान मे ही संबर निपजा लेते हैं. जैसे * नमीराज ऋषिने

* मिथला नगरी के नमी रायजीके शरीर में दहा ज्वर हुवा, उसवक्त वैद्यके कहेनेसे शांती उपचार के लिये १०-८ राणीयों बावन चंदन घिस के लगाने लगी, तब उन सबके हाथ की चुडीयों का एक दम शोर मच गया तब नमीराय बोले-मुझे येशब्द अच्छा नहीं लगता है. कि उसी वक्त सब प्रेमलाने शोभाग्यके लिये एकेक चूडी हाथमें रख सब चूडीयों उतार डाली. अवाज बंद होने कारण समझने से विचार हुवाकी, "बहुत चूडी एकस्थान थी तबही गडबड थी और एक रहनसे सब गडबड मिट गइ

प्रेम लाओके चुडीओं का अवाज सुना उस से[अन्य कों काम राग बृद्धि करने का कारण होता है) उनो ने वैराग्य प्राप्त किया. ऐसे ही-झाड पाहाड, खान पान, वस्त्र, भूषण, ग्राम मशाण, रोग, हर्ष, शोक, बादल, विद्युत, संयोग, वियोग, निवर्ती भाव यह सब वैराग्य उत्पन्न करने के कारण होते हैं. इत्यादिसे जिनको वैराग्य उत्पन्न होवे सो निसर्ग रुचि और. कितनेक जाति स्मरण ज्ञान से अप ने पूर्व के ९०० भव (जो सन्नी पचेंद्रीय के लगोलग किय होये, उन्हे) जान ने से, जन्मांतर में कृत कर्म के फल भोगवे हुये देख, वैराग्य उत्पन्न होता है. ऐसे २ अनेक कारणो से जिनकों तत्वज्ञान प्राप्त करने की रुची होती है, उसको निसर्ग रुचि कहना. तथा अन्य मतावलम्बी अज्ञान तप का कष्ट सहनेसे, अकाम निर्जरा होने से, ज्ञाना वर्णी कर्म का क्षय उपसम होनें से, विभंगज्ञान की प्राप्ति होवे. उस से जैन मत के साधू की उत्कष्ट शुद्ध क्रिया देख अनुराग जगने से विभंगज्ञान फिट अवधी ज्ञान की प्राप्ति होवे, नव

बसमेंही सबमें फंसाहू वहांतक ही दुःखी हूं जो इस के न्धनासे मुक्त होवुं तो सब सेगत्याग सुखी बनू इत्ना वि चारनेही रोग शांत हूवा और वो दिक्षा ले अनंत सुख पाये

तत्व ज्ञान पे रुचि जगने से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुइ सो 'निसर्ग रुचि' ऐसे किसी भी तरह तत्वज्ञता प्राप्त हो उस में परिणाम स्थिरीभूत होवे वोही धर्म ध्यानी की निसर्ग रुचि का लक्षण जाणना.

तृतीय पत्र-"उपदेश रुचि"

३ 'उपदेश रुचि'-श्री तिर्थंकर केवल ज्ञानी, गणधर महाराज, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, सम्यक दृष्टी, इत्यादि जो शुद्ध शास्त्रानुसार उपदेश करे, उससे धर्म ध्यानी की रुचि जगेसो उपदेश रुचि दशवै कालिक सूत्र के चौथे अध्येयनमें फरमाया हैः-

गाथा-सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पवगं,
उभयंपि जाणइ सोच्चा. जंसेयं तं समायरे.११

अर्थ-सुनने सेही मालम होता है कि-अमुक सुकृत्य करने से अपणी आत्मा का कल्याण (अच्छा भला) होगा और अमुक पाप कृत्य करनेसे बुरा होगा; तथा अमुक काम करने से, अच्छा और बुरा दोनो ऐसा मिश्र काम होगा जैसे-कि काम भोग में सुख थो तोडा है और दुःख अनंत है, यह दोनों बात समझे. तथा मिश्र पक्ष जो ग्रहस्थ धर्म है. जिसे शास्त्र में 'धम्मा धम्मी' तथा-'चरित्ता चरित्ते' कहे हैं. क्योंकि संसार में बेठे हैं सो विना पाप गुजरा

होना मुशकिल ऐसा समझे उदासीन वृति पश्चाताप युक्त काम पूरता कर्म करते हैं. और आत्म कल्याण का कर्ता धर्म को जाण, जब २ मौका मिलता है. तब अत्यंत हर्ष युक्त धर्म क्रिया करते हैं. यह तीन ही बातो सुनने से मालम पडती है. उसमे से अच्छी लगे उसे स्विकार के सुखी होते हैं. यह सब उपदेश सेही जाणा जाता है. उपदेश (व्याख्यान) में सदा अभीनव तरह २ का सद्बोध श्रवन करसे स्वभाविक तत्व रुचि तत्वज्ञता उत्पन्न होती है. ध्यानस्थ हुये वो बोध हृदय में रमण करता है. तब अन्य सर्व वृती से चित्त निवर्त हो, एकांत धर्म ध्यानही में लग, ध्यान की सिद्धि करता है. इस लिये धर्म ध्यानी उपदेश, श्रवण, मनन, निर्धाध्यासन, और उसी मुजब प्रवृतन करने में अधिक रुचि रखते हैं.

चतुर्थ पत्र-"सूत्र रुचि"

४ सूत्र रुइ—सूत्र—द्वदशांगी भगवंत की वाणी को कहते हैं. सो १ 'आचारांग' जिस में—साधु के आचार गोचार वगैरका वर्णन है. २ 'सुयगडायंग' जिसमें-अन्य मतावलम्बीयोंके मतका श्वरुप बताके उसका निराकरण कियाहै. ३ 'ठाणायंगजी'में दशस्थानकका अधीकार है. ४ 'समवायंगजी'में जीवादी पदार्थके समोह

का संख्या युक्त समवेस किया है. विवहा पणंती (भग वती) में विविध प्रकार का अधिकार है. ६ ज्ञाता- में धर्म कथा ओं है. ७ 'उपासकदशा' में दश श्राव कों का अधिकार है. ८ 'अंतगडदशांग' में अंतगडके- वलीयों का अधिकार. ९ 'अणुत्तररोववाइ' में अणुत्तर विमन में उपजे उनका अधिकार. १० 'प्रश्नव्याकार. ण' में आश्रव संवर का अधीकार ११ 'विपाकमें' शु भाशुभ कर्म भोगवणेंकी कथा और१२वा दृष्टी वादांगमें सर्व ज्ञान का समवेश किया था.

यह द्वादशांगी श्रीजिनेश्वर भगवानकी वाणी अगा ध ज्ञान का सागर हैं. तत्वज्ञान कर प्रतिपूर्ण भरी हुइ है. ज्ञाता को अपूर्व चमत्कार ह्रदयमें उत्पन्न क- रती है. आत्म स्वरुप बताने वाली, मिथ्या भर्म मि- टाने वाली, मोह पिशाच भगाने वाली, मोक्ष पंथ लगाने वाली, अनंत अक्षय अव्याबाध सुख कों च- खाने वाली, एक श्री जिनश्वर भगंवत की वाणीही गुण खाणी है. जिसे पठन, श्रवन मनन निधिध्यासन करनेमें धर्मध्यानी महात्मा सदा प्रेमातुर रहते हैं, ए- केक शब्द अत्यंत उत्सुकता से ग्रहण कर उसके रशे- में अंतः करण कों प्रवेश कर, एकाग्रता से लीनहो. अपूर्व अनोपम आनंद प्राप्त करते हैं.

तृतिय प्रतिशाख-धर्मध्यानीके "आलम्बन"

सूत्र धम्मस्सणं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णतातं-
जहाः-वायणा. पुच्छणा, परियट्टणा, धम्मकहा

अर्थ-धर्म ध्यान ध्याने वाले को चार आलम्बन [आधार] फरमाये हैं, जैसे बृद्ध मनुष्यको मार्गक्रमणेको ज्येष्ठिका [लकडी] आधार भूत होती है या मेहलपे चढने को पंक्तीये का आलम्बन डोरी आधार भूत होती है. वैसेही धर्म ध्यानमें प्रवृत होने वाले महत्माको चार तरहका आधार होता है, सो कहे हैः १ 'वायणा'—सुत्रका पठन, २ 'पुच्छणा'—संदेहा निवारन गुरुसे पृच्छना [पूच्छना] ३ 'परियट्टना' पढे ज्ञान को वारम्बार संभारना [फेरना] और ४ धम्मकहा-धर्म कथा (व्याख्यान) दे प्रगट करना.

प्रथम पत्र-"वायणा"

१ 'वाचान' गीतार्थ बहु सूत्री, आचार्य, उपाध्यय इत्यादि विद्वरोंके पाससे ज्ञान ग्रहण करना (पढना) या लिखित सूत्र ग्रन्थादि वाँचना (पढना) यह ध्यानी के ध्यायका प्रथम आलंबन आधार है.

अव्वल चतुर्थ (चौथे) आरेमें, प्रवल (तीक्षण) प्रज्ञा (वुद्धि)के सबबसें, शास्त्रादिक लिखने की आ-

वश्यकता बहुतही थोडीथी. वो अपणे गुरुओंके पाससे थोडेही कालमें बहुत ज्ञान कंठाग्र कर लेतेथ, कितनेक तो ऐसी तेज बुद्धि वाले थे को, चउदह पूर्वकी विद्या. जो कदापि लिखे तो १६३८३ हात्थी डूबे इत्नी श्याही लगे, इत्ने ज्ञानका एक मुहूर्त मात्रमे कंठ कर लेतेथे. अर्थात् १ उपनेवा=उत्पन्न होने वाले पदार्थ, २ विघनेवा=विनाश होने वाले. और ३ धुवेवा ध्रुव (स्थिर) रहने वाले पदार्थ' यह तीन पद पढाते जिसमें चउदह पूर्वका ज्ञान समज जातेथ! जैसे कुंडभर पाणीमें एक तेलकी बुंद डालनेसे सब हौदमें फैल जाती है. तैसेही उन्हे सिखाया हुवा, संक्षिप्त शब्द विस्तार कर परगम जाताथा. और चउदे पूर्वका ज्ञान जिसके एक खुणेमें समाजाय ऐसा दृष्टी वाद अंगके पाठी (पढे हुये) भी विराजमान थे. इस ज्ञानके परमोत्कृष्ट रसमें जब उनकी अंतरात्मा लीन होजातीथी. तब छे छे महीने जित्ना समय ध्यान में व्यतिक्रान्त होते भी उनको भूख, प्यास. शीत, उष्णादि पीडा (दुःख) जनक न मालम होतीथी. ऐसे २ प्रबल बुद्धि वाले थे. तब लेखका कष्ट सहनेकी क्या जरूर पडे? चौथा आरा उतरे लगभग ९७६ वर्ष गये पीछे. 'श्री देवर्द्धी गणी क्षमा श्रमण, नामें आचार्य, किसी व्या-

धिकों निवारने सूठ लायेथे, और आहार किये बाद भगवणेको कानमें रखलीथी, सो वक्तसिर खाना भूल गये, और देवसी प्रतिक्रमण की आज्ञा लेती वक्त नमस्कार करते वो सूंठ कानमेसे गिर पडी, उसे देख विचार हुवा कि-अब्बी एक पूर्व जितना ज्ञान होतेभी इत्नी बुद्धि मंद रह गइ है, तो आगे क्या होगा? जो ज्ञान नष्ठ हो गया तो घोर अन्धारा हो जायगा! इस लिये अब ज्ञान लिखनेकी बहुतही आवश्यकता है. लिखित ज्ञान भव्य जीवोंको आगे बहुतही आधार भूत होगा इत्यादि विचारसें संक्षेपमें सूत्र लिखने सूरू किये. क्योंकि—प्रथम आचारांगजीके १८००० * पद थे. अब्बी फक्त मूलके २५०० श्लोकही देखाइ देते हैं ऐसेही दृष्टी वादांग छोड, इग्यार अंगादि ७२

* गाथा—सोलससय चउतंसा, कोडि तियसीदि लक्खंचेव
सत्तसहस्साठसया अठासीदिय पदवणा. ३३६ गोमटसार
अर्थ—१६३४८३७८८८ इत्ने वरण [अक्षर] एक पदके होते हैं
गाथा—अठारस बतीस बादस अडकदी विछप्पणं,
सत्तरि अठावीस चाउहालं सोलस सहस्सा. ३५० गो०सार
अर्थ—आचारांगजीके १८०००, सुयगडांगजीके ३६०००, ठाणयंगजीके ४२०००, समवायंगजी १६४०००. भगवतीजीके २२८००० ज्ञाताजीके ५५६०००, उपासकदशांगके ११७००००. अंतगड दशांग के २३२८०००, अनुत्तरोववायजी के ९२४४००० प्रश्न व्याकरणजीके ९३१६०००, विपाकजीके १८४०००० पद १२ अंगके पदकी संख्या जानना

सूत्रोंकी लिखाइ संक्षेपमें हुइ, कि जिनकी हुन्डी (नामादी) श्री समवायँगजी तथा नंदीजी सूत्रमें हैं. बाकीका सब ज्ञान उन्हीके साथ गया.

अब इस पंचम् कालमें तीर्थंकर केवल गणधर द्वादशांग के पाठी पूर्वधारी वगैरे जो अपार ज्ञान के धारक कोई नहीं रहे.

श्री उत्तराध्ययन जीके दशमें अध्ययनमें कहा है :-

गाथा नहु जिणं अज्ज दिस्सइ,बहू मए दिस्सइ मग्गदेसिए
संपइ नेया उए पहे, समय गोयम मा पमायए ३१.

अर्थात् अब्बी इस पंचम कालमें नहीं देखते है निश्चय से श्री जिन—तिर्थंकर भगवान व केवल ज्ञानी. परन्तु बहुत हैं मोक्ष मार्ग के उपदेशनें बताने वाले जिनोक्त सिद्धांत तथा सद्बोध कर जीवोंको मुक्ति पन्थ में चलानें वाले 'सद्गुरु' उनके पाससे न्याय मार्ग मोक्ष पन्थ प्राप्त करने में हे गोतम (जीव) समय मात्र प्रमाद आळश मत करो!

इस गाथानुसार अबी तो भव्य मोक्षार्थि जीवोंको फक्त जिनोक्त शास्त्र और सद्बोध कर्ता सद्गुरुअेंकाही आधार रहा है, मोक्षार्थियोंकी इच्छा सिद्धि करने वाला ज्ञान है. वो इस वक्त सूत्र व ग्रन्थों मे है, और उसकी रहस्य गीतार्थों बहू सूत्रीयों उस्पा

बुद्धि और दीर्घ दृष्टी वालोंके पास है, कि जिनोंने अपने गुरुओंके पास यथा विधि धारण की है. और वो न्याय मार्ग में लौकीक लोकोत्तर में शुद्ध प्रवर्त्ती से प्रवृत्त रहे हैं, क्षांत, दांत, निरारंभी, निष्परिग्रही हैं. उनके पास शास्त्राभ्यास करना. क्यों कि-शास्त्र समुद्र अति गहन गुढार्थों करके भरा है, उसकी यथार्थ समज होना है सोही आत्म कल्याण करने वाली है.

इस वक्त कितनेक ले भग्गूओं अभिमान के मारे गुरु गम हिन पुस्तकी विद्या पढ पंडितराज बन बैठे हैं, उन्होंने बहुत से स्थान अर्थका अनर्थ कर शास्त्रका ‡शस्त्र बना दिया है; अनंत भव भ्रमण मिटा ने वाला पवित्र अहिंशा मय परम धर्म को हिंशामय कर, अनंत भवका बढाने वाला बना दिया है; इस लियेही चेताना पडता है कि-मोक्षार्थियोंको अव्वल ज्ञान दाता गुरूके गुणोंकी परिक्षा शास्त्रानुसार कर उनके पाससे ज्ञान करना चाहीये.

श्री सूयगडायंगजी सूत्र के ११ में अध्ययन में धर्मोपदेशके लक्षण इस प्रमाणें चाहीये.

गाथ अया गुत्ते सयां दंते, छिन्न सोए अणासवे.

जे धम्मं सुद्ध मख्काति, पडि पुन्न मणालिसं. २४

मार्ग में जाती हुइ रोक, अपने वश में करी है, कुमार्ग में आत्माको नहीं जाने देते हैं, सदा पंच इन्द्रि और मनको विषय से निवार धर्म ध्यान में लगा रख्खा है. संसारका जो आरंभ परिग्रह रूप प्रवाह है उसे बंद किया है. मिथ्यात्व, अव्रत्त, प्रमाद. कषाय, और अशुभ जोग, इन पंच आश्रवों करके; रहित हुये हैं, और अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अममत्व यह पंच महाव्रत धारन किये, इतने गुणके धारक होवें सोही, सत्य, शुद्ध, यथा तथ्य, श्री वीतराग प्रणित धर्म फरमा सक्ते हैं, वो वैसा धर्म फरमायंगे तो कि-प्रतिपूर्ण न्युन्याधिकता रहित. देशव्रत्ती (श्रावकका) या सर्वव्रति [साधुका] निरुपम औपमा रहित. वैसा धर्म अन्य कोइ भी प्रकाश नहीं शक्ते हैं, ऐसे गुणज्ञोंके पास से ज्ञान संपादन करना.

अन्न, धन, आदि सामान्य वस्तुभी दातार के पास से ग्रहण करतें अनेक लघुता करते हैं. तथा सरो वरमे से भी विना नमन किये पाणी प्राप्त नहीं हो सक्ता है, तो ज्ञान जैसा अत्युत्तम पदार्थ बिना लघुता नम्रता किये कहांसे प्राप्त होगा. इस लिये ज्ञान प्राप्त करनेकी श्री उत्तराध्ययनज़ीके पहिले अध्याय में यह रीती फरमाइ है:—

गा—आसण गओनपुच्छेजा,नेव सिज्जागओ कयाइवि
आगम्मुकडुओ संतो, पुच्छेज्जा पंज्जालि उडो॥२३॥
एवं विणअ जुत्तस्स, सुत्तं अत्थंच तदुभयं ॥
पुच्छ माणस्स सिसिस्स, वागरेज्जं जहा सुये ॥२४॥

अर्थात्—अपने आसण (बिछोना) पे बैठा हुवा तथा सेजा में सूता हुवा कदापि प्रश्नादिक नहीं पूछे क्यों कि आसण यह अभिमान जनक है, और, अ. भिमान ज्ञानका शत्रु है. और सूता हुवा ज्ञान ग्रहण करनें से अविनय और प्रमाद होता है, यह ज्ञानके नाश करनेवाले हैं. इस लिये जब प्रश्न पूछनेकी का ज्ञान ग्रहण करनेकी इच्छा होय तब आसन अविनय मान और प्रमादको छोडके जहां गुरू महाराज वि- राजे होंयँ उनके सन्मुख नम्रता युक्त आवे और दो नो घुटने जमीनको लगा, दोनो हाथ जोड मस्तकपे चढा, तीन वक्त (उठ बैठ) नमस्कार करे, और दो- नो घुट नें जमीनको लगाये, दोनो हाथ जोडे, नमा हुवा सन्मुख रहके, उच्च बहुमान वचनोंसे प्रश्नोत्तर करे, सूत्र अर्थादिक दिल चायतो पूछे. और क्या उत्तर मिलता है. ऐसी उत्कंठा युक्त एकाग्र उनके सन्मुख दृष्टी रखे, जो फरमावे सो, जी! तहत, वचन से ग्रहण करे जितना अपनको याद रहे, उतनाही ग्रहण करे.

ज्यादा लोभ नहीं करे. ऐसी तरह विनय युक्त पूछनेसे, गुरु महाराज नें अपने गुरूके पास सें जैसा ज्ञान धारन किया वैसाही उसे देवेंगे (पढायेंगे)

जो सद्गुरूके पाससे ज्ञान ग्रहण किया है, उसकी पुनरावर्ती करते (फेरते) किसी तरह की शंका उत्पन्न होवे, या कोइ शब्द विस्मरण होगया (भूल गये) हो. तथा किसीने प्रश्न पूछा, उसका उत्तार नहीं आया हो तब तथा धर्म दीपाने, नवी बात अन्यको जचाने पूर्वोक्त विधिसे गुरू महाराजके सन्मुख आके:—

द्वितीय पत्र-"पुच्छणा"

२ 'पूछणा' अर्थात्—पूछा करे कि—हे कृपाल! आपने अनुग्रह कर मुझें अमुक पढाया था. उस में इस प्रकार संशय उत्पन्न होता है, सो हे पुज्य! उसका निराकरणा—निवारण करने आपको तकलिफ देताहूं सो माफ किजीये. और. मुझे मार्ग बताइये- इत्यादि नम्रता युक्त, अपने मन की शंका खुली २ गुरुजी सन्मुख प्रकाश करे, और गुरु महाराज उत्तार देवे वो आप एकाग्रता से-उत्सुकता से जी! तहेत इत्यादि सकोमल-मीठे वचनो से वधाता हुवा ग्रहण करे. जहां तक अपने चित्तका पूरा समाधान न हेवो

वहां तक तर्क उठार के पूछताही जाय, शरमाय नहीं डर नहीं, घबराय नहीं, निश्चल चित्त सें पूरा निराकरण-कर ※ संदेह रहित होवे कि कोइ भी उस बात कों पूछे तो आप उसके हृदय सचोट ठसा सके, ऐसा निश्चय करे और जो अभ्यास कर निश्चय कर निसंदेह ज्ञान किया है उसेः—

तृतीय पत्र-"परियट्टणा"

३ 'परियट्टणा' अर्थात्-वारंवार फेरता (याद करता) रहे. क्योंकि अब्बी इतनी तीव्र बुद्धि नहीं है कि जो एक वक्त पढा, पीछा याद नहीं करे तो विस्मरण (भूल) नही होवे, और वारंवार फेरने में बहुत फायदा है—

श्री उत्तराध्ययन जी सूत्रके २९ में अध्यायमें भगवंतने फरमाया हैः—

"परिट्टणं या एणं वंजण लद्धि च उप्पाइए" अर्थात् ज्ञानको वारंवार फेरनेसे अक्षरानुसारणी लब्धी उत्पन्न होती है. जिससे एक अक्षर व पदके अनुसारसे दुसरे आगे पीछे अक्षरोंका ज्ञान होता है, अपनी विना पढी ही विद्या मेंका ही अन्यके भूल

※ चोअणा प्रति चोयणो करनेसे ज्ञानी बहुत खुशी होते हैं और शांतपणे उसका खुलासा करते हैं.

हुये अक्षरोंको आप बना सके. ऐसी शक्ति उपजे.

और जो ज्ञान फेरे वो ऐसा नहीं फेरे कि जैसे बच्चे 'गुणती' करते हैं, पढे हैं वोही कह देते हैं परन्तु उसके मतलब में कुछ नहीं समझते हैं. तूं चलमै आया' ऐसी 'गडबड' भी नहीं करे. ज्ञान फेरती वक्त 'अणुप्पेहा' अर्थात् उपयोग रक्खे. जो जो अक्षरोंका मुख से उच्चार होवे उसका अर्थ अपने मन में विचारता जाय, उसपे दृष्टी फेलता जाय. इस में बहुत गुण है.

सूत्र- "अणुप्पेहाएणं-आउयवज्जाओ सत्त कम्म पयडीओ धणीय बंधाओ, सिढिल बंधण बद्धा ओपकरेइ, दिह काल ठिइयाओ रहस्स ओ काल ठिइया ओपकरेइ; तिव्वाणु भाओ वाओ मंदाणु भावाओपकरेइ, बहु पएस गाओ, अप्प पएस गाओपकरेइ, आउयं चणं कम्मं सियबंधइ सियनोबंधइ, अस्सायावेयाणिज्जंचणं कम्मं नो भुज्जो २ अवचिणाइ; अणाइयंचणं अणवदग्गं दीह मद्धं चउरंत संसार कंतारं खिप्पा मेव वीइ वयइ, ३२ उत्तरा० अ० २९.

अर्थात्-उपयोग युक्त ज्ञान फैरनेसे, या शब्द का अर्थ परमार्थ दीर्घ दृष्टीसे विचारनेसे जीव आठ कर्मों मेंसे आयुष्य कर्म छोड बाकीके ७ कर्मकी प्रकृ-

तियों जो पहले निबड (मजबूत) बांधी होय उसे स्थिल (ढीली) करे (जलदी छुट जाय ऐसी) बहुत काल तक भोगवणा पडे, ऐसा बंध बांधा होय तो; थोडेही कालमें छुटका होजाय ऐसी करे. तीव्र भाव (बीकट रससे उदय आने) की होवे, उसे मंद भाव (सरलपणें) भोग वाय ऐसी करे. * आयुष्य कर्म कदाचित कोइ बंधे, कोइ नहीं बांधे. असाता वेदनी (रोग दुःख देने वाले) कर्म वारंवार नहीं बांधे; और चार गती रूप संसार कांतार [जंगल] का पन्थ-मार्ग आदि रहित है और मुशकिल से पार होय ऐसा है. उसे क्षिप्र (शीघ्र) अतिक्रमें (उल्लंघे)-अर्थात् जल्दी पार पावे. मोक्ष प्राप्त करें. देखिये! श्री महावीर वर्द्धमान श्वामी ने खुद, शास्त्र द्वारा विचारना [ध्यान] का कितने विस्तार से गुणानुवाद किया है. ऐसी उत्तम विचार शक्ति है, ऐसा जाण सूत्र उपयोग युक्त ज्ञान कों वारंवार फेरना चाहीये.

जो ज्ञान फेर कर पक्का किया उस का रस हु घेहु परगमा उसका लाभ दूसरे को देणें के लिये.

चतुर्थ पत्र-"धम्मकहा"

४ 'धम्मकहा' अर्थात् धर्मकथा (व्याख्यान) करें-

* आयुष्य कर्म का बन्ध एक भवमें दोवक्त नहीं पडता है.

धर्म कथा श्री ठाणायंग सूत्र में ४ प्रकार की कहके; एकेक कें चार २ भेद करनेसे १६ प्रकार होते हैं, सो-

(१) अखवणी-अर्थात् अक्षेपनी. जो बोध श्रोताकों सूणावे उसकी असर श्रोताके मनमें हूबहू होवे, पीछा वमन न होवे. एसा पक्का ठसजाय, रुचजाय, पचजाय, उसे अक्षेपनी कथा कहनी. इसके ४ भेदः—(१) प्रथम साधुका धर्म ५ महाव्रत, ५ समिती, ३ गुप्ति, (यह १३ चरित्र) आदि कहे, जो साधु होने समर्थ न होवें. उनके लिये श्रावकके १२ व्रत * आदि कहे के यथा शक्त धारन करनेकी सूचना करे. (२) निश्चय में और व्यवहारमें प्रवर्तनेंकी रीती स्याद्वाद शैलीसे कहे. कि निश्चय में मोक्ष ज्ञानादि त्रय रत्नकी आराधनासे और व्यवहार में रजोहरण मुहपति आदि साधुके चिन्ह व शुद्ध क्रियासे, निश्चय विना व्यवहार, और व्यवहार विन निश्चय की सिद्धि होनी मुशकिल है,

* १ त्रस जीवकी हिंसा नहीं करे, स्थावरकी मर्याद करे,. २ बडा झूठ नाहिं बोले. ३ बडी चोरी नहीं करे. ४ परस्त्रीका त्याग करे. परिग्रह की मर्याद करे. ६ दिशाकी मर्याद करे, ७ उपभोग परिभोगकी मर्याद करे, ८ अनर्था दंड त्यागे, ९ सामयिक करे, १० दिशावकाशी करे, नियम चितारे, ११ पोषा करे, १२ मुनिराज को १४ रकारका सुजना दान उलट भाव से देवें.

व्यवहारमें शुद्ध प्रवर्त्ती कर, निश्चय सिद्धिकी खपकरनेसे सर्व सिद्धि होती है. (३) श्रोताओंको संशयका उच्छेदन करनेको अपने मनसेही प्रश्न उठाके- आपही उसका समाधान करे, कि जिससे इष्टार्थ सिद्ध होवे, तथा प्रश्नका उत्तर मार्मिक शब्दमें दे समाधान करे. (४) सत्य सरल सबको रुचे एसा सद्बोध करे.मरन्तु पक्षपात राग द्वेष बडे,या आत्म श्लाघा परनिन्दा होवे ऐसा उपदेश नहीं करे. "पापकी निंदा करे परतु पापी नहीं."

(१)"विखे वणी" अर्थात विक्षेपिणि. संयम या श्रद्धासे चलित परिणामी को पुनः सद्बोध कर आत्मा स्थिर करे, सो विक्षेपणी धर्म-कथा. इसके ४ भेद(१) अन्य मत के परिचय से तथा ग्रन्थावालोकन से किसी की श्रद्धा भृष्ट हुइ होय तो जैन मत का गहन सुक्ष्म ज्ञानवता के अन्य मत की वातोंसे मिला के, प्रत्यक्ष फरक वतावे; कि जिसकी अक्कल तुर्त ठिकाणे आजावे. ऐसा वोध करे. (२) एकांत अन्यमतमें ही किसी का मन लगा होय तो, उसे उसी के मत के शास्त्रों में जो साधु ओं की कठिण क्रिया, तथा जैन मत से मिलती वातों होवे सो वता के उससे पूछे की ऐसे चलने वाले जैन है, या अन्य ? मत्यता दृष्टी से

बाता के जैन का दृढ श्रद्धालु करे. (३) जब उन की श्रद्धा जैन मत पे जमी देखे, तबउसके हृदय का मिथ्या कंद निकंद करने. न्याय प्रमाण के शस्त्रों से खुल्लम खुल्ला मिथ्यात्व का स्वरूप बता शल्योधार निर्मळ करे. (४) जिन का निर्मळ हृदय होगया हो उनके हृदय में पीछा मिथ्यात्व प्रवेश न करे ऐसा सम्यक्त्व का विस्तारसे यथा तथ्य रुचि कारक स्वरूप बता के तथा अनेक प्रश्नोत्तर कर-पक्का करे, कि वो किसीका डगाया डगे नहीं.

(३) "संवेगणी" अर्थात सं–सीधे, वेग–रस्ते चलावे सो संवेगिणी कथा, इसके ४ भेद [१]जिन२ वस्तूवोंपे संसारी जीवोंका प्रेम है, उनकी अनित्यता बतावेकि देखो! देखते २ वस्तूवोंके स्वभावमें, स्वरूप में कैसा फरक पडता है. ताजी वस्तू और बासी वस्तुकों देखनेसे मालम होता है. वस्तूका स्वभाव क्षण भंग्गूर है. अर्थात क्षण २ में पलटता है. क्यों कि जो गुण और जो स्वाद गरम में था, वो ठन्डी हुये पीछे नरहा; ऐसेही इस शरीर कों देखो-उत्पन्न हुये पीछे जवानी तक कैसी सुन्दरता में वृद्धि होती है, फिर वृद्धावस्था में कैसी सुन्दरता हीन होती है, औ शरीर नष्ट होजाता है, ऐसे सर्व जगतके सर्व पदा

र्थ जानना. क्षण २ में नवे २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं, और ज्युने विनाश होते हैं. सब पदार्थोंमें कुछ एक ही दम फरक नहीं पडता है परन्तु पडता २ ही पड ता है. और एकदम पानीके परपोटे जैसे विनाशको प्राप्त होते हैं. ऐसा पुद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे. फिर मनुष्य जन्मादि सामुग्रही प्राप्त हुइ है, उसकी दुर्लभता बतावेकी ❀ चोरासी लक्ष जीवा योनिमें अनंत परिभ्रमण करते महा पुण्योदय से सब भवभ्रमणके नाशका करने वाले=मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, शुद्ध श्रद्धा और धर्म स्पर्शनेकी समग्री, महा मुशकितसे मिली है. इसे व्यर्थ गमा देगा उसे कितना पश्चाताप करना पडेगा? और ऐसी वक्त जो काम करनेका है वो कर लिया तो कैसा आनंद पावेगा? इत्यादि घात से वैराग्य प्राप्त कर धर्ममें संलग्न करे. (२)

❀ निच्चेदर धाउ सत्तय, तरुदश वयलिंदिय सुछच्चेव सुरणिरय तिरियचउ रो, चउदश मणुये सु लद सहस्सा.

अर्थ—७ लक्ष नित्य नीगोद. ७ लक्ष इतर निगोद. ७ लक्ष पृथवी. ७लक्ष पाणी. ७अग्नि. ७ लक्ष वायु. १०लक्ष प्रत्येक विनास्पति. २लक्ष बेंद्री २लक्ष तेंद्री, २लक्ष चौरिंद्री. ४लक्ष नर्क. ४ लक्ष देव. ४ लक्ष तिर्यंच पचेंद्री; और १४ लक्ष जात मनुष्य की. यह ८४ लक्ष सब जाती है.

अल्पज्ञ जीवोंको लालच लगने से धर्म वृद्धि करेंगे, ऐसे अवसर पे देवादिक की ऋद्धि की, भोगको, वैक्रयादि शक्ति, दीर्घ आयुष्य, निरोगता, आहार वगैरे का वरणन् करे. जो विशेष और निर्दोष धर्म करते हैं, उनको उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं. और जो संसारके काम भोगमें लुब्ध रहते हैं पापरभं करते हैं वो नरक में जाके दुःख भोगवते हैं. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरेका वरणन करे क्षणिक सुखकेलिये सागरोपमका दुःख. इत्यादि रीत समजाणें से वो पापको छोड धर्म मार्ग में उद्यमवंत होवे, (३)

बन्धनानि खलु संति बहूनि। प्रेम रज्जुकृत बन्धमन्यत् ॥
दारुभेद निपुणोऽपिषंडाघिःपंकजे भवति दोषीनन्बद्ः॥

अर्थ-सर्व बन्धनोंसे प्रेम बंधन अतिही कठिणहै, क्योंकि प्रत्यक्षही देखीये! भ्रमर लक्कड जैसे कठिण पदार्थ को छेद डलताहै परन्तु कोमल कमल पुष्पमें फसकर मरजाता है!! "न पेम रागो परमत्थी बन्धा" अर्थात् जगत में प्रेमराग (स्नेह फास) जैसा और बन्धन नहीं है, प्रेम राग रूप फास में फसे जीव अपना सुख दुःख, भले बुरेका विचार नहीं करते. स्वजन मित्रका पोषण करने, अनेक आरंभ करते हैं, परन्तु उनकी स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये! जब

कू पत्नी' देते हैं, तब कितना परिवार भेला होता है, ऐसेही संकट पडे तब स्वजनकी सहायता लेने 'संकट पत्नी' देवो तो कितने स्वजन आयेंगे ✻ अजी! आने तो दूर रहे, परंतु माल खाने वाले ही कहेंगे कि क्या लड्डु किये विन नाक जाता था? इत्यादि कह उलटा अपमान करते हैं, ऐसे मतलबीयों को पोष, पाप का भारा अपने सिरले, नरक तिर्यंचादि गति में किये, कर्म के फल इकेलेही भुक्ते हैं. † पापका हिस्सा कोइ भी ले नहीं शक्ता यहांही देखीये! चोर

✻ एक मराठी कवीने कहा है:—

संपदा बहु आलीयावरी, सोयरे जमा होती त्या घरी,
गेलीयास ती रुष्ट होउनी, बंधु सोयरे जाती सोडूनी।

† दो भाइयों के आपस में बहुत प्रेम था- एकके नारु (वाले) का रोग हुवा. दूसरेने जमीकंद और हारीकाय की औषधि करी. वो मरके नरक में नेरीया हुवा और दूसरे भाइने रोग कष्ट सहा, सो अ काम कष्ट से परमा धामी देव हुवा; और अपने भाइके जीवको मारने लगा, और कहा की तेने मेरे प्रेममें लुब्ध हो, बहुत जमी कंद का आरंभ किया उस के फल भोगव! नेरीया बोला भाइ! मैने तेरे लियेही पाप किया और तूंही मुझे मारता है, यह कैसा अन्याय? यम बोला—हम न्यायान्याय कुछ नहीं समज ते है, तेरे किये कर्म के फल तुझेही भोग वने पडेंगे " करना सो भोगता."

को ही शिक्षा होती है परन्तु उसके कुटुम्ब (माल खाने वाले) को नहीं. ऐसा जाण कर्म बन्ध से डर, धर्म करे सो सुखी होवे. इत्यादि समझने से उसका मोह कम हो वो धर्म मे संलग्न करे. (५) कुटुम्ब से ममत्व कमी हुये पीछे सर्व पुद्गलों परसे ममत्व कमी कराने बोध करे. कि यह जीव अनादि कालसे नशें में बेशुद्ध हो, अपना निज स्वरूप को भूल, पर पुद्गलों के विषय त्रि योग कि रमणता कररहे हैं, परन्तु यों नहीं बिचार ते है कि-'पराये अपने कब होंगे.' इस संसार व्यवहार में अब्बी जो कोइ एक वक्त दगा देदेवे तो मनुष्य दुसरी वक्त उसकी छांहमें भी खडा नहीं रहता है. और इन पुद्गलोंने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया, कभी शुभ संयोग मिल हंसा दिया तो कभी अशुभ संयोग मिला रोवा दिया. कभी नवग्रयवेक तक उंचा चडाया और कभी सातमीं नरक के तले निगोद में दबाया. कभी सब के मनको रमणीक बनाया, और कभी विष्टारूप बना अपने उपर सब को थुकाय. ऐसी २ अनंत विटंबना इन पुद्गलो नें अपनी अनंत वक्त करी है? जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां तक पुद्गलों का जो स्वभाव है कि पुद्-पूरे (मिले) और गल-गले (बिछडे) वो क-

दापि नहीं छोडने के, फिर कौन मूर्ख बनकर उनकी संगत में लुब्ध हो अपनी फजीती करावे ?

श्रियोदोलोला विषजरसाः प्रान्तविरसाः ।
विपद्देहं महदपि धनं भूरिनिधनम् ॥
बृहच्छोको लोकः सतत सबला दुःख बहला ।
स्तथाप्यस्मिन्घोर पथिवत ताहन्त कुधियः ॥

अर्थात्—लक्ष्मी दोलना (बिजली) जैसी चंचाल है, विषय रसका परिणाम निरस है, शरीर, विप्तका घर है, और स्त्रीयों नित्य दुःख देने वाली है, अरर! तोभी अज्ञानी संसार के घोर कर्म में लुब्ध हो रह हैं ॥१॥

ऐसा जान, जो अपनी आत्मा को सुख चाहवो तो पुद्गलों का ममत्व त्यागो. और ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं, इनके स्वभाव में कभीभी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी निजात्म गुण हैं उनको पहचान, अखंड प्रीति करो!! कीवो अपने रूप चैतन्य को बना, अनंत अक्षय अव्याबाध सुख का भुक्ता बनावे, इस बोधसे मोक्ष के तर्फ श्रोताओंका मन खेंचे.

४ निर्वेगणी—अर्थात् निर्वृत्तनी कथा संवेगणी में संसारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया. और निर्वेगणी में

संसारसे निवर्तनेका स्वरूप दर्शावे. संसार में रोकने वाले कर्म हैं. इन में से कितनेक इस भवके किये इसही भव में भोगवे, जैसे-हिंसा से शूली फांसी, झूठ से-अप्रतीत, काराग्रह, चोरीसे-कैद, खोडा बेडी, व्य-भिचारसे फजीती व गर्मियादि रोगसे सडके मरना. ममत्व से कुटुम्बा दिकके निर्वाहाका महाकष्ट सहना, वगैरे. २ और भी जगत्वासी जीव जितने कर्म कर तेहैं वह सब सुखके लिये करते हैं, परन्तु सुखी बहुत ही थोडा दिखते हैं, इससे प्रत्यक्ष समज होती हैकि जिस उपाय से सुख होता है वो नहीं जानते हैं; और दुःखका उपाय कर सुख चहाते हैं, सो कहां से होय, अग्निसे शीतलता कदापी न मिल सकेगी! तैसे जो धनसे सुख चहाते हैं तो धन में सुख कहां है? विचारीये ❀ धन उत्पन्न करते (कमाते) शीत, ताप, क्षुद्या, तृषा. वगैरे अनेक कष्ट सह संग्रह करते हैं. और ज्यों ज्यों लक्ष्मीकी अधिकता होती है त्यों त्यों

❀ श्लोक—वित्तं मार्जितानां दुःख मार्जितानां च रक्षणं।
आय दुःखं व्यये दुःखं किमर्थं दुःख साधनं॥१॥

अर्थ—धन कमाते दुःख, कमाये पीछे रक्षण करनेका दुःख, और चला जायतो भी दुःख, फिर दुःखका साधन क्यों करते हो?

तृष्णाभी अधिक बढती जाती है, और "तृष्णाया परमं दुःखं" अर्थात्-तृष्णाही परम उत्कृष्ट दुःख है. अब अंतराय टूटनेसे द्रव्यकी बृद्धि हुइ तो उसके स्वरक्षण करनका दुःख, रखे मेरा धन राजा, चोर, अग्नि, पाणी, पृथ्वी, कुटुम्ब, देवतादिकसे नष्ट हो जाय, व्यय (खरच) होजाय. और रोकड में एक पाइ भी घट जाय तो शेठजी को चेन नहीं पडे, तो फिर पूर्ण नष्ट हुये तो उनके दुःखका कहनाही क्या? इत्यादि विचारसे धन दुःख काही साधन दिखता है. और कित्नेक स्त्री से सुख मानते हैं, सो पतिव्रता स्त्री तो इस कालमें मिलनी मुशाकिल है, और कूभारजा तो अनेक दिखती है. उत्तम जातीयों मे भी पतिका अपमान करती है, पतिके सन्मुख अनाचार करती है, पतिको अपने हुकम में चलाती है, और इतने परभी पर घर मे भराकर पतिके नामको और कुलको बट्टा लगाती है. येही स्त्री से सुख समजतेहो क्या? और कितनेक पुत्र से सुख समजते हैं, पुत्र के लिये सम्यक्त्व रत्न में भी बट्टा लगाके, कुदेवोंके और ढेड चमारोंके पांव पडते हैं, धर्म भ्रष्ट होते हैं, पुत्र हुवातो भी इस कालमें सपूत निकलना मुशकिलहै, परन्तु कुपूत बहुत दिखते हैं, वृद्ध मात पिताको वचन

और लट्ठी के प्रहार करते हैं,घरपे धनपे अपनी मुक्त्यारी कर राजमें झागड कर फजीत करते हैं. पुत्रका सुख भी दिख रहा है. इत्यादि किस २ का बयान करूं! "संसार मी दुक्ख पउरेय" अर्थात् संसार दुःख करके प्रती पूर्ण भरा है. यह पापके फल बताये. (२) अब देखीये! पुण्य फल—जो किसीको दुःख नहीं देते हैं, वह हमेशा निश्चिंत आराम करते हैं, और वक्तपे सब मिल उनकी सहाय्यता करते हैं. झूठ नहीं बोलतेहैं तो उनकी इज्जत पंचायती में तथा राज सभामें करते हैं. चोरी नहीं करते हैं वो बडे विश्वासु होते हैं, भंडारमें जातेभी उन्हे कोइ नहीं कटकाता है, ब्रह्मचारी हैं उनका तेज, बल, बुद्धि, निरोगाता, सर्वाधिक होती है ममत्व तृष्ण रहित हैं वह सदा सुखी हैं, "संतोषं नंदनं वनं" अर्थात्—संतोष 'नंदन वन' समान सुखदाता है देखीये! साधुजी विना धन ही बडे २ महाराजोंके पूज्य हो, निश्चित ज्ञानमें अपनी आत्माको रमण करते साधे अन्न वस्त्रसे निर्वाह करते, साद आनंदमें रहते हैं, यह सुभ कृत्यका फल इसही भवमें प्रत्यक्ष दिखता है, (३) कितनेक कर्म ऐसे हैं कि इस भवमें किये आगे फलप्राप्त होतेहैं, यहां कित्नेक जन पाप कर्म करतेभी सुखी दिखते हैं. वो सुख उनको पूर्वोपार्जित ...

कृत्योंका फल समजना चाहीये, किये पापकृर्तव्यके फल आगे जरूर भोगवेंगे, यथा दृष्टांत—अव्वल पक्कान भोगवै और फिर कांदा(प्याज) भोगवे, तो उसे पहिले पक्कानकी डकार आयगी, और फिर कांदेकी. दूसरा—प्रत्यक्ष देखते हैं:—एक पालखीमें बेठा और चार उठावे चलते हैं. पालखी वाला उतर गादीपे लोटता है और उठाने वाले पांव दाब (चांप) ते हैं, वो पांचही मनुष्य एक से होकेभी प्रत्यक्ष पुण्य पापके फल अलग २ भोगवते दिखते हैं, और जो कर्म फिर जाय तो उठाने वाले पालखीमें बैठ जाय. और बैठने वाले पालखी उठाने लग जाय! यह प्रत्यक्ष पाप पुण्यकी विचित्र रचना परभव के इस भवमें भोगवने दृष्टी आते हैं, (४) ऐसेही कितनेक ऐसे कर्म हैं कि इस भवके शुभ कृत्य के फल आगके जन्ममें भोगवेंगे, जैसे—कितनेक धर्मात्मा ओंको दुःखी देखते हैं तब मनमें शंका लाते हैं कि-जो धर्मसे सुख होता हो तो यह दुःखी क्यों? परंतु वैसे लानेका कुछ कारण नहीं है, प्रत्यक्ष देखीये! अभी कोइ औषधि लेते हैं वो लेतेही एकदम गुण नहीं कर देती है, परन्तु मुद्दतपे, पथ्य पालन से गुण कर्ता होती है. जहां तक पहिलेका विकार क्षय नहीं होगा वहां तक पहिले औषधिका गुण दर्शाना मुशकिल

है, तैसेही गत अशुभ कर्मका जोर कमी न होवे, वहांतक धर्म करणीका फल दर्शाना मुशकिल है, परंतु इतना तो निश्चय समजीये की "करणी तणा फल जाणजे, कदीय न निर्फल होय" जो जन्मतेही सुखी दृष्टि आति हैं. वो पूर्वोपार्जित पुण्यकाही फल है. ऐसेही यहांकी करणीभी आगे फल देगी. निर्वेगनि' कथाका मुख्य हेतु यहहैकि "कड्डाण कम्मा न मोरक अत्थी." अर्थात् कृत कर्म के फल अवश्य मेव भोगवनेही पडते हैं; फिर इस जन्म में देवो या आगे के जन्म में. ऐसा समज कर्म बन्ध से बचने प्रयत्न हमेशा करते रहीये.

बांचना, पूछना, और परियट्टणा कर, जो ज्ञानें पक्का किया है, उसे इन चारही प्रकारकी धर्म कथा कर उसका लाभ दूसरे को देना चाहीये.

यह धर्म ध्यानके चार आलम्बन आधार कहे हैं, इन चारही काममें धर्म ध्यानी मनको रमण कर इन्द्रियोंको विकार मार्गसे निवार. आत्म साधन अच्छी तरह कर, इष्छितार्थ सिद्ध कर सक्ते हैं.

चतुर्थप्रतिशाखा - 'धर्मध्यानस्यअनुप्रेक्षा'

सूत्र- धम्मस्सणं झाणस्स चत्तारिअणुप्पेहापण्णत्ता तंजहा- अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, एगत्ताणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा.

अर्थात्. धर्म ध्यानीकी चार अनुप्रेक्षा (विचार) धर्म ध्यान ध्याता महात्मा चार प्रकार उपयोग युक्त विचार करते हैं भगवतने फरमाया है उसी मुजब यां-हां कहते हैं. अनित्यानुप्रेक्षा. २ असरणाणुप्रेक्षा. ३ एकत्वानुप्रेक्षा. और ४ संसारानुप्रेक्षा.

प्रथम पत्र-"अनित्यानुप्रेक्षा"

धर्मास्तिकायादि ❀ षट द्रव्य रूप लोक का, द्रव्य दृष्टिसे अवलोकन करने से छहों द्रव्य अपने २

❀

नाम.	धर्मास्ति.	अधर्मास्ति	आकाशास्ति.	कालस्ति	जीवास्ति.	पुद्गलास्ति.
द्रव्य से	एक असंख्य प्रदेशी	एक असंख्य प्रदेशी	एक असंख्य प्रदेशी	अनंत असंख्या प्रदेशी	अनंत असंख्य प्रदेशी	अनंत अनंत प्रदेशी
क्षेत्रसे	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाणे	लोका लोक प्रमाणे	अढाइ द्विप प्र	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाणे
कालसे	अनादि अनंत	अनादि अनत	अनादि अनंत	अनादि अनंत	अनादि अनंत	अनादि अनंत
भाव से	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	रूपी
गुणमें	अचैतन्य, अक्रिय, गति सहाय	अचैतन्य, अक्रिय. स्थिति सहाय	अचैतन्य, अक्रिय, अवगाहादान	अचैतन्य, अक्रिय वर्तमान	अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र, वीर्य	सक्रीय पूर्ण गलन

गुण में व स्वरूपमें, शाश्वत (नित्य) हैं. परंतु इन्की पर्याय (अवस्था) स्वभाव विभाव रूप उत्पन्न होती है, और विनाशपाती है इस लिये यह अनित्य है. इन छः ही द्रव्यों का गुण पर्याय का साधर्म्य पना कहते हैं: एक अगुरु लघुपर्याय तो छःही द्रव्यो का एकसा है. अरूपी गुण पुद्गल द्रव्यको छोड बाकीके पांच द्रव्यो मे एकसा है. अचैतन्य गुण जीवद्रव्य को छोड पांच गुणों में एकसा है, सक्रिया गुण-निश्चय तो पुद्गलों में है, और व्यवहारसे जीवमें भी गिना जाता है. बाकी-के चार द्रव्य अक्रिय हैं.

और जो भिन्न गुणों की कथनी करें तो—चलनगुन-धर्मास्ति में बाकीके पांच द्रव्यों में नहीं. स्थिरगुण अधर्मास्तिमें पांचमें नही, विकाश गुण आकाशास्तिमें पांच में नहीं, वर्तना गुण कालमें पांच में नही, चैतन्य ता गुण जीव में पांच में नहीं, और मिलन विछडन गुण पुद्गल में बाकीके पांच द्रव्यों में नहीं. ऐसे यह छही द्रव्य के जो मूल गुणहैं वो अपने २ स्वामी मेंही रहेते हैं, अन्य में नहीं. धर्म अधर्म और आकाश इन तीन द्रव्यों के तीनगुन और चार पर्याय एक से हैं और इन तीन गुनोंमें काल द्रव्य भी सधर्म्य ... तो है धर्म अधर्म असंख्यात प्रदेशी और ...

है आकाश अनंत प्रदेशी और लोका लोक व्यापी है-
काल द्रव्य उप चारसे अढाइ द्विप व्यापीही गिना जा-
ताहै क्यों कि वाह्य काल का आधार चंद्रसूर्य की ग-
ती परही रहा है, जीव द्रव्य अनंत हैं, एकेक जीव के
असंख्यात २ प्रदेश हैं एक जीव शरीर मात्र व्यापक
है, और सबजीव लोक व्यापीहैं. और पुद्गल द्रव्य के
परमाणु अनंत हैं, प्रत्येक प्रमाणु वर्ण गंध रस स्पर्श
युक्त हैं.
छःही द्रव्यों निश्चय नयसे अपने २ स्वरूपमें परिण
में हुवेही हैं. हरेक द्रव्यका परिणमन गुण अलग २
है. क्योंकि जो एकसा होय तो भिन्न २ न कहवाय.

व्यवहार से जीवऔर पुद्गल दोनों परिणामी हैं, राग
द्वेष युक्त जो जीव है. उसका पुद्गल के साथ परिणम
ने का स्वभाव है सो अशुद्ध परणती से निपजता है.
धर्म अधर्म आकाश और काल इन चारों का परिण-
मन निज गुणमें होने से शुद्ध परिणमन कहा जाता
है, और जीव का परिणमन पुद्गल के संयोग से होता
है सो अशुद्ध परिणमन कहा जाता है, क्योंकि संसा-
री जीव अनादि से अशुद्ध परणति से [illegible]
सात आठ कर्मोकी वर्गणा [illegible]
पुद्गल द्रव्य के दो प्रमाणु मिल होनेसे द्वणुक, तीन

भेले होनेसे त्रणुक. यों संख्यात प्रमाणु ओं मिलने से संख्याणुक असंख्यात मिलनेसे असंख्याणुक और अनंत प्रमाणु मिलनेसे अनंताणुक कहा जाता है. इतने प्रमाणुके स्कंध को भी जीव ग्रहण कर सक्ता नहीं है. जब अभव्य जीव से अनंत गुण अधिक प्रमाणु भेले होते हैं, तब औदारिक शरीर के ग्रहण करने लायक स्कंध होता है. इससे अनंत गुण अधिक पुद्गल का स्कंध बने तब वक्रय शरीर के ग्रहण करने योग्य होता है. इस से अनन्त गुण अधिक आहारिक शरीरके ग्रहण करने योग्य होतेहै. इससे तेजक तेजसे भाषा वर्गणाके, भाषासे श्वासोश्वासके श्वासोश्वाससे मनो वर्गणाके और मनो वर्गणासे कर्म वर्गणाके पुद्गल अनंत गुणे अधिक होतेहैं. इन ८ वर्गणामेंसे औदारिक, वैक्रय, अहारिक और तेजस यह ४ बादर वर्गणा होताहै. इनमें ५ वर्ण, २ गंध. ५ रस, और ८ स्पर्श यों २० बोध मिलता है. और भाषा, श्वसोश्वस, मन, और कर्म यह ४ वर्गणा सूक्ष्म है. इसमें—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, और ४ स्पर्श यों १६ बोल पाते हैं. एक प्रमाणु में—१ वर्ण, १ गंध, १ रस, और २ स्पर्श यों ५ गुण पाते हैं. ऐसे आठ वर्गणा के दलीये आत्मा के असंख्यात प्रदेशों के साथ आकाश में महताब(रंगदार

दीवे) के प्रकाश मुजब मिलके रहे हैं *
बहुत से संसारी जीवो को वस्तुके गुण का ज्ञान बिल्कुल न होने से, और पर्याय का पलटा प्रत्यक्ष दिखने से, पर्यायों परही नित्य नित्य की बुद्धि कर-ममत्व भाव कर राग द्वेष को प्राप्त होते हैं. उनकी बुद्धि को स्थिर करनें यहां स्पष्टता से खुला विचार करते हैं.

मोह निद्रा ग्रसित जीवों को जाने, घटिका (घडीयाल) कट २ शब्द कर चेताती है कि तुम एक बजी. दो बजी. यों क्या कहते हो ? जैसे काटने मे वस्तु कमी होती है, तैसेही घटि २ (घडि २ कट) कर. सर्व वस्तू का आयुष्य कमी होता है. और कमी युष क्षय हुये वस्तुका नाश होजाता है. अर्थात् अव्वल के रूप के परमाणुओं बिखर (अलग २ सूक्ष्म रूप से हो) रूपांतर को प्राप्त हो अन्य रूप अन्य स्वभाव को प्राप्त होते हैं यह अवस्था देख, जीवों विभाव को प्राप्त होते हैं कि—वो मेरा अमुक मरगया! यह मेरा नहीं है! हाय हाय!! यह कैसा हुवा!! तब ज्ञानी चेताते हैं कि-हे चैतन्य! यह जगत्की दशा

* लाल रंग के महेताव नामक वस्तु के रूमाल्का आग्नेके संयोग से हुवा प्रकाश अरूपे आकाश का लाल रंगका बना देता है. ऐसेही—अरूपी आत्म के साथ पुद्गल सम्बन्ध होनेसे उसकी गुण मय पारिणम जाता है.

देखो चेतो! जैसे तुमारी गत कालकी सब घटिकाओं गइ और तुमारे शरीर व संपती का रूपांतर किया. रम्या को अरम्य और अरम्य को रम्य बनाया, तैसे ही आगे की रही हुइ घटिका पूर्ण होनें से क्षण मात्र में शरीर संपत्ति का क्षय होजायगा! फिर तुम कोट्यान उपाय कर गइ घटि को बुलावोगे तो वो नहीं आने *की, और पस्तावोंगे तो भी कुछ नहीं होने का. ऐसा जाण है हितार्थीयों!

स्व कार्य मद्य कुर्वीत, पूर्वा ह्नैचा पराह्नि कम् ॥
नही प्राति क्षत्त मृत्य, कृतम स्य नवा कृतम् ॥

अर्थ—काल का आज और आज का अभि धर्म कार्य करना हो सो करलो, क्यों कि काल को विचार नहीं है कि इस का काम अधुराहै!

जो बाकी आयुष्य रहा है उसे व्यर्थ मत गमावो! यह चिंतामणी रत्न तुल्य घटि काकु कर्म में व्यय (खर्च) मत करो! इस क्षणक संसार की क्षणिक

---

* गाथा—जाजा वच्चइ रयणी, णसा पडि णिवत्तइ, अहम्मं कुण माणस्म, अफला जांति राइ ओ ॥ २४ ॥

उत्तरा ध्येनजी, अ. १४

अर्थ—जो जो दिन रात्रे जाते हैं वो पीछे नहीं आते हैं, अधर्मि के निष्फल जाते हैं. (और इस के आगेकी गाथासे कहा है.) धर्मीके दिन रात सफल जाते हैं.

स्थिति कों प्राप्त हो रही क्षण में सुधारा करने का हो सो कर घडी, कों लेखे लगावो !

और जो तुम शरीरको नित्य मानते हो वो तो यह-भी नित्य नहीं है, क्षण २ में इसके स्वभावमें, रूप-दि गुणोंमें फरक पडता हुवा परोक्ष और प्रत्यक्ष भाष होता है, देखीये ! अव्वल जब जीव मनुष्य पर्याय रूप गर्भमें आ उत्पन्न होता है तब माताका रुद्र, और पिता का शुक्रका आहार कर, मांड (चांववलोके धोवण) जैसा शरीरकों प्राप्त होता है. फिर काल स्वभावसे फरक पडते २ उन पुद्गलोंमे कठिणता प्राप्त होते २ सेडा (नाकका मैल) बोर, अम्बा, रूप बन, अंगोपांग के अंकूर फुट, इन्द्रियों क छिद्र पड, बाला दिकका आगम हो, संपूर्ण शरीरके अव्ययववों कों प्राप्त होता है, जन्म समय पुण्योंदयसे सिधाही बाहिर पड,§ अज्ञान असमर्थ अवस्थाके पराधीनता के अनेक कष्ट सह, ज्ञानावस्थामें विद्याभ्यासमे; तरुणपणा प्राप्त होते-विषय पोषणकी सामग्रीयों का संयोग मिलान तरुणीयोंके प्यारे वनने, कुटुंबके भरण पोषण करने, *

---

* कित्नेक गर्वमें आडे आके कटके निकलते हैं.

*धंधेहीमें नित्य धावत २, टूट रहा जैसा रहा का टट्टू।
पार के काज प्रचे नित्य पापसें होय रहा जैसा हांडी का चट्टू
धर्म विज्ञान कछु नहीं जानत, पापही पाप मांहि मन घट्टू
हित की यान विचारत है नहीं, नाच रहा जैसा डोरका लट्टू

वृद्धावस्था प्राप्त होते-काया नगरकी खराबी होने लगी, शिर थर्राया, कर्ण कम सुने, चक्षुका तेज घटा, घ्राण झरने लगा. दंतावली नष्ट होनेसे मुख उजाड हुवा, जिव्हा लथडाने लगी, स्वर मंद पडा, जठराग्नि मंद होनेसे, पचन शक्ति घटी, जिससे अनेक व्याधियों उठने लगी, कम्मर झुकी, गोडे थके, पांव धूजने लगे, इत्यादि शरीर की शक्ति हीन निकम्मी होनेसे जिनकों प्यारे लगतेथे उनको ही खारे (खराब) लगने लगे. और एक दिन सर्वायुष्य क्षय होने से सब सज्जन मिलके उस ही शरीर कों चितामें जला भस्म करदीया, यह इस शरीरकी दशा क्षण २ में पलटती हुइ दिखती हैं. यह शरीर नित्य-सदा अभीनव रूप धारण कर्ता है, समय २ में पलटता है, बालवस्थाकों तरुणपण गिलता है, तरुण पणेंको बृद्धपणा और बृद्धपणेका काल भक्षण कर जाता है. यह मच्छ गळागल लगी है. परन्तु ऐसा नहीं समजीये

---

* छपय-मनुष्य तणो अवतार, वर्ष चाली से मीठो॥
क. डबो होय पचास साठे क्रोध पइठो ॥
सित्तर सगो न कोय. अस्सी ये नांहि सगाइ ॥
नव्वे नाग्गो होय हंसे सर्व लोक लुगाइ ॥
बर्ष आया जब सेंकडा तन मन हुवा खोंकरा ॥
पतिवृता पतिको कहे अब मरेतो सुधरे डोकरा॥१॥

कि बालका तरुण और तरुणका वृद्ध जरूर होगा. यह भरोसा नहीं है. कालको बाल युवा वृद्ध का कुछ-भी विचार नहीं है. कालरूप घट्टीको तो हमेशा चन्द्र सूर्य फिरा रहें हैं, जैसे घट्टीके दो पट होते हैं तैसे कालरूप घटीका भूत कालरूप तो स्थिर पट है, और भविष्य कालरूप चल पट है, आयुष्य रूप खील से अडके जो रहे हैं वो बचे हैं, 'खूटा छूटा के आटा हुवा' अपने देखते बहुतेका हो गया, और बाकी रहे उनका भी एक दिन होनेवाला; ऐसी इस शरीर की दशा देखते जो इस शरीरको नित्य जाण मोह मे गर्क हो रहे हैं, यह बडा आश्चर्य है.

इस शरीरका नाम उदारिक है. इसके दो अर्थ करते हैं:-(१) उदार, प्रधान, और (२) उदारा मांग के लिया, जैसे पंचायती जगा, क्रिया वर करने के लिये, पंचोंसे मांगके थोडे कालके लिये उदारी लते हैं; और उसे सिणगार के उसमे जो क्रियावर करनेका है वो कर लेते हैं. तो उनको वो जगा छोडती वक्त पश्चाताप नहीं होता है और जो क्रियावर हुये पहिले मुद्दत पूरी हुये पंचोंके सिपाइ मकान खाली कराते हैं तब रोना पडता है कि—कुछ नहीं किया; ऐसही यह शरीर

(पंच*भूत वादी के कथनानुसार) पृथव्यादी पंच भूतोंका बना हुवा शरीर रूप बाडा क्रियावर [अच्छी क्रिया धर्म करणी) करने कों मिला. जो धर्म करणी कर लेते हैं उनको मरती वक्त पश्चाताप नहीं होता है. और करणी नहीं करी है उनने शरीरको काल छोडावेगा, तब पश्चातप साथ छोडनाही पडेगा. ऐसा जाण इस क्षण भंगुर शरीरसे धर्म करणी बने जितनी शीघ्रही करलीजीये, की इसे छोडती वक्त पश्चाताप नहीं करना पडे.

जैसी शरीरकी अनित्यता है, वैसीही कुटुंबकी भी समजीये, क्यों कि मात पितादि स्वजन भी, उदारिकही शरीरके धरण हार हैं, अपने पहिले आये-माता, पिता, काका, मामा वगैरे, अपने बरोबर आये-भाइ, बेन, स्त्री मित्र, वगैरे. अपने पीछे आये-पुत्र, पौत्रादिक और भी जक्त वासी जन, देखतेर आयुष्य खुटे चले गये हैं, चल रहे हैं, और रहे सो एक दिन सब चले जायँगे, "जो जन्मा हैं सो अवश्य मरेगा"

* १ आकाशसे-काम, क्रोध, शोक, मोह; भय, २ वायसे-धावन, वलण, प्रसरण, आकूचन, निरोधन, ३ अग्निसे-क्षुधा, तृपा, आलस, निद्रा, मैथुन, ४ पाणीसे-लाल, मूत्र, रक्त, मज्जा, रेत, ५ पृथ्वीसे-हड्डी, नाख मांस त्वचा, रोम. यों ५ भूतसे २५ तत्त्व हुवे कहते हैं.

इस लिये कुटुम्ब परिवार को भी अनित्य समजीये.

जैसा कुटुंब अनित्य है, तैसे धनभी अनित्य है, इसे 'दोलत' कहते हैं, अर्थात् आना और जाना ऐसी दोलत (आदत) इस में है, तथा पोशकको क्षण में हसाना और क्षण में रूलाना, ऐसी दो आदते हैं. यह किसीके पास स्थिर नहीं रहती है* "जर जोरु और जमीन, किनकी न हुइ यह तीन" जरमन कि तीजोरीयों में, खुब ऊंडे खड्डे में, या नग्गी समशेरों के पहरे में भी खूब वंदो वस्तके साथ रक्खी, तो भी नहीं रहनेकी, पुण्य खुटेसे हाथ से रक्खा हुवा धन रूपांत पाके कंकर कायले पाणी या सॉप बिच्छु जैसा दिखने लगता है, ऐसी लक्ष्मी अनित्य है.

तैसे घर भी अनित्य है:—लक्कड मट्टीके संयोग से बना उसे अपना मान के बैठे हैं, येही जीर्ण होने से बिखर जायगा केइ घर या प्रमादी नवीन वसते हैं, केइ उजड होते हैं, विनश ते हैं यह प्रत्यक्ष अनित्यता दिखाती है. ऐसेही उपभोग (एक वक्त भोगवने

* पिताने खुशी में आकर पुत्री से कहाकि-'लक्ष्मी' इधर आ., तब पुत्री गुस्से में आकर बोलीकि-इस नामसे मुझे कदापि नहीं बुलाइये. क्योंकि मे एक दिनमें अनेक मालक (पति) करने वाली लक्ष्मी जैसी नीच नहीं हूं!

में आवे अन्न पुष्पादि) और परिभोग (वारंवार भोगवने में आवे वस्त्र भूषणादि) यह भी अनित्य हैं-क्षणिकक है. सर्व वस्तु उत्पन्न हुइ के उनकी पर्याय में फरक पडना सुरू होता है: विनाश कालतक फरक पडते २ उसका स्वरूप ही और हो जाता है. यह अनित्यता की प्रत्यक्षता है.

प्रत्यक्ष देखते हैं कि,-जीव आता है तब बाह्य रूप में कुछभी साथ लेके नहीं आता है, उत्पन्न हुये पीछेही शरीर संपत्ति आदि संजोग मिलता है, और फिर वोभी 'पंच समवाय*' प्रमाणें हीन होते२ सब यहां हीजि प्रलय पाता है, या रह जाता है, और आप आया था वैसाही, इकला * जीव आगे को च

---

* काल-स्वभाव भवितव्य-कर्म और उद्यम, इन ५ समवाय के संयोग सें सर्व कार्य होते हैं.

* संपतही गडी छांडी । सुंदरही मांडी छांडी ।
रसोइ चडी छांडी । स्वप्न सो होगयो ॥
ठाडे दास दासी छांडे । घोडे घांस खाने छांडे ।
यार आस पास छांडे । अपने मते गयो ॥
बुढे मात पिता छांडे । भाइ बिल बिलाट छांडे ।
बेटे अरडाट छांडे । सब को दुःख देगयो ॥
देवी दास अंत समय । एकहू न आयो साथ ।
देखो भैया अपनो कियोसो साथ लेगयो ॥१॥

ला जाता है ऐसा तमाशा एकही वक्त में पूरा नहीं होता है परन्तु अनंत कालसे येही रीत चली आती है, और चली जायगा मिलना और बिछडना येही पुद्गलोंका धर्म हैं, सोही बना रहेगा! अच्छा का बूरा और बुरा का अच्छा; नवा का ज्यूंना और ज्यूंनाका नवा; कोइ प्रत्यक्षता से और कोइ परोक्षता (छुपी रीत) से पूद्गलोंका रूपांतर होनेका जो स्वभाव है, वो हुवाही करता है, यह तमाशा देखते हूये भी इसे नित्य मान लुब्ध हो रहे हैं, इससे ज्यादा आश्चर्य और कोनसा होय?

मूढ प्राणीका आयुष्य ज्यों ज्यों हीन स्थिती कों प्राप्त होताहै, त्यों त्यों ममत्व और पापकी वृद्धी करता है, और उनके फल भुक्तने आपभी रूपांतर

माताही पुकारे पूत । रोवत है छाती कूट ।
बापहू कहत मेरो । नंदन कहां गयो ॥
भाइ हूं कहत मेरी । बहां आज दूर भइ ।
बेन कहत मेरो वीर दुःख देगयो ॥
कामनी कहत मेरो सीश सिरताज कहां ।
इतने के देखत आप एकलो वहगयो ।
देवी दास अंतसमय एकहून आयो साथ ।
देखो भैया अपनो कियासो साथ लेगयो ॥१॥

पाके रौरव नरक में गिरता है. तब असाह्य दुःख से घबराकर रोता है.

भाइ! अग्नि स्नान से शीतलता, और विष भक्षणा से अमरत्व चहाते हैं, तैसेही आत्म घाती जन पुद्गल के संग से सुख चहाते हैं. इन अज्ञको कैसे समजावे!

और भी अनित्यताके दर्शानेके लिये देखीये—

(१) हमेशा श्यामको वृक्षोंपे पक्षियोंका समोह आ जमता है, जिस डालपे आप बैठे, वहां दुसरे पक्षिको बेठने नहीं देते हैं, क्यों कि उस वृक्षको अपना मान लिया है परन्तु, वोही पक्षियों सूर्यका प्रकाश होते दशोदिश उड जाते हैं तब उस झाडका पत्ता भी उन्ह के साथ नहीं जाता है. तैसे ही देह वृक्षपे जीव पक्षियों चार गतियों में से आ बैठे हैं. कालरूप सूर्योदय होते सब भग जायंगे, देह यहांइ रह जायगा

(२) वादीगर (इन्द्र जालीया) की डुमडुमीका शब्द सुणतेही चहुदिशा से मनुष्य बृंद उलट आते हैं, बाजी समेटी के सब दशोदिश भग जाते हैं. और इकेला बाजीगर दंड भंड ले आप ने रस्ते लगता है. तैसेही जीव बाजीगरकी, पुण्य सामग्री देखने कुटुम्बादि मिले हैं. पुण्य खुटे सब रस्ते लगेंगे, और जीव

इकेला चला जायगा.

(३)मेला-यात्रादि में चौदिशा में मनुष्यों का समागम होता है वांही समयानंतर शून्य अरण्य (जंगल) रह जाता है.

(४) लग्नादि उत्सवके प्रसंग में, स्वजानादि समुह जमता है; और उत्सव निवृतते घर धणीही रह जाते है.

(५) संध्या [श्याम] की वक्त बहुधा आकाश में संध्याराग (विचित्र रंग) का दर्शाव होता है, और क्षणंत्र में अन्धकार फेलजाता है.

इत्यादि अनित्यता दर्शानेके अनेक बनाव हमेशा बनते हैं. और देखते हैं, परं मोहकी धुन्धी में मुग्ध बने कौन विचार करें.

एक समय राज्यरूढका महोत्सव की धामधूम लग्नका उत्सहा दृष्टी पडता है; और उसी स्थल उस ही समय पुद्गलोंका रूपांतर होनेसे मृत्युआदि निपजनेसे हाहाकार मच जाता है! स्मशान गमनकी तैयारी होती को क्या नहीं देखते हैं? एसे २ अनित्यता वतानेके जगत् में थोडे साधन हैं क्या?

ज्यादा क्या कहुं, जिन २ परमाणुओ पदार्थों कर तेरे शरीरकी रचना हुइ, और पोषणता होती है,

वहीं प्रमाणुं गये कालमें तेरे शत्रु बन तेरे धारण किये हुये अनंत शरीरोंका नाश किया था, अब तूं उनके साथ अत्यंत प्रेम करता है. और वक्त पडे येही तेरे शरीर के घातक बन जायँगे, मतलबकी पुद्गल संयोग सेही सम्बन्ध जुडता है. और संयोग सेही विखरता है.

श्री भगवतीजी सूत्र में 'अविचय' मरण कहा है, की जो जगत् के सर्व पदार्थका आयुष्य क्षण २ में क्षय करता है, जैसे अंजली(हाथके खोबे)में लिया हुवा पाणी बूंद २ कर कमी होता है, तैसेही सब पदार्थोंका आयुष्य घटता है. *

और भी जैसे १. स्वप्नकी सायबी, २ मेघपटलों (बादलों) का समोह, ३ विद्युत (बिजली) का चमत्कार, ४. इन्द्र धनुष्य, ५. मायवी सायबी, वगैरे

हरीगीत छन्दः

* बहू पुण्य केरा पुंज थी शुभदेह मानव नोमल्यों ॥
तो ए अर भव चक्र नो आंटो नही एके टल्यो॥
सुख प्राप्त करतां सुख टळेछे, नेक एलक्षे लहो ॥
"क्षिण२ निरंतर भाव मरणें" का अहो राची रहो॥१

कवी रायचन्द्र.

अनेक पदार्थ क्षणिकता के सूचक हैं उनको आँखोसे देख हृदय में विचार सोच समज मानू ये मेरे सद्बोध कर्ता गुरूही हैं. और समजा रहे हैं कि है चैतन्य अब चेत! चेत!! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लगाके देखकि—कपिल केवली ने फरमाया है "अधुव असासयं मी, संसारंमि दूख पओरए" अर्थात् यह अध्रुव [अनिश्चल] अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार है, इस में रहे जो ममत्व मूरछा करते हैं, वोही दुःखी होते हैं, जब जीवोंके देखते पदार्थों का नाश होता है तो जीवकोही पश्चाताप होता है कि हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ. और पदार्थ छोडके जीव जाता है तबही वोही रोता है कि हाय इस सायबी को छोड अब में चला. न की वो पदार्थ रोयंगे कि मेरे मालक कहां गये. क्यों कि उनके मालक वणने वाले अनेक वैठे हैं.

ऐसा समज है सुखार्थी धमार्थी जीवो! इस अनित्यानुप्रेक्षाके सत्य विचार से अनित्य अशाश्वत वस्तुपें से ममत्व त्याग, निजात्म गुण ज्ञानादी ली रत्न नित्य शाश्वत अक्षय अनंत उन में रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र-"असरणाणु प्रेक्षा"

स्याद्वाद मतमें हरेक तर्फ अनेकांत दृष्टीसे देखा जाताहै, निश्चयमें तो कोइ किसीकों सरण का दाता आश्रय का देनें वाला नहीं है, क्योंकि सर्व द्रव्य अपनी २ शक्ति के बलसे ही टिक रहे हैं इस सबबसे कोइ किसीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार द्रष्टीसे फक्त निमित मात्र यह जीव दुःख कष्ट उत्पन्न हुये अन्यके शरण की अभिलाषा करते हैं; मेरी वस्तुका नुकशान न होय. या मेरेपर किसी प्रकार का दुःख आके नहीपडे, इस लिये कोइ तारण-शरण आश्रय कादाता होय उनका शरण ग्रहण करुं, की जिससे मुझे किसी प्रकार का दुःख नही होय. इत्यादि विचार से अन्मन्य अनेक का शरण ग्रहण करता है, परन्तु यों नहीं विचारता है कि जिस दुःख से बचने में आश्रय-शरण ग्रहण करता हुं वो खुदही इस दुख से बचे हैं क्या? क्यों कि जो आप दुःखसे बचे होगे तो वो दुसरेकोभी बचा सकेंगे, और जो आपही की रक्षा नहीं कर सके तो अन्यकी क्या करेंगे. फिर व्यर्थ उनके शरण ग्रहण करनेंमें क्या सार है, अब विचारिये! अपन जिन २ का शरण ग्रहण कर ते हैं, वो योग्य है या अयोग्य,

ऐसा प्रथक २ (अलग २) विचारिये.

हे जीव! तुं इस शरीर करके तेरा रक्षण चहाता है, तो देख! यह शरीर पुद्गल पिंड क्षण २ में नष्ट होता है. आधि व्याधि उपाधि कर भरा हुवा है. व.र म्वार रोगो कर ग्रासित, जरा कर पिडित, और मृत्युका भक्षक बनता है. यह अपनी रक्षा नहीं कर सक्ता है तो तेरी क्या करेगा. इस लिये शरीर को तरण शरण मानना व्यर्थ हैं, जो तूं तेरे परिवार और मित्रको शरण दाता समजता होय तो भी तेरी भूल हं, निर्मोह बुद्धिसे देख. जो तूं द्रव्योपार्जनमें कुशल सबकी इच्छा प्रमाणें चलने वाला हुवा तो माता पिता कहेंगे हमारा पुत्र रत्न हैं, भाइ कहेगा मेरी वाहां है, बेहन कहेगी—मेरा वीरा हीरा है, स्त्री कहेगी मेरे भरतार करतार (परमेश्वर) हैं. इत्यादि सर्व कुटुम्ब हुकम हाजीर रहे, जी ! जी ! करते हं. और जो मुर्ख बेकमावू होय तो; मात पिता कहे—पेटमें पत्थर पडा होता तो नीम (मकान के पाये) में देते तो काम आता,! भाइ कहे—मेरा वैरी है. बेहन कहे—किस्का भाइ लाइ (गरीव), स्त्री कहे—मोल्या है (मोल लिया गुलाम है) इत्यादि सब सज्जनों की तर्फसें अपमान और दुःख प्राप्त होता है. देखीये! स्वार्थ लुब्ध मानाने त्रस-

दत्त चक्रवर्त्ति को मारनेका उपाय किया, कन्क रथ राजा जन्मते पुत्रोंको मार भरत, बाहुबली दोनो भाइ आपसमें लडे. कोणिक कुमरने अपने पिता श्रेणिक राजाको पिंजरेमें कब्ज किया, दुर्योधनने सब कूटुम्बका संहार किया. और सूरी कंता राणीने प्यारे पति प्रदेशी राजाके प्राण हरण कर लिये. ऐसे २ प्राचीन अनेक दाखले हैं. और वर्तमान में बणाव वण रहे हैं. ऐसे मतलबी जन शरण भूत कदापि न होने वाले.

शरीर, धन, कुटुम्ब इत्यादि जिनको प्राणसे भी अधिक प्यारे समज रहा है, चिंतामणी तुल्य मनुष्य जन्म जिसके लिये गमा रहा है वो भी तारण शरण न होवे तो, अन्यकी क्या कहना. मतलबकी विकराल काल बेतालकी फांस में फसे हुये उस फास से बचाने कोइ समर्थ नहीं हैं कालबली बडा जबर है, नरेंद्र चक्रवर्ति आदि राजा, सुरेंद्र शक्रेंदादि देव. बडे २ बलिष्ट दैत्य जैसा शस्त्रधारी क्षत्रियों, वेद पाठी ब्राम्हणो, श्रीमंत साहुकारों, जमीदार जागिरदारों, सहश्र विद्या के साधक विद्याधरों (खेचरों) सिंहादिक वनचरों, सर्पादि उरचरों घर वस्त्र, भूषण, इत्यदि सर्व पदार्थों के पीछे काल बेताल लगा है, कालसे ज्यादा बलिष्ट इस संसारमें कोइ भी नहीं हैं, कालसे बचाने जैसी

कोइ घर, भूंयारा, गुफा पहाडादि कोइ स्थान नहीं. की जहां छिप जाय, अमृत और अमर वेल, वगैरे नामधारी बूंटी औषधीये, भी काल रोग मिटाने समर्थ नहीं, तो अन्यकाक्या ? रोहणी प्रज्ञप्ती आदि विद्य, घंटा करणादी मंत्र, विजय प्रतापादी यंत्र, रस सिद्ध आदी तंत्र, में भी कालसे बचाने की शक्ति नहीं, सत्घनीआदि कोइ शस्त्रभी नहीं, जिससे कालको डरावे तभी गणो ! काल अजब शक्ति वाला है, पाणीमें गलता नहीं, अग्निमें जलता नहीं, हवामें उडता नहीं, वज्रमय भींतसे भी रुकता नहीं, यम जैसे पराक्रमीसेही दबता—डरता नहीं है काल बडावे विचार है-बाल, वृद्ध, तरुण, नव परिणत धनाढ्य, गरीब, सुखी, दुःखी अनेकों के पालने वाले, और अनेकोंके संहारने वाले ऐसे २ मनुष्योंको, पशुवोंको, दिपवाली आदी तेहवारोंको उंच नीच ग्रहका, काम पूरा नहीं हुवा, उनका, रात्री दिन भोगमें मशगुल उनका, इत्यादि किसीका भी जरा विचार नहीं है, कैसा ही हो झपाटेमें आयाही चाहीये कि तुर्त गट काया, अनंत प्राणीयोंका अनंत वस्तूओंका भक्षण अनंत वक्त किया, तोभी कालका पेट नहीं भराया, साक्षात् अग्नि सेभी अधिक सदा अलती महा विकराल राक्षसही हैं, महा

प्रतापी है-बडे २ सुरेन्द्र, नरेंद्र, सइकी दृष्टी मात्र से अत्यंत त्रसा पाते हैं. भान भूल जाते हैं, आर्त रौद्र ध्यान ध्याने लगते हैं, उनका भी मुलायजा कालको नहीं हैं. यह तो फक्त अपने मतलब साधनेंकी तर्फही दृष्टी रखता है. एसे निर्दयी निर्लज्ज काल बेतालके फा सः में पडे जीव जो अन्यके शरण से सुख चहाते हैं, वोमृगजल से प्यास बुंजाना चहाते हैं, वांझा का पुत्र खिलाना चहाते हैं, या आकाश पुष्पोंसे श्रृंगार सजना चहाते हैं, तैसा निष्फल काम हैं.*

इस काल की रचनाका तो जरा विचार करो, यह काल हरेक बस्तुका एक वक्त आहार कर पीछा तुर्त निहार कर देता है, और तुर्त पीछा उसके भक्षणेका लालपी हो उसके पीछे पडता है. सो दूसरी वक्त उसका पूरा भक्षण नहीं करे वहां तक उसका क्षण २ में क्षय करताही रहता है, और अचित्य खाजाता है और पीछे बाकी वोही हाल; एसे आहार निहार करते २

---

* गाथा—जस्सत्थी मच्चूणं सक्ख, जस्सत्थी पलायणं, जो जाणं इन मरीस्सभि, सोहूं कंक्खे सुहेसिया,

उतराध्ययन,

अर्थ—जिसकी कालसे प्रीती होय, भग जाणेकी शक्ती होय, अथवा भरोसा होय के मैं नहीं मरूंगा. वोही सुख सूता रहता है.

अनंतानंत समयवीत गया, तो भी यह तृप्त नहीं हुआ और नकभी होगा.

अपने स्वजनका मृत्यु देख मूर्ख फिकर करता है. परन्तु यों नहीं समजता है कि—मेभी काल की दाढ में बैठा हूं. जराक मस्का लगने की देर है कि इस जैसे हाल मेरे भी होंगे!!

काल के विचार मात्र सेंही बडे २ इन्द्र नरेन्द्र निजस्थान च्युत हो नीचे पडते हैं. तो बेचारे मनुष्य जैसे कीडे की क्या कथा.!

एक मनुष्य बन में सूता था, की वहां रात्री कों अचिंत्य दावा नल (आग) लगी, और उस मनुष्य को घेर लिया. उष्णता लगते ही तुर्त जागृत हो एक वृक्षप चड बैठा, और चारहो तर्फ जंगली जानवरों कों जलते देख हँस ने लगा. की यह जला! यह मरा! परंतु मूढ यों नहीं समजता है कि—यह वृक्ष जालाकी मेरीभी येही दशा होगी. अर्थात-जैसे जगत् जीव मरतें हैं वैसेही एक दिन अपन भी मरेंगे! इसमें संशयही नहीं!!

बाप, दादे, गये वोभी इस धन, कुटम्ब कर अपना रक्षण नहीं कर सके, तो तुम कौन सामर्थ्य वन्त हो जो बच सकोगे.

रहे तो निश्चय समजीये कि सब सज्जन मुह ताकनेही खडे रहेंगे. सब संपति* निजस्थान हीं पडी रहेगी, और चित मुनी के कहे मुजब, एक दिन सब की दशा होगी:—

जहेह सिहो व मिअं गहाय, मच्चुनरंणेइहू अंत काले-
णतस्स माया व पियाव भाया, कालंमि तस्स सहरा भवंति

उत्तरा० १३

अर्थात्—जैसे बनमें फिरते हुये मृग [हरिण] के जुथ मे से सिंह (शेहर) एक मृग को पकड के ले जाता है, तब सब हिरणे थर्रर २ कांपते अपनी २ जान बचाते भग जाते हैं. तैसे ही कुटुंबो के वृंद में रहे हुये मनुष्य को काल सिंह ले जायगा. तब सब मुह ताकते ही खडे रहेंगे. परं कोइ भी बचा नहीं सकेगा.

तैसेही आगे को तुम्हरी सहाय करने तुम्हरी संपति में से कुछ भी साथ न आवेगा. कहा है—

*—कंचनके आसन, सुखवासन के कनक पलंग सब इनामत-घरे रहे॥ हाथी हट शालनमे, घोडे घुडशालनमे, कपडे जामदानिमे, घडी बंधे ही रहे,॥ बेटा औ बेटी दोलतका पार नहीं, जवारेके डब्बेपे ताले ही जडे रहे,॥ देह छोड जिगे जब हो चले दिगम्बर, कुलके कुटुम्ब सब देखतेही खडे रहे. ॥ १ ॥

मान रहाथा. और वन में सच्चे सिंहके दर्शन और सद्बोध से वकरीयों का सङ्ग छोड स्वेच्छारी एकल हुवा. ऐसेही-जीव अनादि कर्म सम्बन्ध से अपना निज स्वरूप भूल, कर्म जनित पदार्थ शरीर संपत्ति आदिको अपनी समज रहा है, जब सद्गुरु के सद्बोध का सम्बन्ध से अपना आत्म भान प्राप्त हुवा, तब जानने लगा कि मै चैतन्य, आधि व्याधि उपाधि कर के रहित हूं; यह शरीर, संपत्ति, तीनही दुःखों से व्याप्त है, मैं निराकार हूं, यह साकार है; मैं शुद्ध शुची हुं, अशुचि अशुद्ध है; मैं अजरा मर हूं, यह क्षणिक विनाशी है; मैं अनंत ज्ञानादि गुण युक्त चैतन्य हूं, यह जड है; इत्यादि किसी भी प्रकार से इनका मेरा स सम्बन्ध नहीं मिले. इनके प्रसंग कर मैंने-४ गत, २४ दंडक, ८४ लक्ष जीवा योनि में, उच्च नीच जाति स्थान में अनंत विटंबना भुक्ती है. अब इनका संङ्ग छोड मुझे एकत्वता धारण करना योग्य है. ऐसे विचार से सर्व सम्बन्ध परित्याग कर वीतराग दशाको अवलम्वे.

जैसे वद्दलो के फटनें से सूर्य स्व प्रकाश को प्राप्त होता है, तैसेही कर्म पुद्गल दूर होनें से आत्म के निजगुण ज्ञानादि प्रकाशित होते हैं, और चैतन्य

अपना स्वरूप पहचानता है.

एक त्वानु प्रेक्षक विचार करे कि—में कौन हूं. एक हूं या अनेक हूं, दीखने रूपतो एकही शरीर का धारक हूं. ❀ परन्तु जो एक मानू तो—मातापिता क है मेरा पुत्र, क्या में पुत्र हूं? बेहन कहे मेरा भाई तो क्या में भाइ हूं? स्त्री कहे भरतार. तो में भरतार हूं? पुत्र पुत्री कहे पिता, तो क्या में पिता हूं? यों कोइ काका, कोइ बाबा, कोइ मामा, भाशा, व्याइ, जमाइ ऐसे २ सब मेरा २ कर मुझे बोलाते हैं; अब विचार होता है कि में कौन हूं? और किसका हूं? हा! आश्चर्य! मेरा पत्ता लगना हीं मुझे मुशकिल हुवा! में एक हो कितने नाम धारी बना. कितनेका हुवा. परंतु जो निश्चयात्मक हो विचारता हूं तो—यह सब कर्मोंके चाले हैं; में न पुत्र हूं, न पिता हूं, न कोइ

❀ सवैया—केश शीश जुड भाल भ्रहणी पलक नैन ।
गोलक कपोल गंड नाशा मुख श्रौन है ॥
ठोडी होट दाढ दंत रसना मसुढा तालु ।
चिंबुका कांठिका कंठ कंध कर भौन है ॥
कॉख कटि भुजा नाडी नाभी कुच पेट पीठ ।
अंगुली हथेली नख जंध स्थल जौन है॥
नितंब चरण रोम एते नाम अंगनके ।
तामे विचार नर नेरा नाम कौन है? ॥१॥

अन्य हूं. न मेरा कोइ है, और न मैं किसीका हूं' जो मैं इन नाम रूप होता तो सदा इसही रूप में बन रहता. जो मैं पुरुष हूं? ऐसा निश्चय करुंतो, अन्य जन्म मैं स्त्री हो पुरुष संभोगकी क्यों इच्छा करी? और जो स्त्री हूं ऐसा निश्चय करुंतो अन्यजन्म में पुरुष हो स्त्री भोग कों क्यों चाहुं? इत्यादि विचार से यह सब मिथ्या भाव विदित होता है, मैं मोह नशे में बेशुद्ध हो, कर्म संयोग से विकल हो भूल राह हुं. जैसे-नाटाकिया नाटक शाळा में स्त्री पुरुषादि नाना प्रकारके रूप धर नाचता है. जैसा रूप बनाता

गाथा–एगया खत्तीओ होइ, तओ चंडाल बो कसो
तओ कीड पयंगोया, तओ कुंथु पिपीलीया॥१॥
एव मवट्ट जोणी सु, पाणीणो कम्म कि विसा,
ननि वज्जंती संसारे, सव्वट्ठ सुव खात्तिया ॥१॥

उत्तरा० अ० ३.

अर्थ–जैसे क्षत्री राजा महा परिश्रम से भी पूरा राज्य मिलाके त्रप्त नहीं होता है. तैसे जीवभी कोइ वक्त क्षत्री हुवा, कोइ वक्त चंडाल (भंगी) हुवा, कोइ वक्त बुकस (वर्ण शंकर) हुवा, कभी कीडा तो कभी पतंगीया. इत्यादि योनिमें कर्मोंके वस हो प्राणी परिभ्रमण करते. नाना (अनेक) प्रकार के रूप धरतेभी सर्व अर्थ प्राप्त करने समर्थ न हुवा. हा इति खेदाश्चर्य!

है वैसाही भाव हूबाहू भजता है. परन्तु जो अंता दृष्टी से देखोतो—बोनट वैसा नहीं है; राजा नहीं, राणी नहीं, संयोगी नहीं, वियोगी नहीं, इन सब भावों से अलग ही है; फक्त प्रेक्षक को देखाने हँसा ने, फसाने, रुलाने, अनेक भाव दर्शाता है, और अंतर में वो सब से अलग है. तैसेही—संसार रूप नाटक शाळा में चैतन्य नट कर्म संयोग अनेक उंच नीच एकेंद्रीय से पचेंद्री तक, चंडालसे चक्रवर्ति तक रूप धारण कर, उस रूप प्रमाणें अनेक योग्य कर्म किये. और आखीर एकही कायम नहीं रहा! सब निज २ स्थान रहगये, और चैतन्य अलग ही राहा. यह देखीये कर्मोंका तमाशा, अब जरा कर्म रूप नशेका उतार आया दिखता है, जिस से थोडा भान आया, और विचार होने से कर्मों की विचित्रता समज भेद विज्ञानी बना हैं, तो अब विभाव को त्याग स्वभाव में रमण कर.

देख ! जब तू आया (माताकी योनिसे बाहिर पडा) था तब इकेलाही था. और तेरे देखते २ अनेका गये. वो इकेलाही गये. वैसे तू भी इकेलाही जायगा, अशुभ कर्म के फल भोगवने नरकमें, और शुभ कर्म के फल भोगवने स्वर्गमें गया तो इकेलाही गया ! ध

नवस्त्र, मकान, भोजन भूषण, वगैरे का हिस्सा (पांती) लेने वाले अनेक स्वजन हैं. परन्तु कृत कर्मके फलो का हिस्सा लेने वाला कोइ नहीं है.

इस जगतमें परिभ्रमण करते हुये अनंत जीवों भेसे रस्ते चलते२ थोडे दिनोके लिये स्त्री कोइ बन जाता है- कोइ पुत्र हो जाता है, ऐसे २ अनेक सम्बंन्ध करते हुये पुद्गल परावर्तनके फेरेमें किदर के किदर ही- चले जाते हैं. फिर उनका पत्ताभी लगना मुशकिल होजाता है. ऐसेही हे जीव! तूं भी केइका पिता, केइ का पुत्र, केइकी स्त्री, इत्यादि बन आया, और छोड आया. वो तुझे पहचाने नहीं, तू उन्हे पहचाने न- नहीं. ऐसे २ विचार भी तेरे समक्ष रजु होते तेरा एकत्वपणा तुजे आप(मालम)नहीं होताहै. यह अश्चर्यहै!

हे आत्मान्! सर्व जगत के पदार्थ तेरेसें भिन्न (अलग) हैं, और तूं उनसे भिन्न है. तेरे उनके कुछभी सम्बन्ध नहीं हैं, इस लिये अब तूं तेरे निज स्वरूप को पहचान कि तूं शुद्ध है, सत्य है, चिदानंद है, सिद्ध समान है. हमेशा इसही ध्यान में लीन हो कि इस रूप बने.

चतुर्थ पत्र- "संसारानुप्रेक्षा"

संसारके स्वरूपका विचारे, सो संसारनुप्रेक्षा

'संसराति इति संसारः" जिसमें परिभ्रमण करना पडे सो संसार चार तरह का है; उन्हे चार गति कहतेहै-गतागत (आवा गमन) कर सो गति चारः-

१ नरक गति न=नहीं×सूर्य. अर्थात् अन्ध कार से भरी हुइ अन्धकार मय सो तम % गति या नरक गतिके ७ स्थान अधो (नीचें) लोकमें एकेक के नीचे हैः-(१)* रत्न प्रभा—श्याम वर्णके रत्नमय भयंकर सर्व स्थान. २ शर्कर प्रभा=तरवारसेभी अतितीक्ष्ण सर्व स्थान हैं. (३) 'बालु प्रभा'=भाड भूंजके भाडका बालु (रेती) से भी अत्यंत उष्ण सर्व स्थान. (४) पंक प्रभा रक्त, मांस, पीरू के कीचड मय सर्व स्थान. (५) धूम्म प्रभा—राइ मिरची के धूम्र [धूंवे] से भी अधिक तीक्ष्ण धुम्रमय सर्व स्थान. (६) तम प्रभा=भाद्रव की घटा छाइ अमावस्या की रात्रि के भी अत्यंत अन्धकार मय सर्व स्थान. [७) तम तमा प्रभा-घोरा नघोर अन्धारे मय सर्व स्थान. यों सातही नरकके गुण निष्पन्न नाम (गोत्र) हैं. इन ७ नरकके१२ आंतरे (खाली जगा,) ४९ पांथडे(नेरीये रहनेकी जगा,) ८४

% बहुत शास्त्रमें नरकका तम गति भी नाम हैं,

*घम्मा, वंशा, शीला, अंजाना, रिठ्ठा, मग्घा, मघिवाइ यह ७नर्क के, नाम हैं और ऊपर अर्थ युक्त के है सो गोत्र है.

लक्ष नरक वासे (उत्पति स्थान) हैं. इनमें रहे समदृष्टी जीव तो स्वकृत कर्मोदय जाण, सम भाव से दुःख भोगवते हैं; और मिथ्या दृष्टी हाय त्राहायकर दुःख भोगवते हैं, नरक में तीन तरह की वेदनः—१ प्रमाधर्मी [यमदेव] कृत, २ आपस की, और ३ क्षेत्र वेदना.

१ प्रमा धामी १५ जातके हैं:—'अम्बे'-नेरीयको आमकी तरह मशलते हैं, २ अम्बरसे'-आम का रस निकाले त्यों रक्त मांस हड्डी अलग २ करते हैं. ३ 'शाम'=प्रहार करते हैं. ४ 'सबल'=मांस निकालते हैं. ५ 'रुद्र'=शस्त्रसे भेदते हैं. ६ 'महारुद्र'—कसाइ की तरह टुकडे २ करते हैं. ७ 'काल'—अग्निमें पचाते हैं. ८ 'महाकल'— चिमटेसे चर्म मांस तोडते हैं. ९ 'असि पत्र'—शस्त्रसे काटते हैं. १० 'धनुष्य'—शिकारी की माफिक धनुष्य बाणसे भेदते हैं. २१ 'कुंभ'—कुम्भीमे पचाते हैं. १२ 'वालु'—भाड भूंज माफिक उष्ण रेतीमें भूंजते हैं. १३ 'वीतरणी' अत्यंत उष्ण रससे भरी वीतरणी नामक नदीमे डालते हैं. १४ 'खरसर' शस्त्रसेभी अति तीक्ष्ण पत्रवाले शामली वृक्षके नीचे बेठा पत्ते डालते हैं. १५ 'महाघोप' अन्धेरी कोटडीमें ठसोठस भरते हैं. यह नाम गुण कहे. परन्तु इन शिवाय औरभी अनेक तरहके दुःख कृत कर्मके

वैसेही फल देते हैं. जैसे मांस भक्षीको—उसीका मांस तोडके खिलाते है. मदिरा पानीको-तरु आ गर्म कर पिलाते हैं. पर स्त्री भोगी को-लोहकी उष्ण पुतली से संगम कराते है. हिंसक को जैशी तरह हिंशा करी हो वैसी ही तरह उसे मारते हैं. इत्यादि अनेक कष्ट- दुःख नेरीयों को देते हैं. वो बेचारे पराधीन हो आक्रंद करते हुवे सहन करते हैं.

२ आपसकी वेदना तीसरी नरकके आगे, यम (परमाधामी) नहीं जा शक्ते हैं. वो नेरीये अनेक विकराल भयंकर खराब जंगली रूप बानके, आपसमें लडते हैं, मारते हैं, हाय त्राहाय करते हैं, ज्यों नवा कुत्ता आनेसे दुसरे कुत्ते उस पे टूट पडते हैं, वैसा.

३ क्षेत्र बेदना १० प्रकारकी हैः—१ अनंत क्षुधा=नर्कके एक जीवको सर्व भक्ष पदार्थ खिला देवे तो भी तृप्ती नहीं आय, और तावे उम्मर खाने एक दाणा नहीं मिले. २ अनंत तृषा+सर्व जगत्का

+ पहिली से तीसरी नरक तक एक शीत योनि, चोथामें शीत योनिये बहुत उष्ण योनियो थोडे, पांचमीमे उष्ण योनि ये बहुत शीत योनि यो थोडे, छट्टी और सातमीमे एक उष्ण योनि है. जहां शीत योनिये जीव उत्पन्न होते हैं उनके उष्ण की वेदना होती है, और जहां उष्ण योनिये उत्पन्न होते हैं उन को शीत की वेदना होती है.

पाणी पीनेसे प्यास नहीं मिटे, और पीने एक बूंदभी नहीं मिले. ३ अनंत शीत-लक्ष मणका लोहेका गोला[1] विखर जाय ऐसी ठन्ड उष्ण योनि स्थानमें है. ४ अनंत उष्ण लक्ष मण लोहेका गोला गलके पाणी हो जाय ऐसी गर्मी शीत योनी स्थान में है. ५ अनंत दहा ज्वर. ६ अनंत रोग सब रोगोसे नेरीये का शरीर व्याप्त है. ७ अनंत खाज (खुजली). ८ अनंत निराधार. ९ अनंत शोक (चिंता) १० अनंत भय. सदा भयभीत रहते है. यह १० प्रकारकी वेदना स्वभावसेही होती है.

ऐसे दुःख मय नरक स्थानमें, अपना जीव अनंत वक्त उपजके दुःख भोगव आया है;

२ "तिर्यंच गति" तिरछे बहुत बडनेसे तिर्यंच (पशु) कहे जाते हैं. इन के ४८ भेदः– पृथ्वी काय, आप काय, तेउ काय, वायु काय, इन एकेकके सुक्ष्म[1] का प्रजाप्ता[2] अप्रजाप्ता[3], और बादर[4] का प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता यों ४×४=१६ हुये. वनस्पतिके सुक्षम साधारण[5] प्रत्येक[6]

---

१ द्रष्टी न आवे. २ जिस जगे जितनी प्रजा हैं, उत्नी पूरी बांध सो प्रजाप्ता. ३ अधुरी बांधे सो प्रजाप्ता. ४ द्रष्टी आवेसो. ५ एक शरीरमें अनंत जीव वाले. ६ एक शरीर एक जीव. पामे

इन तीन के प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता, दो, भेद करने से:— ३×२=६ हुये. बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री इन तीनके प्रजाप्ता अप्रजाप्ता यों ३×२=६ भेद हुये. जलचर[7], थलचर[8], खेचर[9], उरपर[10], भुजपर[11], यह पांच सन्नी[12] और पांच असन्नी[13]. इन १० के पर्याप्त अपर्याप्त, यों १०×२=२० यह सब मिल ४८ भेद तिर्यंच के हुये.

यह बेचारे कर्माधीन हो परवश में पडे हैं. मिट्टी को-खोदते हैं, फोडते हैं गोबरादिक मिला के निर्जीव करते हैं. पाणी को-गरम करते हैं न्हावण धोवण वगैरे गृह कार्य में ढोल ते हैं, क्षारादि मिला के निर्जीव करते हैं. अग्नि को-प्रजालते हैं, बुजाते हैं, पाणी मिट्टी आदि से मारते हैं. वायुको पङ्खा झाडु खँाडन, झट्टक, फटक, उघाड मुख बोलना, वगैरेसे मारते हैं. वनस्पति को-छेदन, भेदन, पचन, पीलन, बालन, अग्नि मशाला वगैरे से निर्जीव करते हैं. बेंद्री-तेंद्री-चौरींद्री.मिट्टीके, पानीके, हरी-लीलोत्रीके इंधन

---

७ पाणीमें रहे मच्छादिं क, ८ पृथवी चले, गायादिक. ९ आकाशमेंउडे पक्षीयादि. १० पेट रगड चले सर्पादिक. ११ भुजसे चले उंदरादिक,१२ जो मात पिप के संयोग से उपजे, और जिन को मन (ज्ञान) होवे सो सन्नी. १३ समु-छिंम उत्पन्न होवे और मन नहीं होवे सो असन्नी,

के, अनाज के वस्त्र पात्र आदिके आश्रय रहे, गमनागमन करते, आरंभ समारंभ करते. धुम्रादिक प्रयोगसे शीत, उश्न. वृष्टि से आदि अनेक तरह उपजते भी हैं, और मरते भी हैं. जलचर पाणी खुटने से, नवा पाणी आणे से या धीवरा दिक मारते हैं. स्थलचार या वनचर पशुओं बेचारे शीत, ताप वृष्टि. भूख, प्यास सहन करते हैं. कॉंटे, कंकर, कीचड, कीडे वाली भोमी में पडे जन्म पूरा करते हैं, घर वस्त्र राहित हीनदीन, गरीब अनाथ, घास फूस आदी निर्माल्य मिले जितना खा के संतोष करते हैं. ऐसे निपराधी को भी रसगृद्धि निर्दयी मार डालते हैं, बन्धन में डालते है. ऐसेही ग्रामके रहवासी गौ (गाय) महिषी (भैंस) आदिकभी निर्माल्य वस्तु देवे जितनी खाके रहने वाले, खेतीआदि अनेक काम में मदत कर्ता, दूध जैसे उत्तम पदार्थ के दातार, मालिककी आज्ञा मैं चलने वाले, गरीब बेचारेके उपर असाह्य वजन भर देत हैं, कठिण बन्धन से बांधते हैं, कठोर प्रहार से मारते हैं, वहूत चलाते हैं, दुःख से रोग से या थाक से मुर्छित हो पडे हुवे को. श्वास रोकके उठाते हैं. खान पान पूरा नहीं देते हैं. और काम पूरा लेते हैं. और मतलब पूरा हुये कृतघ्नी कषाइ आदि

को बेंच देते हैं. वहां विष शास्त्र से अकाले रीबा २ मारे जाते हैं. इन दीनो की करुणा करने वाला कौन है? ऐसी तिर्यंच गति मे अपना जीव अनंत वक्त उपजके दुःख भोगव आया है.

३ मनुष्य गति—मनकी इच्छा मुजब साधन कर सके सो मनुष्य के ३०३ भेद, अ[1]स्सी, म[2]स्सी-क[3]स्सी, यह तीन कर्म कर उपजीविका करे सो कर्म भूमी मनुष्य इनकी उत्पत्ति के १५ क्षेत्र:—१ भरत १ ऐरावत, १ महाविदेह. यह तीन क्षेत्र जंबुद्विप में; और यही दो दो होनेसे ६ क्षेत्र धातकी खंडमें, और योंही ६ पुष्करार्ध द्वीपमे. यों ३+६+६=१५. वरोक्त तीनही प्रकारके कर्म विना दश प्रकारके * कल्पवृक्ष

---

१ हथियार (शास्त्र) से. २ लिखने का ३ कृषाण(खेती)

* १ मतंगा वृक्ष=मधुर रस दे, २ भिंगा वृक्ष= व रतन दे. ३ तुडी येगा वृक्ष= वाजिंत्र सुणावे, ४ दिव वृक्ष=दीवा जैसा प्रकाश करे. ५ जोइ वृक्ष= सूर्य जैसा प्रकाश करे. ६ चितगा वृक्ष=विचित्र रंग के पुष्प हारदे ७ चित रसा=इच्छित भोजन दे. ८ मन वेगा वृक्ष=रत्न जडित भूषण दे. ९ गिहं गारा=रहने अच्छा मकान दे. और १० अनियाणा वृक्ष=श्रेष्ट वस्त्र दे. ३० अकर्म भौमी और ५६ अंतर द्विप मे रहने वाले मनुष्यों की इन १० कल्प वृक्ष से इच्छा पूरी होती है.

से उपजीवका होवे. सो कर्म अकर्म भूमी मनुष्य के ३० क्षेत्र १ हेम वय, २ अरण वय, ३ हरीवास, ४ रमक वास, ५ देव कुरू· ६ उत्तर कुरू, यह ६ क्षेत्र, जंबुद्वीप में, येही दो दो क्षेत्र होने से १२ क्षेत्र धात की खंड में, और येही १२ क्षेत्र पुष्करार्ध द्विपमें. यों ६+१२+१२=३०. जंबुद्वीप में के चुली हेमवंत और शिखरी पर्वत मैंसे आठ २ दाढों (खुणे) लवण समुद्रमें गइ है. उन्ह एकेक दाडोंपे सात २ द्वीप हैं. तो आठ दाढोंपे ७×८–५६ अंतर द्विप हुवे, इनपर अकर्म भूमि-जैसे मनुष्य रहते हैं.* यह १५+३०+५६=१११ मनुष्य के क्षेत्र हैं. इन मैं जो मनुष्य होते हैं उनके दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त, यह २०२ हुये और १०१ अपर्याप्त मनुष्य जो १४* स्थान में समूर्छिम

---

* १ उच्चार=विष्ठामे, २ पासवण–मूत्रमे, ३ खेल–खंकारमें, ४ सघेण–नाकके मेलसेडामें, ५ उल्ते–उलटीमें ६ पिते–पितमे. ७ सूए–रक्तमे, ८ पुए–रस्सी (पीरु) में, ९ सुके–सुक्र [वीर्य] में, १० सुके पुगल परिसारे–शुक्रके सूके पुद्गल पीछे भिजनेसे, ११ मृत्यूकलेवर–पचेंद्रीके कलेवर में, १२ स्त्री पुरूपके संयोगमे, १३ नगरके नालेमें, और १४ लोक के सर्व अशुची स्थानमें [शीतल हुये तुर्त असंख्य मनुष्य नत्पन्न होते हैं.]

(स्वभावसे) उत्पन्न होवे हैं वो अपर्याप्तही मरते हैं. इस लिये १०१ भेद उनके, यों सर्व मिल ३०३ भेद मनुष्य के हुये.

कर्म भूमि में महा विदेह छोड बाकी के क्षेत्र में छे आरे की प्रवर्ती मे कभी पुद्गलिक सुखकी बृद्धि और कभी हानी होती है, सदा एकसा न रहना वो भी दुःख काही कारण है. और महा विदेह मे सदा चतुर्थ कल प्रवर्तता है, तो वहां भी विचित्र प्रकारके मनुष्य हैं. मतलब की जहां कर्म कर के उपजीवका है वहां दुःख ही है; अस्सी हथीयारसे उपजीका करने वाले, कसाइ होके बेचारे गरीब निपराधी जीवों-की घात कर, महा जब्बर पाप उपराजते हैं, सिपाइयों होके अपराधी और निरपराधी को विनाकारणभी मारते हैं. कितनेक राजादिक महाभारत संग्राम करते हैं. तो कितनेक स्वकुटुंब का संहारही कर डासते हैं, तो बेचारे एकेंद्रियादिकका तो कहनाही क्या? शस्त्र अनर्थकाही कारण है. शस्त्र हाथमें आयाकी प्रणाम हिंसामय हुये. मसी लिखाइ के कर्म कर उपजीविका चलाने वाले वणिकादिक कसाई, कूंजड, कलाल, दाणेका, लोहेका, धातुका वगैरे अयोग्य व्यपार कर गजा उपरांत वजन उठाये, गामडे में भटकते हैं

गुलामी करते हैं, वगैरे महा कष्ट सहते हैं. करसी-कृषी (खेती) के कर्म में अनेक एकेंद्री से पचेंद्री तक जीवकी घात करते हैं, शीत ताप क्षुधा तृषादि महा कष्ट सहते हैं. महा मेहनत से तीनही ऋतू व्यतिक्रांत करते हैं. अब्वी वृत मान कालकी स्थितीका ख्याल करते मालम होता है कि-द्रव्य (धन) है तो बहूत स्थान कुटुंबकी अंतराय रहती है, कुटुंब है तो दरिद्रता रहती है. धन कुटुंब दोनो है तो संप नहीं. शरीर रोगीला सदा क्लेश, लेने देनेका इज्जनका, वगैरे अनेक दुःख भुक्त रहे हैं. कित्नेक बेचारे गरीब हैं, उन को अपने पेट भरनेकी ही मुशीबत पड रही है तो अन्य कुटुम्बका निर्वाहकरना तो दूरही रहा कित्नेक अंगोपांग हीन लूले लंगडे, अन्धे, बहीरे वगैरे हैं, कित्नेक अनार्य म्लेच्छ देशमें उत्पन्न हूवे; फक्त नाम मात्र मनुष्य हैं, उनके कर्म पशुसेभी खराब हैं, धर्मके नाममेंभी नहीं समजते हैं, मनुष्यका अहार करते हैं, वस्त्र रहित रहते हैं, मात, भग्नि, पुत्रीआदि से व्यभिचारका कुछ विचार नहीं है. जंगलमें भटक २ जन्म तेर करते हैं. अकर्म भूमि के क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुये मनुष्य देव कुरु उत्तर कुरु में सुखकी उत्कृष्टता है, हरिवास रम्यकवास में सुखकी मध्यमता, है, और हेमवय ऐरण्यवयमें सुखका कनिष्टता

है परंतु सर्व धर्मरहित भद्रिक परणामी प्रर्याय पशु की तरह पूर्व पुण्येस प्राप्त हुये दशकल्प वृक्षों के योग्य से सुख भोगवते हैं, और मर जाते हैं.

अंतर द्वीपमें रहने वाले मनुष्य नाम मात्र मनुष्य हैं, पानी पे डूगरीयोंमें बनमें रहते हैं, शरीर मनुष्य जैसा होके, कितनेकके मुख हाथी घोडे सिंह गाय जैसे होतेहैं. यह मिथ्यात्व दृष्टि हैं, कूछ पुण्योदयसे इन्की भी इच्छा कल्प वृक्ष पूरते हैं.

समूर्च्छि मनुष्य—फक्त मनुष्य के पदार्थ विष्टा मूत्र रक्तादि से होते हैं. जिससे वो मनुष्य कहे जाते हैं, परंतु दृष्टि नहीं आते हैं;एसे सूक्ष्म रूप से एक स्थान में भेलंभेल असंख्य उपजते हैं. और तुर्त मरते हैं. विष्ट पे विष्टा, मूत्रमें मूत्र करने से वगैरे इनकी हिंसा हर वक्त होती है.

एसे दुःखमय स्थानमें अपन अनंत विटंबना भोगव आये हैं. (मनुष्य जन्मकी श्रेष्ठता गिनने का इत्नाही प्रयोजन है कि तिर्थंकर, साधू,श्रावक, वगैरे इसीमें होते हैं. और मोक्षभी मनुष्य जन्म विन नहीं मिल सक्ता है.)

४ देवगति—दिव्य उच्चगतिवाले सो देवता के १९८ भेद कहे हैं:—असुर कुँवार, नाग कुँवार, सुवर्ण

कूँवार, विघत कुँवार, अग्नि कुँवार, उदधी कुँवार, दिशा कुंवार, द्वीप कुंवार, पवन कुंवार, स्तनित कुंवार, यह १०, और १५ पहले पारमाधामी (यम) देवके नाम कहे सो यों २५ ही भवन पतिके जातके देवता हैं. यह पहले नरकके आंतरे में रहते हैं. और पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, इसीवा, भुइवा, आनपन्नी, पानपन्नी कदिय, महाकंदथि, काहडं और पहं देव, यह १६ व्यंतर. तथा आन झमक, पणझमक, लेणझमक, सेणझमक, वत्थ झमक, पत्त झमक, पुष्प झमक, फल झमक, बीज जमक, अभी पत्त झमक, यह १० झमक मिल २६ भेद बाण व्यंतरकी जातिमें गिने जातें हैं. यह पहलि नरक के उपर पृथवी के नीचे रहते हैं. चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र, तारा, यह ५ अढाई दीपके अंदर चलते फिरते हैं, और इन्ही नामके ५ अढाई द्विपके बाहिर स्थिर हैं. यह १० जोतिषी गिने जाते हैं. १तीन पलिये, २तीन सागरीये ३और तेरसागरीये यह *तीन किलमुखी नीच जातके देव हैं. सुधर्मा,

* तीन पल्ये के आयुष्य वाले किल मुखि देव जोतिषी के उपर रहते हैं. तीन सागर के आयु, दूसरे देव लोक के [illegible] तीसरेके नीचे रहते हैं और तेरे सागर वाले छट्टेदेव [illegible] के पास रहते हैं. यह विरूप और हीन स्थितावाले हैं [illegible] तीर्थंकर निंदक धर्म ठग, निन्दक कुछ करणी करनेसे इनमें अवतार लेता है

शान, सनत कुमार, महेंद्र, ब्रम्ह, लांतक, महाशुक्र, स
सार, आण, प्राण, अरण, अचुत यह १२ देवलोक. साइच,
ाइच, वरुण, वन्ही, गदतोय तुसीय, अरिठा, अगि
च्छा, अवबाह, यह, ९ लोकांतिक उंच्च देव हैं. भद्दे,
ुभद्दे, सुजाय, सुमाण. से, सुदंसण, पियदंशण, आ
ााय सुपडिभद्दे, जसोधर, यह ९ ग्रीवेग हैं. विजय,
वेजयंत, जयंत, अपराजित, और सर्वार्थ सिद्ध; यह ५
ननुत्तर विमान हैं. २५+२६+१०+३+१२+९+९+५
=९९ हुये. इन के अपर्याप्त और पर्याप्त यों १९८ देव
ा के भेद हुये.

अन्य गति से देव गति में सुखकी अधिकता
है. सब वैक्रय शरीर धारी हैं. दिल चाहे जैसा और
दिलचाह जितने रूप [illegible] हैं. निरोगी [illegible]
व्य, सदा तरुण शरीर होता है. आयुष्य जघन्य (थो
डासे थोडा) दश हजार वर्षका. और उत्कृष्ट ३३ सा
गरोपम का. सेकडों हजारों वर्षमें क्षुधा लगी के पूर्व
सर्व दिशामेंसे शुभ पुद्गलोंका अहार रोम २ से [illegible]
[illegible] कर त्रप्त हो जाते हैं. इनके विषय सुख अन्योपम
सेकडों हजारों वर्षके होते हैं. इनके सामान्य नाटक
मैं दो हजार वर्ष. और बडे नाटक में १० हजार वर्ष
व्यतिक्रांत हो जाते हैं. उनके वहा रागी नहीं है. [illegible]

कूँवार, विघत कुँवार, अग्नि कुँवार, उदधी कुँवार, दिशा कुंवार, द्वीप कुंवार, पवन कुंवार, स्तनित कुंवार, यह १०, और १५ पहले पारमाधामी (यम) देवके नाम कहे सो यों २५ ही भवन पतिके जात के देवता हैं. यह पहले नरकके आंतरे में रहते हैं. और पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरुष, महोरग. गंधर्व, इसीवा, भुइवा, आनपन्नी, पानपन्नी कदिय, महाकंदथि, काहडं और पहं देव, यह १६ व्यंतर. तथा आन झमक, पणझमक, लेणझमक, सेणझमक, वस्थ झमक, पत्त झमक, पुष्प झमक, फल झमक, बीज जमक, अभी पत्त झमक, यह १० झमक मिल २६ भेद बाण व्यंतरकी जातिमें गिने जातें हैं. यह पहलि नरक के उपर पृथवी के नीचे रहते हैं. चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र, तारा, यह ५ अढाई दीपके अंदर चलते फिरते हैं, और इन्हीं नामके ५ अढाई द्विपके बाहिर स्थिर हैं. यह १० जोतिषी गिने जाते हैं. १तीन पलिये, २तीन सागरीये ३और तेरसागरीये यह *तीन किलमुखी नीच जातके देव हैं. सुधर्मा,

* तीन पल्ये के आयुष्य वाले किल मुखि देव जोतिषी के उपर रहते हैं. तीन सागर के आयु, दूसरे देव लोक के [illegible] तीसरेके नीचे रहते हैं और तेरे सागर वाले छट्टेदेव [illegible] के पास रहते हैं. यह विरूप और हीन स्थितावाले हैं. [illegible] तीर्थंकर निंदक धर्म ठग, निन्दक कुछ करणी करनेसे इनमें अवतार लेना है

ईशान, सनत कुमार, महेंद्र, ब्रम्ह, लांतक, महाशुक्र, स हसार, आण, प्राण, अरण, अचुत यह १२ देवलोक. साइच, माइच, वरुण, वन्ही, गदतोय तुसीय, अरिठा, अगिच्छा, अवत्राह, यह, ९ लोकातिक उंच्च देव हैं. भद्दे, सुभद्दे, सुजाय, सुमाण. से, सुदंसण, पियदंशण, अमोय सुपडिभद्दे, जसोधर, यह ९ ग्रीवेग हैं. विजय, विजयंत, जयंत, अपराजित, और सर्वार्थ सिद्ध; यह ५ अनुत्तर विमान हैं. २५+२६+१०+३+१२+९+९+५ =९९ हुये. इन के अपर्याप्त और पर्याप्त यों १९८ देवता के भेद हुये.

अन्य गति से देव गति में सुखकी अधिकता है. सब वैक्रय शरीर धारी हैं. दिल चाहे जैसा और दिलचाह जितने रूप बना सके हैं. निरोगी महा दिव्य, सदा तरुण शरीर होता है. आयुष्य जघन्य (थोडासे थोडा) दश हजार वर्षका, और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का. सेकडों हजारों वर्षमें क्षुधा लगी के तुर्त सर्व दिशामेंसे शुभ पुद्गलोंका अहार रोम २ से ग्रहण कर त्रप्त हो जाते हैं. इनके विषय सुख अन्योपम सेकडों हजारों वर्षके होते हैं. इनके सामान्य नाटक में दो हजार वर्ष, और वडे नाटक में १० हजार वर्ष व्यतिक्रांत हो जाते हैं. उनके वहा रात्री नहीं है, सदा

है × परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसे मन व
श में हो सक्ता है.

किसीसे भी पूछ देखो कि-भाइ! तुम मनको वश कर सक्ते हो? तो वो येही कहेगाकी वहोतही उपाय करते हैं, परन्तु पापी मन वशमें नहीं रहताहै क्या करे! ऐसे मनको वशमें करनेका सहज उपाय इस श्लोकमें कहा है कि-निरंतर अभ्यास से जो वै-राग्य प्राप्त करता है, वो मन वशमें कर सकता है.

पंच इन्द्रियोंके छिद्रों कर जो शब्दादि पुद्गल का प्रवेश होते है, उन्हे ग्रहण कर मन राग द्वेषमय परिणम सुखी दुःखी बनता है. उस राग द्वेषमें [illegible] णमते हुये मनको रोकना, उसीका नाम वैराग्य. राग द्वेष परिणतीमें परिणमनेका मनका अनंत कालका स्वभाव पडरहा है. उससे एकाएक मन रुकना वहुत ही मुशकिल है. इस लिये मनको रोकनेका अभ्यास करना चाहीये. जैसे जोशमय आते नदीके पूरको कोइ एकदम रोकना चाहे तो कदापि नहीं रुक सकेगा! परन्तु उसे पलटानेका जो प्रयत्न करेतो हो सके

× 'अतिचंचल मतिसूक्ष्म सुदुर्लभ वेगवतया चेतः'-हे मचंद्राचार्य कहते हैकि-यहमन अतीहीचंचल होके अतीही सूक्ष्म है. इस लिये इसकी गतीको रोकना मुशकिल है.

बस तैसेही मनके वेगको पलटानेके प्रयत्नकी अभ्या
स की आवश्यकता है.

वो अभ्यास ऐसा चाहीये कि-जिन २ शब्दा
दि विषय मय पुद्गलोमें मन परिणमें उसीही वक्त उ
न पुद्गलोंके स्वभाव गुण और फलके तर्फ मनको फि
राना कि-यह क्षणिक और कटु फलद्रुप हैं. ऐसा हर
वक्त अभ्यास रखनेसे मन किसी कालमें इन्द्रियोंके
विषय से निवृत्ती कर सकेगा.

और फिर ध्यान में मनको स्थिर करने एकाग्र
ता का अभ्यास करना. एकाएक मन एकाग्र होना
मुशकिल हैं; परन्तु अभ्यास से वोभी हो सक्ता है;
जो जो काम अपने नित्य नियमिक हैं अवलतो उन्हीं
में एकाग्रता करना चाहीये, प्रतिक्रमण करते होय
तो उस प्रतिक्रमणके शब्दार्थादिमेही मनको गडादे-
ना. उस विचारको छोड अन्यतर्फ नहीं जाने देना
ऐसेही सझ्याय-स्वाध्याय करती वक्त स्वाध्यायमें, व्या
ख्यान देती वक्त व्याख्यानमें, गौचरी व आहार कर
तं. वक्त आहार में इत्यादि सर्व दिन रात्री सम्बधी
कार्यमें सदा सर्वकाल क्षणंव राहित मनकी एकाग्रता
का अभ्यास रखना. यों कितनेक कालतक करते २
वो सहजही एक वस्तुपे टिकने लग जाता है; फिर

हरेक इष्ट पदार्थपे मनकी एकाग्रता हो सक्ती है. यों अभ्यास युक्त वैराग्य मनको अडोल ध्यानी बनाता है.

यस्तव विज्ञानवान् भवत्य मन्स्कः सदाऽशुचिः ॥
नसतत्पद माप्नोतिस सारंच धिगच्छाति ॥१॥
यस्तु विज्ञानवान् भवाति समनस्कः सदाशुचिः ॥
स्तुत्पद माप्नोति यस्माद भूयोनजायते ॥२॥

अर्थ—जो विवेक रहित मन के पीछे चलता हैं वो सदा अपवित्रही रहता है, और शान्ति पदको प्राप्त नहीं होता है. अनंत संसार में परिभ्रमण करता है. ॥१॥

और जो विवेक संपन्न मन को जीत ने वाला निरंतर शुद्ध भाव युक्त होता है. वो उस परमानन्द पदको प्राप्त होता है कि पुनः संसार में अवतार धारन करना नहीं पडे. ॥२॥

अब वो एकाग्रता तथा ध्यान किस वस्तुका करना सो कहता हूं.

प्रथम प्रतिशाखा-"आत्मा"

सूत्र—जे एगं जाणइ से सव्वं जाणेइ;
जे सव्वं जाणेइ, से एगं जाणइ.

आचारांग अ. ३ सूत्र २०९.

अर्थ—जो एकको जाणेगा, वो सबको जाणेगा और जो सबको जाणेगा वोही एकको जाणेगा!*

वो एक पदार्थ कौनसा है? और कैसा है? कि जिसको जाणने से सर्वज्ञता प्राप्त होवे! उसका स्वरूप यहां दर्शाते हैं:—

वो "आत्मा" है. आत्माके ३ भेद किये हैं. बाहिरात्मा, २ अंतर आत्मा, और ३ परमात्मा.

प्रथम पत्र—"बाहिरात्मा"

१ बाहिर आत्मा—जो यह प्रत्यक्ष हाडका पिंजर रक्त मांसादि धातुओंसे भरा हुवा, और रंगी बेरंगी चमडी करके ढका हुवा. मनुष्य या तिर्यंच (पशुवों) का शरीर; तथा अन्य अशुभ पूद्गलों (वस्तुओं) से बना, नरक निवासी जीवोंका शरीर; और शुभ

*श्लोक—एको भावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टः; सर्व भावाः सर्वथा येन दृष्टा एको भाव सर्वथा तेन दृष्टः

अर्थ—जिनने एक पदार्थ को प्राति पूर्ण रूपसे देखा, उनने सर्व पदार्थ प्राति पूर्ण रूपसे देखे; और जिनने सर्व पदार्थ पूर्ण रूप से देखे उनने एक पदार्थ पूर्णसे देखा.

दुहा—निज रूपे निज वस्तु है, पर रूपे परवस्त,
जिसने जाणा पेंच यह, उनने जाणा समस्त॥

पुद्गलोंसे बना हुवा देव लोक निवासी जीवोंका शरीर, उसे बहिर आत्मा कहते हैं. अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान बैठे हैं. और अपने शरीर को हाथ लगा कहते हैं:— मैं गोरा हूं. कालाहूं, लम्बाहूं, छोटाहूं, जाड हूं, पतल हूं, मेरा छेदन भेदन होता है, मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रखे मेरी आत्माका विनाश होवे और वो इन्द्रियोंके शब्दादि विषयों के पोषण में मजा मानते हैं, में स्त्री हुं, पुरुष हूं, नपुंशक हूं इत्यादि विचारसे परस्पर भोगमें आनंद मानते हैं, हा हा करते हैं. मतलबकी जो शरीरको आत्मा माने, शरीर के सुख दुःख से अपना सुख दुःख मानें. शरीरकी पुष्टाइसे हर्ष, और कष्टसे दुःख मानते हैं; वेही बहिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना ❀ शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव को मिटाने देहाध्यास छोडने, परिणामोकी विशुद्धि करने, विचार करे

❀श्लोक-देहात्म बुद्धिजपाप,नतद्गोवध कोटीभिः;
आत्मा अहबुद्धिजं पुण्य, नभूतो नभविष्यति ॥१॥
अर्थ—शरीरहीको जो आत्मा मानते हैं. उन्हे क्रोडो गाइयों के वध करनेवालेसें भी अधिक पाप लगता है. और मैं आत्माही हुं ऐसे विचारवालेको जितना पुण्य होता है वो पुण्य त्रिकालके पुण्यसे भी अधिक है.

कि यह शरीर पुद्गलो के संयोग से निपज्या है. श्री उत्तराध्ययनजी में फरमाया है कि.

नो इंदियेग्गेज्झ अमुत्त भावा,अमुत्त भावा विय होइनिच्चं
अज्झत्थ हेउं नियय स्सबंधो, संसार हेउंच वयंति बन्धं॥१

अर्थ—जो मूर्ती पदार्थ है वोही इन्द्रियों से ग्रहण किये जाते हैं. और जो पदार्थ इन्द्रियों से ग्रहण किये जाते हैं वो जड होते हैं और चैतन्य तो अमूर्ती (अरूपी) है. उसको इन्द्रियों ग्रहण नहीं कर सक्ती है इसलिये वो अजड अविनाशी नित्य है, अनादि देहा ध्यासके कारण से जड और चैतन्य सम्बंध से एकत्व रूप होरहा है, जैसे दूध और घृत. यह जो जडका और चैतन्य का सम्बन्ध है, सोही संसार का हेतू है. इस अनादि सम्बन्ध का निकंद करने, श्री आचारांग सूत्र मे फरमाया है:—जे एगं णामे, से बहुणामे, जे बहूणामे,से एगंणामे," अर्थात्—जो एक मोह (ममत्व) को नमावे सो वहूतो कों (सर्व कर्मोंकों) नमावे, और जो वहूत (सर्व) को नमावेगा सोही एक (ममत्व) को नमावेगा. और 'जेएगं विगिंचमाणे, पुढोवि.गिंचइ, पूढो विगिंचमाणे, एगं विगिंचइ.' अर्थात्—जो एग मोहको खपाते है वो सब (कर्मो) को खपाते है: और जो सर्वको खपाते हैं वोही एक

को खपा ते हैं क्षय करते हैं. इत्यादि विचार से शरीरसे आत्म बुद्धिका त्याग कर. ममत्व उतार अंतर आत्माकी तर्फ लक्ष लगावे.

द्वितीय पत्र-"अंतरात्मा"

२ अंतर आत्मा—अंतर आत्मा में रमण करते हुये ध्यानी विचार ते हैं, मैं जिसे सम्बोधन करता हूं सो फक्त लौकीक व्यवहार से करता हुं. क्यों कि आत्मा तो निष्कलंक है, इसे कौन संबोध सक्ता है. आत्मातो आत्म मय पदार्थ को ही ग्रहण करता है, अन्यको नहीं अन्यको तो अन्यही ग्रहण करते हैं. ऐसा भेद विज्ञान (पुद्गल और चैतन्यकी भिन्नताका जिन्हे होवे.) अंतर (निजात्म स्वरूप) की तर्फ लक्ष लगे. वो अंतरात्मा. जैसे अन्धकार में स्थंभका मनुष्य भाष होता है, और अन्धकारके नाश होनेसे वो यथातथ्य स्थंभका स्थंभही दिखता है. तब प्रथमका भ्रम नाश होता है; तैसेही भेद विज्ञान अनस्त सूर्य का प्रकाश होनेसे शरीर और आत्माका यथार्थ भाष होता है.

"अंतर आत्म विज्ञानीका विचार"

१ जो स्त्री पुरुषादिक की पर्याय है, वो कर्मों

का स्वाभाव है; चैतन्यका नहीं. चैतन्य तो निर्वेदी, निर्विकारी है. तो फिर वीकारीक वस्तुओंको देख. विकारी क्यों होता है;

२ जो शत्रुता मित्रता के परिणाम होते हैं, सो ही कर्म स्वभाव है. निश्चयमें तो "अप्पा मित्तममित्तं च" जो अकृतसे निवर्ते तो अपणी आत्मज मित्र है, नहीं तो शत्रुताका साधन तो होताही है. इस विचारसे शत्रु मित्र पर व अच्छी बुरी वस्तूपर सम परिणामी बने. राग द्वेष न करे.

३ इत्ने दिन में तो बालककी तरह अनेक चेष्ट करता सो अन्यका प्रेरा हुआ करताथा, न की चैतन्यका. क्यों कि चैतन्य तो अनंत ज्ञानादि शक्तिका धारक है. वो किसी प्रकार चेष्टा (ख्याल तमाशा) करे इ नहीं.

४ इत्ने दिन अन्य पदार्थ सच्चे मालम पडते थे अब वोही स्वप्न और इन्द्र जाल जैसे मालम पडनेलगे फिर इसकी प्रतित कां रही. और असत्य को सत्य माने सोही मिथ्यात्व.

५ जो परमात्माको अविनाशी कहते हैं. वो मैंही हूं. फिर जंगम और स्थावर से मेरे विनाश होवे यह वैसही खोटा है. "मरे सो और, और में और"

इस विचार से निडर बने.

६ हा! हा! अश्चर्य कि—जिन्ह कामोंसे या कारणोंसे, अज्ञानीयों कर्म का बन्ध करते हैं. उन्ही कामोंसे ज्ञानी कर्म बन्ध तोड निर्मुक्त होते हैं. इस विचार से सबसे ममत्व घटावे.

७इतने दिन संसारमें जो मैने रूपोंकी विचित्र ता पाया, सो 'भेद विज्ञान' के अभावसेही पाया; अब वैसा नहीं बनूं.

८ यह जग तारक वाहण (झाज-स्टिमर) सब के सन्मुख से चले जाते हुयेभी, अनंत जीवों डूब रहे हैं. इसका एक मुख्य कारण, "भेद विज्ञानकी अज्ञान ता ही है." अब मैं तो उससे छूटा होवुं!

९ क्या मजा है! यह आत्मा आत्माके द्वारा ही पहचानी जाती है. इसे चशमें या दुर्बीन की कुछ जरूरही नहीं. यो आत्मा देख.

१० विशेष आश्चर्य तो यह है कि—जो विषय मय पदार्थ अज्ञानियो को प्रीति उत्पन्न करने वाले होते हैं. वोही ज्ञानीयोंको अप्रिय दुःख दायक लगते हैं और संयम तपादिक अज्ञानीयों को अप्रीति दुःख उत्पन्न करने वाले भाव होते हैं. वोही ज्ञानीयों को सुखानंद दाता भाव होते हैं.

११ "वोही हूं मैं, वोही मैं हूं" ऐसी एकांत भावना कर्ता हुवा यह आत्मा उसी पदको प्राप्त होता है, "अप्पासो परमप्पा" अर्थात आत्म है सोही परमात्मा है ? * उसि पदको प्राप्त होता है. और इससे ज्यादा सद्बोध कौनसा.

१२ मैने मेरीही उपासना करनी सुरु करी तो फिर मुझे अन्य उपासनाकी क्या जरूर ! क्यौं कि जैसा परमात्मा है, वैसाही में हूं. ×

१३ भेद विज्ञानी महात्माको दूक्कर तप और महान उपसर्गभी किंचित मात्र खिन्न नहीं कर सक्ते हैं, चला नहीं सेक्ते हैं.

१४ अंतर आत्माका ध्यान रागादि शत्रुके क्षयसेही होता है.

---

* अन्य मती भी कहते हैं—आत्माचीनेसो परमात्मा.

× प्रीति सीन पाती कोउ । प्रेम से न फूल और ।
चित्त सो न चंदनन । स्नेहसो न सेहरा ॥
हृदयसो न आसन । सहजसो न सिंहासण ।
भावसो न सुन और । सुन सो न गेहरा ॥
शील सो स्नान नाहीं । ध्यान सो न धूप और ।
ज्ञान सो न दीपक । अज्ञान तमको हरा ॥
मन सी न माला कोउ । सोहं सो है जाप नाहीं ।
आत्मासो देव नाही । देह सो न देहरा ॥१॥

१५ जो भ्रम रहित हो, जीव और देहको अलग २ समजेगा, वोही कर्म बन्धन से छूट मोक्ष प्राप्त करेगा. रागादि शत्रु दूर हुये की आत्मा दिखी.

१६ अज्ञान और विभ्रमके दूर होनेसेही आत्म तत्व भाष होता है.

१७ जिस कायको प्राण प्यारी कर रक्खी थी, अज्ञान दूर होनेसे उसीही कायको तप संयमादि में गालने लगते हैं.

१८ आत्मा ज्ञान विन कोरे तप करनेसे दुःख मुक्त नहीं होता है.

१९ वाहिर आत्मा वाला रूप, धन, बल, सुख इत्यादि का अहो निश ध्यान करता है. और अंतर आत्मिक इस से विरक्त रहता है. और अपनी आत्मा के अंदर रहे अपनेही परिवारके साथ रमण करता है*

२० अज्ञानी फक्त बाह्य त्यागसे सिद्धी मानते हैं, और ज्ञानी बाह्य अभ्यंतर दोनो उपाधीयों त्याग नेसे सिद्धी मानते हैं.

धैर्य-तात, क्षमा-जननी, परमार्थ-मित्र, महारुची-मासी॥
ज्ञानसपूत, सुता-करुणा, माति-पुत्रवधु, समता-प्रतिभासी
उद्यमदास, विवेक-सहोदर, बुद्धि-कलत्र, मोहोदय-दासी॥
सवकुटंब मदाजनके ढिगयो मुनिको कहीये ग्रहवासी

२१ अध्यात्म ज्ञानी व्यवहार साधने वचन और कायसे अन्यन्य कार्य करते भी मनसे एकांत अंतर आत्मामें ही लीन रहते हैं.

२२ आत्म साधन करती वक्त, जो उपसर्ग, व दुःख होता है. उसे अध्यात्मी दुःख नहीं समजते हैं* बल्के सुखही समजते हैं, जैसे रोगी कटू औषध के स्वादको न देखता गुणहीका गवेक्षी होता है.

२३ ज्ञानीको आत्म साधन सिवाय अन्य कामकी फुरसतही नहीं मिलती है.

२४ परमानन्द आत्मामें ही है. बाहिर क्या ढुंढते हो?

२५ इच्छा है सोही संसार हैं, इच्छा त्यागसे संसार सहज छुटता है.

२६ जैसे पहर हुये वस्त्र जीर्ण होते, वेरंगी होतें या नष्ट होते शरीर जीर्ण, वेरंगी, और नष्ट नहीं

---

*श्लोक—नच छिदन्ति शास्त्राणि, नैनं दहातिपावकः ॥
नचेनक्लेदयं ऽत्पो, नशोपयाति मारुतः ॥१॥

अर्थ—इस आत्माको तीक्ष्ण शास्त्र छेद शक्ता नहीं है, प्रचन्ड अग्नि जला सक्ता नहीं है, पाणीगल सक्ता नहीं है, और वायु(पवन)सुकासक्ता नहीं है; तो फिर भय (डर) हीं किसका? अर्थात् कि सीका भी नहीं.

४० परमार्थ दर्शी मोक्ष मार्ग शिवाय अन्य स्थानमें रती (सुख) नहीं मानते हैं, वोही मोक्ष पाते हैं.

४१ * केवली भगवानको, न बन्ध है न मोक्ष है.

४२ परमार्थ दर्शीको कुछभी जोखम नहीं है.

४३ अज्ञानी सदा निद्रिस्थ है, परमार्थी सदा जागृत है.

४४ जो शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शकी सुन्दरता असुन्दरतामें सम परिणाम रखते हैं. वो ज्ञान और ब्रह्म (निर्विकल्प सुख) को जाण सक्ते हैं, और वोही लोकालोक को जाणते हैं.

४५ कर्मको तोडने सेही, पवित्र आत्माके दर्शन होते हैं.

४६ जो अपनी तर्फ देखता है, वोही सर्व तर्फ देखता है.

४७ जो क्रोधको छोडेंगे, वो मानको छोडेंगे, जो मानको छोडेंगे वो मायाको छोडेंगे, जो मायाको छोडेंगे, वो लोभको छोडेंगे, जो लोभको छोडेंगे वो रागको छोडेंगे, जो रागको छोडेंगे वो द्वेषको छोडेंगे, जो द्वेषको छोडेंगे वो मोहको छोडेंगे, जो मोहको

* आचारांग कलम १६०

छोडेंगे, वो गर्भसे छूटेंगे, जो गर्भसे छूटेंगे वो जन्मसे छूटेंगे, जो जन्मसे छूटेंगे वो मरणसे छूटेंगे, जो मरणसे छुटेंगे, वो नरक से छूटेंगे, जो नरकसे छुटेंगे वो तिर्यंचसे छुटेंगे, जो तिर्यंचसे छुटेंगे, वो सर्व दुःख से छुट परम सुखी होवेंगे.

४८ आत्म ज्ञान विन. शास्त्र ज्ञान निकम्मा है.

६९ इन्द्रियों के सुखका त्याग कर, आत्म ज्ञान प्राप्त करते ऐसा नहीं जानना कि-इन्द्रियोंके सुख छूटनेसे दुःखी बन जाता है, क्यों कि आत्म ज्ञानकी सिद्धि होते अमृत मयही संपूर्ण बन जाता है. और उस अमृतपान से जालम जन्म मरणका दुःख दूर हो जाता है. जिससे परम सुखी बन जाता है.

५० हे आत्मन्! आत्माके साथ निश्चय करकि मैं अतिन्द्रिय हूं, अर्थात मेरें इन्द्रि नहीं है, तथा मैं इन्द्रियोंके गोचर आवुं ऐसा नहीं हूं. तथा इन्द्रियोंके शब्दादि विषय हैं सो आत्मामें नहीं है. इससे अतिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियातितहूं .और अनिर्देशहूँ, अर्थात् वचन द्वारा मेरा वर्णन नहीं हो सक्ता, इस लिये वचनातीत हुं' ऐसेही मै अमुर्ती हूं. चैतन्य हूं. आनंद-मय हूं. इत्यादि विचारसे. निज स्वरूपमें निश्चल होवे

५२ हे. आत्मन्! आत्माके साथ ऐसा विशुद्ध

निर्मल अनुभव कर कि यह आत्मा समस्त लोकके यथार्थ स्वरूप को प्रगट करने वाला अद्वितीय सूर्य है. विश्वमें सामन्य अग्निसे दीपकका प्रकाश अधिक गिनते हैं, दीपकसे मशालका, मशालसे ग्यासका और ग्याससे बिजलीका प्रकाश अधिक पडता है. इन कर्तृम प्रकाशसे स्वभाविक चन्द्रमा का प्रकाश अधिक है, और चन्द्रके प्रकाशसे सूर्यका प्रकाश अधिक लगता है. परंतु आत्म ज्ञानकें प्रकाश तुल्यतो कोटी सूर्य भी प्रकाश नहीं कर सक्ते हैं, अन्य दीपकादिक के प्रकाशको वायु वगैरे धातिक वस्तुका और चंद्र सूर्य को राहू वद्दल वगैरे के अच्छादन होनेसे तथा अस्त होनेसे प्रकाशका नाश होता है. परंतु आत्म ज्योतिको मेरु पर्वतका हलाने वाला वायुभी नहीं बुज सक्का है. और न बद्दल या राहू उसे अच्छादन (ढक्कन) दे सक्ते हैं. आत्म जोति यथा रूप प्रकाशित होनेसे तीन लोकके सुक्ष्म बादर चराचर सर्व पदार्थ एक वक्त एक ही समय मात्रमें भाष होने लगते हैं, तब आत्मा परमानंदी बनता है.

इत्यादि विचार में प्रवर्ते सो अंतर आत्मावाली जाणना. अंतर आत्माको प्राप्त हुवे ही परमात्मा होतेहैं.

तृतीय पत्र-"परमात्मा

३ "परमात्मा" सर्व कर्म रहित अनंत ज्ञानादि अष्ट गुण सहित सिद्धि (मुक्ति) स्थानमें संस्थित अ-जरामर अविकार, सिद्ध परमात्मा हैं, वोही परमात्मा हैं.

पुष्पम-फलम्

यह तीनही आत्माका ध्यान, विशेषता से अ-प्रमत्त मुनी को होता है. क्यों कि अप्रमत्त पणाही ध्यानकी विशुद्धता, उत्कृष्टता करता है. उसके जोर से महामुनि आगे गुणस्थान रोहण सुखे २ कर, सर्व कर्मको खपाके सिद्धस्थान प्राप्त कर सक्ते हैं.

द्वितीय शाखा-"उपध्यान" चार.

श्लोक-पिण्डस्थंच पदस्थंच, रूपस्थं रूपवीजतम्
चतुर्द्धा ध्यान माम्नातं, भव्यरा जीव भास्कैर

ज्ञानार्णव अ. ३६

अर्थ—१ पिण्डस्थ ध्यान. २ पदस्थ ध्यान. ३ रूपस्थध्यान. और ४ रुपातीत ध्यान. इन ४ ध्याके ध्यानेसे भव्य जीवों कैवल्य ज्ञान रूप भास्कर (सुर्य) को प्राप्त कर सक्ते हैं. अब इनका अर्थ—

श्लोक-पदस्थं मंत्र वाक्यस्थं. पिण्डस्थं स्वात्म चिन्तम्
रूपस्थं सर्व चिद्रुपम्. रुपातीतं निरञ्जनम् ॥१॥

प्रवद्रव्य संग्रह.

अर्त—१ मूल मंत्राक्षारोका स्मरण करना, सो पदस्थ ध्यान.

२ स्व आत्माके पर्यायका विचार करना सौ पिण्डस्थ ध्यान.

३ चिद्रूप अर्हंत भगवंतका ध्यान करना सो रूपस्थ ध्यान.

और ४ निरंजन निराकार सिद्ध परमात्म का ध्यान करना सो रूपातीत ध्यान.

प्रथम पत्र—पदस्थ ध्यान.

१"पदस्थ ध्यान" —मन्त्र (मनको वस करे ऐसे पद (वाक्य) सो इस जक्तमें मतांतरो की भिन्नतासे इष्ट देवों विषय श्रद्धा में भी भिन्नता हो गइ है. इसी सबब से भिन्न २ मतावलम्बीयों, भिन्न देवों के नामसे मंत्र रचाना कर, उनका स्मरण करते हैं. जैसे—"उँ नमः शिवाय" "उँ नमो वासुदेवायः" वगैरे. तैसे जैन मतमें माननिय अनादि सिद्ध देवाधीदेव पंच परमेष्टी हैं. उनका स्मरण सर्वोत्तम है, वो स्मरण वहुत प्रकारसे किया जाता है. यथा—

पणतीस सोलछप्पण, चउ दुग मेगंच जवह ज्झाएह,
परमेटी वाचयाणं, अण्णं चगुरुवए सण ॥ १ ॥

द्रव्य संग्रह

अर्थात—पेंतीस (३५) सोले (१६) आठ (८) पांच [५] चार (४) दो (२) एक (१) इस प्रमाणें अक्षरों के स्मरण से पंच प्रमेष्टी योंका जप-ध्यान हो सक्ता है. और इस सिवाय अन्यभी तरह, नुन्याधिक अक्षरों के साथ प्रमाणसे पंच प्रमैष्टी का ध्यान होता है. सो गुरु गम्मसे धारण कर जाप करना.

३५ अक्षरका मूल मन्त्र.

१ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
ण मो अ रि हं ता णं ण मो सि द्धा णं, ण मो आ
१६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९
य रि या णं, ण मो उ व ज्झा या णं; ण मो लो
३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
ए स व्व सा हू णं,

षोडस (१६) अक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
अ रि हं त, सि द्ध, आ चा र्य, उ वा ज्झा य,
१५ १६
सा हु,×

× इस मे पंच प्रमैष्टीके नाम मात्र हैं.

* इस में अरिहंत और सिद्ध दो मूल मंत्र के पद कायम रख पीछे के तीन पद एक साहु शब्द में लिये हैं क्यों कि आचार्य, उवज्झाय, और साधु यह तीन साधु ही होते हैं.

अठ (८) अक्षरी व पंचाक्षरी (५) मन्त्र

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ १ २ ३ ४ ५

अ रि हं त सि द्ध सा ॥हु॥ अ, सि, आ, उ, सा, †

चार, दो, और एकाक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ १ २ १

सिद्ध साहू ‡ ॥ सिद्ध § ॐ ¶ ॥

---

† इस मे-'अ' से अरिहन्त. 'सि' से सिद्ध. 'अ' से आचार्य. 'उ से अपाध्याय. और' सा, से साहू. यों एकेक अक्षरका जाप है.

‡ इस मे-'अरिहंत' और 'सिद्ध' इन दोनों को सिद्ध पद में लिये, क्यों कि अरहन्त जी आगे सिद्ध होने वाले हैं. उन्हे सिद्ध कहने मे कुछ हरकत नहीं, और आच, यादि तीन पद साधु पद में समाये सो तो पीछे का दिया है.

§ 'सिद्ध' पद छोडे बाकीके चारही पदकी मुख्य इच्छा सिद्ध पद प्राप्त करनेकी है. इस हेतु मे पांचही पदको एक सिद्ध कहने में कुछ हरकत नहीं है.

¶ गाथा-'अरहंता, असरीरा, आयरिमा, उवज्झायह मुणिणो, पंचख्खर निषपन्नो, ॐ कारो पंच पर मिठि अर्थ-अरिहंत की आदि में 'अ' है. असरीर(सिद्ध) की आदि मे भी 'अ' है और आचार्य की आदि मे आ दीर्घ है .उपाज्झाय की आदि में 'उ' है, मुनि (साधु) की आदि में 'म' है, यह पांच अक्षर अ-अ-आ-उ-म्. व्याकर्ण सिद्ध हेमचन्द्राचार्य कृत शाकटायन के सूत्र से तीनो दीर्घ 'अ' मिल एक दीर्घ .आ' बना; तब'आउम' ऐसा हुवा 'आ' कार और 'उ' कार मिलनेसे'ओ' कार होता है और मकार बिन्दु रूप होनेसे ओं(ॐ)कार सिद्ध हुवा.

यह पञ्च परमेष्ठी के जाप स्मरण की संक्षेपमें रीत बताइ. और भी इस सिवाय, शास्त्र ग्रन्थमें स्मरण करने मन्त्र कहे है उसमेसे कुछ यहां दर्शाये जाते है,

मङ्गल शरणो पदानि, कुरम्बं यस्तु संयमी स्मरति.
अविकल मेकाग्र धिया, सचा पवर्ग श्रियं श्रयति.।१।

अर्थात—मङ्गल, शरण, और उत्तम इनका जो स्मरण करते हैं, वे मुनिराज मोक्षरूप महा लक्ष्मीका आश्रय लेते हैं, सो—

मन्त्र—चात्तारि मङ्गलं—अरहन्ता मङ्गलं, सिद्ध मङ्गलं, साहु मंगलं, केवलि पणणतो धम्मो मंगलं चत्तारी-लोगुत्तमा-अरहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तामा, साहु लोगुत्तमा, केवलि पणणतो धम्मो लोगुत्तमा चत्तारिसरणं पव्वज्जामी-अरहन्त सरणं पव्वज्जामी, सिद्ध सरणं पवज्जामी, साहू सरणं पवज्जामी, केवलि पणता धम्म सरणं पव्वज्जामी.

सूत्र—चउवी सत्थ एणं दंसण विसोहिं जणयइ

उत्तराध्येयन.

अर्थ—चउवि. सत्थ (चतुर्वीस जिनस्तवं)मंत्र, अर्थात्—चौवीस [तीर्थंकर] की स्तुती (गुणाग्राम) करनेसे, दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धता निर्मलता होती है. वो चउवी सत्थ. कहे हैं.

सन्व लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म तित्थयरे जिणे, अरिहंत कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥१॥ उसभ, मजियंच, वंदे, संभव, मभिनंदण, च, सुमइंच, पहुमप्पहं सुपासं जिणंच चंदप्पहं, वंदे ॥२॥ सुविहं, च, पुष्फदंतं, सीअल, सिज्जंस, वासुपुज्जंच, विमल, मणंतं, च जिणं धम्मं, संतिं, च, वंदामि ॥३॥ कुंथु, अरंच, मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं, नमि जिणं, च वंदामि रिठ नेमि, पासं, तह, वद्धमाणंच ॥४॥ एवं मए अभिथ्थुया, विहुअ रयमला, पहीणं जर मरणा, चउवि संपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसियंतु ॥५॥ कित्तिय वंदिय महिया-जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा. आरुग्गं बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ॥६॥ चंदसु निम्मलयरा, आइचेसु अहियं पयास यरा, सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

सूत्र-थय थुइ मंगलेणं नाण दंसण चारित्त बोहिलाभ जणयइ, नाण दसण चरित्त बोहिलाभं संपन्नेणं जीव अंत किरियं कप्पा विमाणो ववत्तियं आराहणं आराहेइ, ॥

उत्तरा ध्ययन.अ २९

अर्थ, थय थुइ (स्तुतीरूप) मंगल सो नमोत्थुणं रूप मंत्र पढनेसे ज्ञानकी निर्मलता होय. बुद्धिकी वृद्धीहोय. दर्शण की निर्मलता होय, सम्यक्त्व शुद्ध

वाय जितने जिन भाषित सुत्रों की सज्झाय (मूल पाठका पढना) तथा और भी श्रीजिनस्तव. तथा मुनिस्तव वैराग्य आत्मज्ञान गर्भित अध्यात्मिक, शांतादि रस से भरपूर इत्यादि जो स्वध्याय परियट्टणा रूप ज्ञान फेरना सो सब पदस्थ ध्यान जाणना. *

अनुभव युक्त पदस्थ ध्यान ध्यानेसे जीव परमोत्कृष्ट रस में चडाहुवा महा निर्जरा करता है.

द्वितीय पत्र-पिण्डस्थ ध्यान.

२ पिण्डस्थ ध्यान—पिंड—शरीर में स्थ—रही हुइ जो आत्मा उसकी भिन्नता का चिंतवणा सो पिण्डस्थ ध्यान.

गाभंतें पुद्गल पिण्ड में अलख अमूर्ती देव ॥
फिरे सहज भव चक्रमें यह अनादी देव ॥१॥

अर्थात्—यह पिण्ड (शरीर) सप्त (७) धातुओं करके बना हुवा. महा अशुचिका भंडार, क्षिण २ में पर्यायका पलटने वाला. मृगा पुत्रके फरमान मुजब "वाही रोगाण आलए" अर्थात्=आधी (चिंता). व्याधी (रोग) उपाधी (दुःख) का घर, ऐसे शरीर में अलख—जो लक्ष (अक्कल) में जिसका गुण न आवे, (समावे). ऐसे और अमूर्ती जो देखनेमे न आवे, ऐ

"*ॐ" यह पदस्थ ध्यानका 'बीज मंत्र' है.

से देव विराजमान हैं. परन्तु अनादी कालसे जिनका फिरनेकाही स्वभाव देहा ध्यास से व कर्म संयोग कर हो रहा है, जिससे संसार चक्रवालमें अनंत परिभ्रमण कर रहा है. इस का मुख्य हेतु यह है कीः—

जो जो पुद्गल की दिशा, ते निजमाने हँस ॥
याही भरम विभाव ते। बडे कर्मको वँस ॥२॥

जो जो जगत् में पुद्गली पदार्थ हैं उनको अपने मान रहा है, और उनका स्वभाविक स्वभावमें पलटा पडनेसे अर्थात् पुद्गलोंका संयोग वियोग होने से आपनाही संयोग वियोग समजता है. मतलबकी अपनी अनंत ज्ञान मय जो चैतन्य अवस्था है उसको कर्मोंके नशेमें छक हो भूलगया, भ्रममें पडगया और अपना स्वभाव को छोड विभाव में राच–माच रह्या है, जिसी से कर्मों की वृद्धि होती है और भव भमण करना पडता है. कहा हैः—

कर्म संग जीव मूढ हैं। पावे नाना रूप ॥
कर्म रूप मलके टले। चैतन्य सिद्ध स्वरूप ॥३॥

यह सब कर्म की संगती काहि स्वभाव है, न कि चैतन्यका, क्योंकि चैतन्य तो सिद्ध स्वरूपी परमात्मा रूप है. इसका भव भ्रमणमें पडनेका स्वभाव है ही नहीं. जो होय तो सिद्ध भगवंत को भी पुनर ज

ना छलापडे, परन्तु कर्मो संयोगसे मूढ हो एकेंद्रिया दिक योनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता है. और जब कर्म-रूप मैल दूर हुवा देहा ध्यास छुटा कि निजरूपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता हैं.

संसारी जीवों को अनादि कालसे, ज्ञानावरणियादि कर्मोंका सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइ है. इस लिये विभाव रूप हो रहा है. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्वच्छता नष्ट होती है, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रूप हुवा है. जब भव स्थिती परिपक्क होती है तब सम्यक्त्वादि सामग्री प्राप्त होती है. तब कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होती है, उसी वक्त जीव सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समय में त्रिकालके सर्व पदार्थ जानने देखने लगता है.

सिद्धा जैसा जीव है । जीव सोही सिद्ध होए ॥
कर्म मैलका अंतरा । बूजे विरला कोए ॥४॥
कर्म पुद्गल रूप है । जीव रूप है ज्ञान ॥
दो मिलके बहुरूप है । विछडे पद निर्वान ॥५॥

इस लिये यह जीव सिद्ध स्वरूपी ही है, क्यों कि जीव ही सिध्य पदको प्राप्तकर शक्ता है. अन्य नहीं है. देखइतनाही कि कर्म और जीव का मूल स्वभाव पद

चाहिना चाहिये; कर्म हैं सो पुद्गल जनित है, पुद्गल मय रूपी निर्जीव जड पदार्थ है, और जीव ज्ञान स्वरूप अरूपी चैतना वंत है. इन दोनोका अनादि सम्बन्ध के सबबसेही देहा ध्यास के प्रभावसे ही भवांतरों में अनेक तरहका रूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले जक्त में थोडे हैं. जो यह जानेंगे, वोही कर्म सम्बन्ध तोड, निर्वाण प्राप्त करने का उपाय करेंगे.

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो, सो विस्स सोड्ढगइ ॥ १ ॥

द्रव्य संग्रह.

'जीवो'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदि मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधि रहित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसे जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे अनादि कर्म बन्धके वशसे अशु

१ तीनकालमें जीवके चार प्राण होते हैं, इंद्रियोके अगोचर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण. २ अनंत विर्य रूप बल प्राण, उसका अनंत वा हिस्सा. मन 'बल' वचन बल, कायाबल, प्राण है. ३ अनंत शुद्ध चैतन्य प्राण [illegible] आदी अंत सहित आयु प्राण है. और ४ श्वासोश्वास [illegible] सहित शुद्ध चित्त प्राण, उससे उलट श्वासोश्वास [illegible] यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीता है. और जीवेगा सो व्यवहार नयसे जीव है.

न लगापडे, परन्तु कर्मों संयोगसे मूढ हो एकेंद्रिया दिकयोनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता है. और जब कर्म-रूप मैल दूर हुवा देहा ध्यास छुटा कि निजरूपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता हैं.

संसारी जीवों को अनादि कालसे, ज्ञानावरणियादि कर्मोंका सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइ है. इस लिये विभाव रूप हो रहा है. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्वच्छता नष्ट होती है, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रूप हुवा है. जब भव स्थिती परिपक्व होती है तब सम्यक्त्वादि सामग्री प्राप्त होती है. तब कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होती है, उसी हींवक्त जीव सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समय में त्रिकालके सर्व पदार्थ जानने देखने लगता है.

सिद्धा जैसा जीव है। जीव सोही सिद्ध होए ॥
कर्म मैलका अंतरा। बूजे विरला कोए ॥४॥
कर्म पुद्गल रूप है। जीव रूप है ज्ञान ॥
दो मिलके बहुरूप है। विछडे पद निर्वान ॥५॥

इस लिए यह जीव सिद्ध स्वरूपी ही है, क्यों कि जीव ही सिद्ध पदको प्राप्तकर शक्ता है. अन्य नही है. देखइतनाही कि कर्म और जीव का मूल स्वभाव पद

चाहिना चाहिये; कर्म हैं सो पुद्गल जनित है, पुद्गल मय रूपी निर्जीव जड पदार्थ है, और जीव ज्ञान स्वरूप अरूपी चैतना वंत है. इन दोनोका अनादि सम्बन्ध के सबबसेही देहा ध्यान के प्रभावसे ही भवांतरों में अनेक तरहका रूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले जक्त में थोडे हैं. जो यह जानेंगे. वोही कर्म सम्बन्ध तोड, निर्वाण प्राप्त करने का उपाय करेंगे.

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो. सो विस्स सोड्ढगइ ॥ १ ॥

द्रव्य संग्रह.

'जीवो'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदि मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधि रहित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसे जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे अनादि कर्म बन्धके वशसे अशु

---

१ त्रीकालमें जीवके चार प्राण होते हैं, इन्द्रियोके अगोचर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण. २ अनंत विर्य रूप बलप्राण, उसका अनंत वा हिस्सा. मन 'बल' वचन बल, कायाबल, प्राण है. ३ अनंत शुद्ध चैतन्य प्राण उससे विपरीत आदी अंत सहित आयु-प्राण है. और ४ श्वासोश्वासादि खेद रहित शुद्ध चित्त प्राण, उससे उलट श्वासोश्वास प्राण है यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे, जो जीया है. और जीवेगा वो व्यवहार नयसे जीव है.

द्ध जो द्रव्य प्राण और भाव प्राण उन से जीता है. इस लिये जीव है. 'उव ओगम अ.' शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे परिपूर्ण निर्मल दो उपयोग है, वैसाही जीव है; तोभी अशुद्ध नयसे क्षयोपशमिक ज्ञान और दर्शन युक्त है. 'अमु त्त' जीव व्यवहार नयसे, मूर्ति कर्माधी न होनेसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रूप, मूर्ति दि बेना है; तोभी निश्चय नयसे अमूर्ति इन्द्रियोंके अगोचर शुद्ध स्वभावका धारक है. 'कत्ता' जीव निश्चय नय से क्रिया रहित, निरूपाधी ज्ञायकैक स्वभावका धारक है तोभी व्यवहार नयसे मन वचन कायाके व्यापारको उत्पन्न करने वाले कर्मो सहित होनेके सबबसे शुभाशुभ कर्मोका कर्ता है. सदेह परिमाणो जीव निश्चयसे स्वभावसे उत्पन्न शुद्ध लोकाकाशके समान *असंख्यात प्रदेशका धारक है. तोभी शरीर नाम कर्म

* केवल ज्ञानी आयुष्य कर्म थोडा रहे और वेदनी कर्म अधिक रहे, तब दोनोको बराबर करने आठ समयमें समुद्घात होती है. आत्म उ   का पहिले १ समय चउदे राजु लोकम उं   चा दंड. होवे, दूसरे समय कपाट, तीसरे समय मथन, चोथे समय अंतर पुरे. (उस वक्त सर्व लोकमें आत्मा   जानो .) पांचवे समय अंतर सारे, छट्ठे समय मथन सारे सातवे समय कपाट सारे, और आठमे समय दंड सारे.

मोंदय से उत्पन्न संकोच विस्तारके स्वाधीन हो. देह प्रमाणे होता है. जैसे दीपक भाजन प्रमाणें प्रकाश कर्त है. 'भोक्ता' जीव शुद्ध द्रव्यार्थिक नयमे रागादि विकल्प रहित, उपाधी से शुन्य है. और आत्मस्वभाव से उत्पन्न हुव सुख रूपीअमृत को भोगवने वाला है, तोभी अशुद्ध नयमे पूर्वोक्त सुख रूप भोजन के अभावसे शुभा शुभ कर्म से उत्पन्न हुये सुख और दुःखका भोगवने वाला है. संसारस्थ' जीव शुद्ध निश्चय नय से संसार राहित, नित्यानन्द रुप एक स्वभावका धारक है, तोभी अशुद्ध नय से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव=और भव इन पांच प्रकार के संसार मैं रहता है. 'सिद्धा' जीव व्यवहार नय से निज आत्म की प्राप्ति स्वरूप जो सिद्धत्व है. उस के प्रतिपक्षी कर्मोदय से असिद्ध है, तोभी निश्चय नय से अनंत ज्ञानादि गुण के स्वभावका धारक होने से सिद्ध है. विस्ससोड्ड गइ, जीव व्यवहार से चार गतिमें भ्रमण करने वाले कर्मोदय से उंची नीची तिरछी दीशोंमे गमन करने वाला है, तोभी निश्चय से केवल ज्ञानादि अनंत गुणोंकी प्राप्ति रूप जो मोक्ष है उसमें जाती वक्त स्वभावेजही उर्ध गमनकर्ता है.

शुद्ध चैतन्य उज्वल द्रव्य। रह्यो कर्म मल छाय॥

तप संयमसे धोवतां । ज्ञान ज्योति बढ जाय॥१॥

ऐसा जाण मुमुक्षु प्राणीयों ! देह पिण्ड कर्मपिण्ड से आत्मा चैतन्यको अलग करने का उपाय ज्ञान युक्त तप संयम करो कि जिससे कर्म रहीत शुद्ध, चैतन्य,* ज्ञान स्वरूप बन जाय, क्यों की ज्ञान दि रत्नों का भाजन चैतन्यही है, ज्यों चांदी खटाइ से धोनेसे उज्वलता आतीहै, तैसे चैतन्य उज्वलहो—

ज्ञानथकी जाणे सकल । दर्शन श्रद्धा रूप ॥
चारित्र थी आयत रूक । तपस्या क्षपन स्वरूप ॥२॥

ज्ञान स चैतन्य की और कर्म की परिणती पहचाने, दर्शन से उसे जिनोक्त आगम प्रमाणे सत्य श्रद्धे, चारित्रसे जीव और कर्मको अलग करनेके मार्गे लगे और तप करके जीव और कर्म अलग करे; यह उपाय.

जीव कर्म भिन्न २ करो । मनुष्य जनमको पाय ॥
ज्ञानानात्म वैराग्य से. धैर्य ध्यान जगाय ॥२॥
ज्ञानानात्म वैराग्य से. धैर्य ध्यान जगाय ॥२॥

मनुष्य जन्ममेंही होता है. इस लिये हे मोक्षार्थीयों ! यह इष्टार्थ सिद्धिका अवसर मनुष्य जन्मादि सामग्री प्राप्त हुइ है तो अब वैराग्य, धैर्य युक्त

* जैसे स्फाटिक रत्न स्वभावसेही निर्मल उज्वल होता है. परंतु उसके नीचे अन्य रक्तादि रंगका पदार्थ रखनेसे वो रंगमय दिखता है, तैसेही आत्मा कर्मोदय प्रमाणेही भासता है. परन्तु है निर्मल.

धारण कर ज्ञान युक्त ध्यानस्त बन जीवको कर्मसे अ लग करो.!!

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका, तथा उन्हे भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं. *

---

* पिंडस्थ ध्यान मे संस्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान ज्योतिको प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते हैं कि-शुभ ध्यान में कहे मुजब इत्यादि शु भ भावनाओ युक्त ध्यानस्त हो अन्तःकरण में विचार बा-हिर श्वास निकलते कि मै स्वस्थान छोड बाहिर आया और पुनः अन्दर श्वास जाती वक्त विचार कि मै अन्दर चला. यों विचारही विचारसे सिरस्थानसे कंठस्थान और कंठस्थान से नाभी कमलस्थान पे जा विराजमान होवे. ओर वहां स्थिर हो अन्दरकी द्रष्टीको खुल्ली कर देखे ऐसा भाषा होगा कि मैं नाभी कमल पेही संस्थित हूं. यों जब अपनी आत्मा का सूक्ष्म स्वरूपका भास होवे. तब उस सूक्ष्म स्वरूपकी द्रष्टी खुल्ली कर नाभीके आजु बाजू चारही तर्फ अवलोकन करे, यों धैर्य और द्रढ निश्चयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्धकार दिखाय तो उसी वक्त द्रढ निश्चयसे कल्पना करे कि इस अन्धकारका शिघ्र नाश होवो, और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका मेरे हृदय में प्रकाश होवो. यों कहता हुवा सूक्ष्म रूपसेही आकाशकी तर्फ (ऊंचे) अवलोकन करनेका

ऐसेही पिण्डस्थ ध्यान में "सप्त भंगीसे आत्म

उसी वक्त सूर्य जैसा प्रकाश अन्तःकरण में दिखने लगे गा, यों हमेशा अभ्यास रखनेसे अंतर आत्माकी ज्ञान ज्योतीमें दिनो दिन विशुद्धता की अधिकता होती है. और अंतरिक गुप्त वस्तुओ जाणनेमें आने लगती है, और अनेक गुप्त शक्तीयों प्रगट होती है.

पिण्डस्थ ध्यान मे ५ तत्वके विचार करनेसे भी ज्ञान ज्योति प्रकाश होती है, ऐसा भी एक ग्रन्थकार लिखते हैं. सो ध्यानस्त हो, द्रढता पूर्वक पहले पृथवी तत्वका विचार करता गोलाकार पृथवी के मध्य क्षीर सागर और उस के मध्य में जंबुद्वीपका कमल ठेरावे मेरु पर्वत को किरणिका ठेहरा उस में सिंहासनकी कल्पना कर उसपे आप बैठे. फिर दुसरा अग्नि तत्वका विचार करता. हृदय में. १६ पंखडीके कमलपे 'अ' स्वरसे लगा १६ मा अः श्वरकी स्थापन कर मध्य में 'र्हँ' बीज स्थापे, फिर विचार करे की इस में धुम्र निकलने लगा, और महाज्वला प्रगट हो कमल को भस्म कर भक्षके अभावसे अग्नि शांत हुइ. फिर ३ वायूका विचार करे कि महा वायु प्रगट हो मेरुको कम्पाने लगा. और पहलेकी भस्म उडा ले गया, जिससे वो जगा साफ होगइ. फिर ४ पाणी तत्व विचारे कि आकाश में गर्जारवहो बूंद पडने लगे और महामेघ वर्षके उस स्थानको अत्यंत स्वच्छ कर दीया. और मेघ भगगया. फिर ५ मा आकाश तत्व विचारेकी अब मेरी आत्मा सप्त धातु मय पिंड र

तत्व" विचारे. १ प्रत्येक पदार्थ अपने २ द्रव्य चतुष्टय× द्रव्य क्षेत्र काल भव) की अपेक्षा से अस्ति रूप हैं. जैसे आत्मा में ज्ञानादी गुण का सदा आस्तीत्व होता है. इस लिये*स्यात् आस्ति होय. २ और वो ही पदार्थ अन्य (पर) द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षासे नास्ति रूप है. जैसे आत्मा जडता (अचेतन्यता) रहित है, इस लिये स्यात् नास्ति होय. ३ सर्व पदार्थ अपनी २ अपेक्षा से अस्ति रूप है. और परकी अपेक्षासे नास्ति रूप है. जैसे आत्मा में चैतन्यता की अस्ति

हित, पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशित निर्मल सवज्ञ देवतुल्य हुइ. यह दृढतासे निश्चयात्मक पननेसे हुवेहू बनाव दृष्टी आता है.

× अपने द्रव्य चतुष्टयसे सर्व पदार्थ सत्य है. जैसे आत्मा ज्ञानादि गुणका भाजन (आधार) ही है. परन्तु ज्ञानादि गुणोमें जो समय २ में फेरफार होता है सो पर्यायोंका होता है, न की स्वभावोका: २ आत्माके असंख्यात प्रदेशो से जो ज्ञानादि गुण रहे हैं सो स्वक्षेत्र है. ३ पर्यायों में जो उत्पाल व्यय क्षण २ में होता है, सो स्वकाल है. और ४ आत्माको गुणोंका और पर्यायो का जो कार्य धर्म है. सो स्वभाव है,

* स्याद् या स्यात् शब्दका अर्थ 'होगा' अर्थात् हां! ऐसेभी होगा ऐसा होता है.

और जडता की नास्ति; इस लिये एकही समय में स्यात् आस्ति नास्ति दोनो होय. ४ पदार्थ का स्वरूप एकांतता से जैसा का वैसा कहा नहीं जाय क्यों कि जो आस्ति कहतो नास्तिका और नास्ति कहै तो आस्ति का अभाव आवे. इसलिये एक ही समय में दोनो भाव प्रकाशे नहीं जाय; केवल ज्ञानी एक समय में ऊपरोक्त दोनों भावको जाणतो शक्के हैं, परंतु वाणी द्वारा वागर नहीं शक्के हैं. तो अन्य की क्या कहना. इसलिये स्यात् अवक्तव्यं, ५ एकही समयमें आत्मा में सर्वस्व पर्यायोंका सद्भाव अस्तित्व है और पर पर्यायोंका सद्भाव नास्तित्व है. और दोनो भाव एकही वक्त कहें नहीं जाय, अस्तिक है तो नास्तिका आभाव आवे, मृषा लगे, इसलिये स्याद आस्ति अवक्तव्य होय. ६ और इसही तराह जो नास्ति कहे तो आस्तिका अभाव आवे, इसलिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य होय. ७ आस्ति कें कहने से नास्ति का अभाव नास्तिके कहने से अस्तिका अभाव, और पदार्थ एकही काल में अस्ति नास्ति दोनो तरह हैं. परन्तु कहजाय नहीं. क्यों कि वाक्या तो क्रम वर्ती हैं. इसलिये स्यात् आस्ति नास्ति अवक्तव्य होय. यह आस्ति नास्ति अधिय स्यात् वाद मत से आत्म स्वरूप दर्शाया.

ऐसेही नित्य, अनित्य; सत्य, असत्य; वगैरे अनेक रीतीसे आत्म स्वरूप के विचार में जो निमग्न हो पुद्गल पिण्ड से आत्माकी भिन्नता लख, निश्चय आत्मिक बने.

यह सब पिण्डस्थ ध्यान में चिंतवन करनेका मुख्य हेतु, सर्व वस्तुओमें मन रमण करता है उससे निवार एक आत्माके तर्फ लगानेके लियेही है.*आत्माके तर्फ मन लगनेसे अन्य पुद्गलें को ग्रहण नहीं करता है, जिससे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता हैं ज्यूं२ कर्म क्षण २ में अलग हो आत्म ज्योती पूर्ण प्रकाश पाती है. तब सर्व कार्य सिद्ध होते हैं.

ऐसे पिण्डस्थ ध्यानका संक्षेपमें विचार इत्ना. ही है कि—ज्ञानादि अनंत पर्याय का पिण्ड एक मैं आत्मा हुं. और वर्णादि अनंत पर्यायका पिण्ड कर्म तथा उससे उत्पन्न हुवा शरीर है. इस लिये दोनों

---

*पाणी हारी कुंभ रु नटवर-वृतमें कामीको-कान्ता सती-पती चहाइ; गौ-वच्छ, बालक-मात, लोभी-धन चकवी-सूर्य, पपैया मेहाइ; कोकिल-अम्ब, नेसायर चन्द्र ज्यों, हंसा-दधी, मधू-मालती, ताइ, भयवंत-सरण, आयंकी-औषधी, 'अमोल' निजात्म त्यों नित्य ध्याइ. १

के स्वभाव भिन्न भिन्न होनेसे दोनो अलग २ हैं. ऐसा निश्चय होयसो पिण्डस्थ ध्यान. इस ध्यानसे भेद ज्ञान प्राप्त होता है. जिससे आत्मा स्वभावमें अत्यंत स्थिरता भाव मुक्त, क्षात, दांत, आदि गुण स्वभाविक जागृत होनेसे सर्व भयसे निवर्त्ती होती है. उन्हे महा भयंकर स्थानमें, क्षुद्र प्राणीयोंके समोह में था प्राणांतिक उपसर्गके प्रसंगमेंभी किंचितही क्षोभ प्राप्त नहीं होता है, अखंडित ध्यानकी एकाग्रता से वो स्वल्प कालमें इष्टार्थ साधते हैं.

तृतीय पत्र-"रूपस्थध्यान"

३ "रूपस्थध्यान"—रूपी परत्माके गुणमें स्थिर होना 'सो रूपस्थध्यान, अर्हंत पाहुड में कहा है.

जे जाणइ अरिहंत, दव्व गुण पज्जवेहिय;
ते जाणइ नियऽप्पा, मोह खलु जाइय लयं ॥१॥

अर्थात्—जो अर्हंत भगवंतका स्वरूप-द्रव्य, गुण, पर्याय, करके जाणेगा, वोही आत्माके स्वरूप को जाणेगा. और जो आत्माको पहचानेगा वोही मोह कर्मका नाश करेगा.

अर्हत, अरिहंत, और अरुहंत यो ३ शब्द हैं.
१ देवीन्द्र नरेंद्रादिक के पूज्य, व अतिशयादि ऋद्धि युक्त सो अर्हत. २ कर्म व राग द्वेषरूप शत्रुके नाश करे उन्हे, अरिहंत कहते हैं, और ३ जन्मांकुर, व रोगादि दुःख के अंकुरके नाश करने वालेको अरुहंत कहते हैं.

श्री अर्हत भगवंत, अनंत-ज्ञान-दर्शन-चरित्र, और अनंत तप, यह अनंत चतुष्टय कर युक्त हैं, म मव सरणके मध्यमें, अशोक वृक्षके नीचे, मणी रत्नों जडित सिंहासणके उपर, चार अंगुल अधर, छत्र, च मर, प्रभामंडल की विभूती युक्त द्वादश (१२) जात की परिषदा से परिवरे, दिव्य ध्वनी प्रकाश करते हैं, जिसका अवाज, भाद्रव के मेघके गर्जारवकी तरह,चा र कोश में, चारही तर्फ पसरता है, जिसे श्रवण कर, अच्युतेंद्र, शक्रेंद्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, (चक्रवर्ती) और बृह- स्पति जैसे विद्यामें प्रचुर, षड शास्त्र के परगामी, म हा तेजस्वी, वक्रत्वकला के धारक, महा प्रवीण प्रभू की दिव्य ध्वनी श्रवण कर, चमत्कार पाते, हैं. कि हा हा! क्या अतुल्य शक्ति? क्या विद्या सागर, एकेक वाक्य की क्या शुद्धता मधुरता सरलता इत्यादि गु णानुराग में अनुरक्त हो, हा हा कर अत्यन्त आन

न्द को प्राप्त होते हैं. जैसे क्षुधातुर मिष्टान भोजन को और तृषातुर शीतोदक को ग्रहण करता है. तैसे ही श्रोतागण जिनेश्वर के एकेक शब्द को अत्यंत प्रेमातुरता से ग्रहण कर ;हृदय को शांत करते हैं.परम वैराग्य को प्राप्त होते हैं, वाणी श्रवण करते सर्व काम को भूल एकाग्रता लगाते हैं

और भी भगवंत की सूरत, मनहर, शांत, गंभीर, महा तेजस्वी एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षणों से विभूषित. देदिप्य–झलझलाट कान्ति, सर्वोत्तम अत्यंत प्यारी मुद्रा के दर्शनसे लुब्ध होते हैं. और हृदयमें कहते हैं की, हा हा, क्या यह स्वरूप संपदा और क्या यह अपूर्व वैराग्यदशा. निकामी, अक्रोधी, आमानी, अमायी, अलोभी, अरागी, अद्वेषी निर्विकारी, निरअहंकारी, महा दयाल, महा कृपाल, महा मङ्गल, महा रक्षपाल, अशरण शरण, अतरण तारण भव दुःख वारण, जन्म सुधारण, जक्त उधारण, अचिंत्य, अतुल्य शक्तिके धारक, लिदुःख वारक, अक्षोभ, अनंत नेत्र युक्त, परम निर्यामक, परम वैद्य, परम गारूडी, परम ज्योति, परम झहाज, परम शांत परम कांत, परम दांत, परम महंत, परम इष्ट, परम मिष्ठ, परम जेष्ठ, परम श्रेष्ठ, परम पंडित, धर्म मंडित,

मिथ्या खंडित, परम उपयोगी, आत्म गुण भोगी, प रम योगी, महा त्यागी, महा वैरागी, अचिंत्य, अगम्य, महारम्य, अनंत दान लब्धि–लाभलब्धि–भोग लब्धि–उपभोग लब्धि–और बलवीर्य लब्धि के धरण हार, क्षायिक सम्यक्त्व यथा ख्यात चारित्र, केवल ज्ञान, केवल दर्शण युक्त, अष्टादश (१८) दोष र हित, चौतीश अतिशय–पैंतीस वाणी गुण सहित, परम शुक्ल लेशी, परम शुक्ल ध्यानी, अद्वैवत भावी, परम कल्याण रूप, परम शांत रूप, परम पवित्र, विचित्र, दाता-भुक्ता, सर्वज्ञ सर्व दर्शी, सिद्ध, बुद्ध, हितैषी, महा ऋषी, निरामय, (निरोग) महाचन्द्र, महा सूर्य, महा सागर, योगिंद्र मुनिन्द्र, देवाधिदेव, अचल विमल, अकलंक, अबंक, त्रिलोकतात, त्रिलोकमात त्रिलोकभ्रात, त्रिलोकईश्वर, त्रिलोकपूज्य, परम प्रतापी, परमात्म, शुद्धात्म, आनन्द कन्द, द्वन्द निकन्द लोकालोक प्रकाशिक, मिथ्या तिमिर विनाशिक, सत्य स्वरूपी, सकल सुखदायी, स्याद्वाद शैली युक्त महा देशना फरमाते हैं कि–अहो भव्य! बूजो २ (चेतो २) मोह निद्रा तजो, जागो जरा ज्ञान दृष्टी कर देखो, यह महान् पुण्योदयसे अत्युत्तम मनुष्य जन्मादि समग्री तुमारे को प्राप्त हुइ है, उसका ला

भ व्यर्थ मत गमावो. ज्ञानादि त्रि रत्नोंसे भरा हुवा
अक्षय खजाना तुमारे पास है उसे संभालो, उसीके
रक्षक बनो; इसे लूटने वाले—मोह, मद, विषय कषा
य, रूप ठगारे तुमारे पीछे लगे हैं, उनके फंदसे बचो
इनके प्रसंगसे अनंत भव भ्रमणकी श्रेणियों में जं
जो विपति सही है उसे यादकर पुनः उस दुःख साग
रमें पडनेसे डरो, और बचनेका उपाय करनेकी येही
वक्त है जो यह हाथ से छुट गइ तो पीछी हाथ ल
गनी महा मुशकिल है. जो इस वक्त को व्यर्थ गमा
देवोगे तो फिर बहुतही पश्चाताप करोगे. यह सच्च
समजो! और प्राप्त हुये दुर्लभ लाभ को मत गमावो
बनी वक्त में लाभ लेना होय सो लेलो. मानो! मा
नो!! और विकराल मायाजाल को तोड, जगतका
फंद छोड, चलो हमारे साथ, होवो हुंशार, हम अप
ना शाश्वत अविचल मोक्ष नगर में परमानन्द परम
सुख मय शाश्वत स्थान है, वहां जाते हैं. आवो जो
तुमारे को आना होय तो, वोही तुमारा घर है, वहां
गये पीछे पुनरावर्ति नहीं करना पडता है, अनंत
अक्षय अव्याबाध सुख में अनंत काल वांही रहना
होगा. चेतो! चेतो!! चेतो!!! इत्यादि अर्हत भगव
तका परमोत्कृष्ट धर्मोपदेश श्रवण कर, फरसना कर

भूत काल में अनंत जीव मोक्ष * गये, वर्तमान काल में संख्यांते जीव मोक्ष जाते हैं. और भविष्य काल में अनंत जीव मोक्ष जायंगे. इस लिये हे आत्मन् अहो मेरी प्यारी आत्मा! तूं महा भाग्योदयसे श्री जिनेश्वर भगवान का मार्ग पाया है. उनके यथा तथ्य गुणकी पहचान हुइ है. तो उन्ह जैसा होनेके लिये उनके गुणों में लव लगा, उन्हीके हुकम प्रमाणे चल उन्हने किये वोही कृत्य यथा योग्य कर, उन्ही रूप बन. तन्मय हो लयलीन होजा, जैसे स्वप्न अवस्थामें द्रष्ट वस्तुके ध्यान में लीन हो, उसही रूप आप बन जाता है. अपनी मूल स्थिती भूल जाता है; वोतो मोह दिशा है. परंतु वैसेही ज्ञान दशा में लयलीन हो अर्हत भगवानके गुणोंमें तन्मय बन कि जिसके प्रशादसे तेरी अनंत आत्म शक्ति प्रगटे और तूही अर्हन बने.

---

* अव्यवहार राशीमेंसे ६ महीने और ८ समयमें १०८ जीव निकलके निगोद कर व्यवहार उसीमें हैं, ज्यादा भी नहीं तैसे कमीभी नहीं. और इतनेही जीव व्यवहार राशीमेंसे निकल मोक्ष जाते हैं; तोभी तीनही कालमें निगोदके एक शरीरमें केजीवोंका एक अंश भी कमी(खाली) नहीं होता है ऐसा सुदृष्टतरं गणी दिगाम्बर ग्रन्थ में लिखा है और पन्नवणा सूत्र की वृत्तिमें भी लिखा है.

चतुर्थ पत्र-"रूपातीत ध्यान"

४ 'रूपातीत ध्यान'—रूपसे अतीत—रहित(अरूपी) ऐसे सिद्ध प्रमात्माका ध्यान-चिंतवन करना सो रूपातीतध्यान.

गाथा-जारिस्ससिद्धसहावो, तारिस्समहावोसव्वजीवाणं
तम्हा सिद्धंत रुइ, कायव्वा भव्व जीवेहिं. ॥१॥

सिद्ध पाहुड.

अर्थात्—जैसा सिद्ध भगवंतकी आत्माका स्वरूप है वैसाही सब जीवोंकी आत्माका स्वरूप है, इस लिये भव्य जीवोंको सिद्ध स्वरूप में रुचि करना अर्थात् सिद्ध स्वरूपका ध्यान करना.

गाथा—जं संट्ठाणं तुइहं, भवं चयं तस्स चरिम समयंमी
आसिए पए संघणं, तं संठाण ताहिं तस्स ॥३॥
दिहवाह स्संवा, जं चरिम भवे हवेज्ज सयणं,
तत्तो तीं भाग हीणं, सिद्धाणो गाहणा भणिया.४

अववाइ सूत्र.

अर्थात्—मनुष्य जन्मके चर्म (छेले) समयमें जिस आकारसे यहां शरीर रहता है; उनके आयुष्य पूर्ण हुवे बाद जीवके निजात्म प्रदेश जिस आकारसे उस शरीर के लम्बाइ पणे तृतीयांश हीन (तीसरा भाग कमी,) सिद्ध क्षेत्र लोकके अग्रभागमें वो प्रदेश

जाके जमते हैं. उसेही सिद्ध भगवंतकी अवगाहना कही जाती है. *

---

* नासिकादी स्थानमें जो छिद्र (खाली जगा) है वो भरानेसे घनाकार (निबड) प्रदेश रह जाते हैं. इसी सबब से तृतियांस अवघेणा कम हो जाती है. सिद्धकी अवघेणा जघन्य १ हाथ ४ अंगुल, मध्यम ४ हाथ १६ अंगुल, उत्कृष्ट ३३३ धनुष्य ३३ अंगुल.

प्रश्न–अरूपी और अवघेणा कैसे?

समाधान–(१) अरूपीको अरूपीही द्रष्टांतसे सिद्धी करें तो जैसे अकाश अरूपी है तो भी कहा है. लोकालाक (लोकका आकाश) सादीसांत [आदि और अंत-साहित] तथा घटाकाश मठाकाश, वगैरे तो आकाश कुछ पदार्थ है नभी आदी अंत होता है, तैसेही सिद्ध की अवगाहणा जाणना. फरक इत्नाही की आकाश तो अरूपी अचैतन्यहै, ओर सिद्ध अरूपी सचैतन्य हैं[२] किसी विद्वानसे पूछा जाय कि–आप जित्नी विद्या पढे हो वो हमे हस्तावल [हाथमें आवले के फलकी] माफिक बतावो; परंतु वो बता सक्ता नहीं है. तैसेही सिद्ध भगवंतको भी "ज्ञानं स्वरूप ममलं प्रवदन्ति संतः" अर्थात् संतः सत् पुरूष निर्मळ ज्ञानरूप बताते हैं. (३) और जो रूपी पदार्थ का द्रष्टांत देवे तो मट्टीकि मूशमें मेणका पटलगा पीतलादि धातुका रस डाल भूषणादि बनाते हैं, वो भूषण उसमेसे निकाले पीछे मूशमें मेण (मोम) का भाष मात्र आकार रहता है. तैसेही सिद्ध भगवंतका अरूपी आकारकी अवगाहणा है. [४] को-

अब वो जीव द्रव्य कैसा है, सो सूत्रसे कहते है.
"माति तत्थण गहिता, ओए अप्पाति ट्ठाणस्स खेयन्न."

अर्थात्—सिद्ध भगवंत के रूपका, या गुणका वर्णन् करने 'सव्व सरा नियट्टंता' अर्थात् अव्वक्तव्य है कइ भी शब्द मैं वरणन् करनेकी शक्ति नहीं है, क्यों कि वहां तक कल्पना विचारना दोडही नहीं शक्ति है. बडे २ ब्रह्मवेता सुर गुरू बृहस्पति सर्व शा-

---

चमे दिखता हुवा प्रतिबिंब फक्त भाव मात्र है. तैसे सिद्ध की अगाहणा (५) जोती स्वरूपी कहे जाते हैं. उसका मतलब यह है कि जैसे-कोटडीमें एक दीवा किया उसका प्रकाश उसमे समाजाता है, और बहुत दीवे कीये तो-भी उनका प्रकाश उसही कोटडीमें समाजाता है. पर-न्तु वो प्रकाक क्षेत्र रोकता नहीं है,[जगाह जादी होती नहीं हैं] ऐसेही अनंत सिद्ध मोक्ष मे हैं. और अनंतही होयँगे तोभी बिलकूल जागा रोकाती नहीं है. एक दीवेका प्रकाश जित्ने स्थलमे फैला है. वोही उसकी अव-गहणा तैसे सिद्ध की अवगहणा जाणना (३) सिद्ध भ-गवंत छद्मस्त की अपेक्षासे अरूपी हैं. (दिखते नहीं हैं.) परंतु केवल ज्ञानी तो देख शके हैं. जो केवली देखते हैं. वोही जीव द्रव्यके आत्मा प्रदेश हैं और उसीकी अ-वगाहणा समजना इत्यादी दृष्टांतसे सिद्ध की अवगाह-णा समजना चाहीये.

स्त्रों के पार गामीयों की भी बुद्धि हाल तक वहां न पहोंची, तो अब क्या पहोंचेगी? जो विशेष ही दोड करी तो इतना कह शक्ते है कि-वहां एकला जीव कर्म कलंक व सर्व संग रहित, तत् सत् चिदात्म, अपने ही प्रदेश युक्त विराज मान हैं, वो संपूर्ण ज्ञान मयेही हैं.

और भी वो जीव कैसे है, सो सूत्र से कहते हैः—

सूत्र—ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरसे, ण परिक्षण्डल, ण किण्हे, न णीले, ण लोहीए, ण हालिद्दे. णं सुकिल्ले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहि गंधे, ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाते, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे, ण मउए, ण गुरुए, ण लहुए, ण सिए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रुहे, ण इत्थि, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे सण्णे उवमा ण विज्जति, अरूवी सत्ता अपयस्स पयंणात्थि.

आचारांग सूत्र अ० ५.

अर्थात्—सिद्ध अवस्थाके विषय रहे हुये जीव नहीं लम्बे हैं, नहीं ठिंगणे हैं, नहीं लड्डु जैसे गोल हैं. नहीं तीखुण, नहीं चौखुण, नहीं चुडी जैसे मंडलाकार, नहीं काले, नहीं हरे, नहीं लाल, नहीं पीले, नहीं श्वेत, नहीं सुगन्धी, नहीं दुर्गन्धी, नहीं मिरच

जैसे तीखे, नहीं कडुवे, नहीं कषायले, नहीं खट्टे, न नहीं मीठे, नहीं कठिण, नहीं नरम [कोमल] नहीं भारी [वजनदार] नहीं हलके, नहीं ठन्डे, नहीं उष्ण (गरम) नहीं स्निग्ध (चीकणे) नहीं लुख्खे, इत्यादि किसी भी प्रकार के नहीं हैं. अब उनको जन्म भी नहीं, मरना भी नहीं, किसीका संग भी नहीं; नहीं है वो स्त्री, नहीं है पुरुष, नहीं है नपुंसक, परन्तु सर्व पदार्थके जाण पिरिज्ञाता=संपूर्ण पणे जाणते हुये, सदा स्थिरभूत विमाराजमान हैं, उनको ओपमा दी जाय ऐसा पदार्थ एकही जगत् में नहीं हैं क्यों क्यों कि वोतो अरूपीही हैं, और ओपमा देने लाय क व बचनेसे कहे जावें वो पदार्थ रूपी हैं, इस लिये अरूपी को रूपी की ओपमा छजती नहीं हैं, और उनकी भी अवस्था किसी प्रकारके विशेषण देने लायक हैही नहीं; इस लिये ही कहा जाता है कि उन को जान ने के लिये बताने के लिये, कोइ भी शब्द शाक्तिवंत नहीं हैं. फक्त व्यक्ति रूपही गुणोच्चारन कर सक्ते हैं.

गाथा-जहा सव्व काम गुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयण कोइ
तण्हा छुहा विमुको, अच्छेज जहा अमियतित्तो १८
इय सव्व कालातित्ते, अउलं निव्वाण मुवगया सिद्धा

सासय मव्वा वाहं, वट्टइ सुही सुहं पत्तो. १९

ऊववाइ सूत्र.

अर्थात्–यथा दृष्टांत कोइ पुण्यवन्त, श्रीमंत सर्व प्रकार के सुख कि सामग्री युक्त वो इच्छित–रागणी आदि श्रवण कर, नाटकादि अवलोकन कर, पुष्पादी सूंघकर, षड रस भोजन इच्छित भोगवकर, और इच्छित सर्व सुखों का भोगोपभोग ले कर तृप्त हो, निश्चिन्त सुख सेजा मे अनन्द के साथ बेठा है, सर्व कामना रहित संतुष्ट हुवा है, किसी भी तरह की जिसे इच्छा न रही है. तैसेही सिद्ध भगवन्त सिद्ध स्थान में सर्व काम भोग से तृप्त, निरिछित हों; अतुल्य अनोपम, अमिश्र, शाश्वत, अव्यावाध, निरामय, अपार, सदा सुख से तप्त हुये की माफिक सदा विराज मान हैं. उनको कदापि कोइभी काल मैं, किसी भी प्रकार की किंचित मात्र इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं है, ऐसे परमानन्द परम सुख में अनंत काल संस्थित रहते हैं.

ऐसे २ अनेक सिद्ध परमात्मा के गुण, रटन मनन निदिध्यासन, एकाग्रतासे लयलीन हो ध्यान करे उस वक्त अन्य कल्पना को किंचित् मात्र अपने हृदय में प्रवेशही नहीं करनेदे, जिधर दृष्टि करे, उध

र वोही वो दृष्टि गत होवें. ऐसा लय लीन हुवा जी व दृढाभ्यास से उसही स्वरूप को ज्ञान द्रष्टि कर देखने लगे, तब सिद्ध स्वरूपकी और अपने स्वरूपकी तुल्यता करे कि-इनमे और मेरेमें क्या फरक है. कुछ नहीं, जो रूप यह है वोही यह है. मेरा निज स्वरूप ही परमात्मा जैसा है. सर्वज्ञ सर्व शक्ति वान निष्कलंक, निराबन्ध चैतन्य मात्र सिद्ध बुद्ध प्रमात्मा मैं ही हूं. ऐसे भेद रहित बुद्धि की निश्चलता स्थिरता होय, अपको आप शरीर रहित या कर्म कलंक रहि शुद्ध चित अनन्द मय जानने लगे. एकांतताको प्राप्त होवे. फिर द्वितीय पन बिलकुल रहे नहीं. उ न म- मय ध्याता और ध्येयका एकही रूप बन जाता है.

अशब्द मस्पर्श मरूप मव्ययं ।
तथऽरसं नित्य मगन्ध वच्चयत् ॥
अनाद्य नन्तं महतः परंध्रुवं निचाय्य ।
तं मृत्यु मुखात प्रमुच्यते ॥१५॥

कठोपनिषध-तृतीयवल्ली.

अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप गंध, रस, इन्द्रिय इन से रहित, अविनासी सदा एक से अनंत अति सूक्ष्म, उत्पन्न प्रलय रहित, अचल, इन गुणों से संयुक्त एस परमात्मा को जो पहचानेगा

वो मृत्यु की पास छूट उसही (परमात्म)रूप बनेगा.

ऐसे जिनके सर्व विकल्प दूर हो गये हैं. रागादि दोषोंका क्षय होगया है, जानने योग्य सर्व पदार्थ को यथा तथ्य जानने लगे, सर्व प्रपंचसे विमुक्त हो गये. मोक्ष स्वरूप होगये, सर्व लोकका नाथपणा जिनकी आत्मासें भाप होने लगा, ऐसे परम पुरुषको रूपातीत ध्यान के ध्याता कहीए.

इस ध्यान के प्रभाव से, अनादि जकड बन्ध जो कर्म का बन्ध है, उसे क्षण मात्र मे छेद, भेद तत्क्षिण केवल ज्ञान और केवल दर्शनको संपादन कर, निश्चय से मोक्ष सुख पावे. (यह ध्यान आगे कहेंगे उस शुक्लध्यान के पेटे में हैं.)

ऐसे शुद्ध ध्यान के प्रभाव से ध्याता पुरुषकी आत्मा निर्मल होते अष्टऋद्धि (आठ प्रकारकी आत्म शक्ती) प्रगट होती है, सो विस्तार से यहां कहते हैं.

१ "ज्ञान ऋद्धि" के १८ भेदः— १ केवल ज्ञान, २ मन पर्यव ज्ञान, ३ अवधी ज्ञान, ४ चउदे पूर्वी, ५ दश पूर्वी, ६ ❋ अष्टांग निमित, ७ 'बीज

* निमित के ८ अंग–१ अंतरीक्ष=अकशमे चंद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र बाद्दल आदि देखके, २ भूमि=पृथ्वी कंपनेसे [आदिसे पृथ्वी गत निध्यान जाने]. ३ अंग=मनुष्या-

बुद्धि' —शुद्ध क्षेत्र में योग्य वृष्टिसे धान्यकी वृद्धि होय, त्यों सहजा नंदी आत्ममे ज्ञानकी वृद्धि होय, ८ 'कोष्टक बुद्धि'—ज्यों कोठार में वस्तु विणशे नहीं त्यों ज्ञान विणशे नहीं. तथा राजा का भंडारी भंडारमेंसे वक्तोवक्त यथा योग्य माल देवे त्यों ज्ञान देवे, ९ § पदानुसारणी—एक पद के अनुसारसे सर्व ग्रन्थ समज जाय. १० संभिन्न श्रुत ¶—सूक्षम शब्दभी सुण ले, तथा एक वक्त में अनेक शब्द सुणे, ११ दुरास्वाद=भिन्न २ स्वादको एकही वक्त में जाणले, तथा दूर रहा हुवा रस को स्वादले, १२— १६ ‡ श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्वाद, स्पर्श, इन ५ ही इन्द्री की तीव्र

दिके अंग फरकनेसे, ४ स्वर=दुर्गादी पक्षीके शब्दसे, ५ लक्षण=मनुष्य पशु के लक्षण देख, ६ व्यंजन तिल मसादि व्यंजन देख, ७ उत्पात =रक्त दिशादि देख, ८ स्वपन—स्वपनसे, इन आठ कामोंसे होते हुये शुभाशुभ होतव को जाणे परंतु प्रकाशे नहीं.

§ पदानु सारणी के तीन भेद—प्रती सारी पहले पद मिलावे, अनुसारी—छेले पद मिलावे, उभयासारी—विचके पद मिला ग्रन्थ पूर्ण करे.

¶ १२ जोजन तकका शब्द सुणले.

‡ पंच इन्द्रीके विषयको ९ जोजनके अन्तरमें [illegible]

शक्ति होवे, १७ प्रतोक्त बुद्ध—उपदेशविन अन्य संयोगसे वैराग्य आवे, १८ वादीत्व शक्ति-इन्द्रादी देवका भी चरचामें पराजय करे.

२ 'क्रिया ऋद्धि' के ९ भेद-१ जलचरण—पाणीपे चले पर डूबे नहीं, २ अग्नि चरण—अग्निपे चले पर जले नहीं, ३—६ पुफ चरण—फूलपे, पतचरण—पत्तेपे, बीज चरण—बीजपे, तंतु चरण—मकडी के जालेके तंतूपे चले पर वो बिलकुल दबे नहीं, ७ श्रेणी चरण पक्षीकी तरह उडे, ८ जंघा चरण—जंघाके हाथ लगनेसे और ९ विद्याचार—विद्यके प्रभावसे क्षण मात्रमें अनेक योजन चले जाय.

३ 'वैक्रय ऋद्धि के' ११ भेद—१ अणिमा=सूक्ष्म शरीर बनावे. २ महिमा—चक्रवर्ती की ऋद्धि बनावे. ३ लघिमा-हवा के जैसा हलका शरीर करे, ४ गरिमा—वज्र जैसा भारी शरीर करे, ५ प्राप्ति—पृथवीपे रहे मेरुचुलका का स्पर्श करले. ६ प्राकाम्य=पाणीपे पृथवीकी तरह चले, और पाणी में डूबे जैसे पृथवी में डूबे, ७ ईशत्व—तीर्थंकरकी तरह समवसरणादि ऋद्धि बनावे, ८ वशत्व=सबको प्यारा लगे, ९ अप्रतिघात—पर्वतके अन्दर से भेद के निकल जाय. १० अन्तर्धान=अदृश (गुप्त) हो जाय, और ११ कामरूप

इच्छित रूप बनावे.

४ तप ऋद्धि के ७ भेद=१ उग्रतप—एक उपवास का पारणा कर दो उपवास करे, दो के पारणे तीन उपवास यों जाव जीव लग चडाते जाये सो उग्रतप. और जीवतव्यकी आशा छोड तपकरे सो उग्रोग्र तप, तथा एकांत्र उपवास करे उसमें ※ अंतराय आजाय तो बेले २ पारणा करे, यों चडाते जाय सो 'अवास्थितोग्रतप' २ 'दीत्ततवे' तप करके शरीर तो दुर्बल हो जाय, परंतु शरीर से सुगन्ध आवे. कान्ती बडे. ३ 'तत्ततवे' ज्यों तपे लोहेपे पडा हुवा पाणी सूक जाय तैसे तीव्र क्षुधा लगने से थोडा अहार करे जिससे लघुनीत बडीनीत की बाधा न होवे, और देवता से भी ज्यादा शरीर में बल आवे. तथा अनेक लब्धीओं प्राप्त होवे, ४ 'महातप' मास क्षमण जावत छमासी तप करे, क्षिणंतर रहित श्रुत ज्ञान में तल्लीन बने रहें, जिससे परम श्रुत अवधी, मन पर्यव ज्ञानकी प्राप्ति होवे, ५ 'घोर तप' महा वेदना उत्पन्न हुये भी किंचित ही कायरता न करे, औषध न लेवे,

※ पारणाका जोग नहीं बने. तथा अन्य कारणसे उपवासमें अंतराय आजाय तोफिर बेले २ पारणा करे, फिर अंतराय आवे तो तेले ३ करे यों जावजीव चडाते जाय,

ग्रहण किया तप न छोडे, उग्रह (वीकट) अभिग्रह धारण करे, शरीरकी संभाल न करे, ममत्व रहित विचारे, ६ घोर पराक्रम' स्वशक्ति तप संयमके अतीशयसे जगत् त्रयको भयभ्रांत कर सके, समुद्र शोके और पृथवी उलटी कर शके इत्यादि महाशक्तिवंत होवे ७ घोरगुण ब्रम्हचारी' नववाड विशुद्ध नव कोटि युक्त शुद्ध शील व्रतादिके प्रसाद से त्रण जगतके महा रोगको उपशमा के शांती वरता सके, सर्व भये निवारसके, व्यंतरभय, जंगम, स्थावर विष, वगैरे उपसर्ग उनपे किंचितही असर पराभव न कर सके, यह रहे वहां मार मारी दुर्भिक्षादि उपद्रव न होवे. इत्यादि महा प्रभाव वंत होवे.

५ 'बल ऋद्धि' के ३ भेदः—१ मन वलीये—राग द्वेष संकल्प विकल्प परिणाम रहित मन रहे, २ वचन वलीये—अन्तर मुहूर्त में द्वादशांगी का अभ्यास करे, बहूत काल पढते भी श्रम पैदा न होवे, ३ 'काया वलीये'—मास वर्ष पर्यंत कायुत्सर्ग करे तो भी थके नहीं ऐसे महाशक्तीवंत.

६ 'औषध ऋद्धि' के ८ भेदः—१ आमोसही—चरण रज (पग धूल) के स्पर्श से, २ खेलोसही—श्लेष्म थूक आदि स्पर्श से, ३ जलोसही—शरीर

के पसीने के स्पर्श से, ४ मलोसही—कर्ण चक्षु नाशी कादिके शरीरके मैलके स्पर्श से, ५ विपोसही—विष्ट मूत्र के स्पर्श से, और ६ 'सव्वोसही'— सर्व स्पर्श से (इन ६ का स्पर्श रोगीके होनेसे उसका) सर्व रोग नाश होवे, ७ आसीविष—विष अमृत रूप परगमें तथा वच-न श्रवण मात्रसे सर्व विष विरला जाय. ८'दृष्टी' विष रूप दृष्टि मात्रसे सर्व विष अमृत मय होजाय. और कोप कर देखे तो अमृत विषमय हो जाय, महा विकारी निर्वि कारी बने ऐसे महा शक्तीवंत.

७ 'रस ऋद्धि' के ६ भेद:—१ अस्सी विषा' कोप वंत वचन मात्र से और २ 'द्रष्टि विषा'-दृष्टी मात्र से दुसरे के प्राण नाश कर शके. ३ 'खीरासवी निरस आहार हस्त स्पर्श से क्षीर जैसा हो जाय, त था वचन मंत्र से निर्बल को पुष्ट बना दे. ४ महुरा सवी-कटु आहार स्पर्श से मधुर हो जाय, तथा वचन मधुर मद्य [सेहत) जैसे प्रगमे, (सप्पिरासवी) लुक्खा अहार स्पर्श से घृतसे संस्कार जैसा होजाय, तथा वचन से रोग गमाशके, ६ अमइरासवी-विष स्पर्श से अम्रत जैसा हो जाय तथा वचन से जेहर उ-तार शके.

८ 'क्षेत्र ऋद्धि, के २ भेद—१ अखीण माणसी

अल्प आहार स्पर्श से अखुट हो जाय. चक्रवर्ती की शैन्यश्री जीम जाय तो खुटे नहीं, २ अखीण महालय स्पर्श मात्रसे भोजन वस्त्र पात्र सर्व अखुट होय.

यह सर्व १८+९+११+७+३+८+६+२=६४ भेद लब्धी-ऋद्धि के हुये.

महातप और शुद्ध ध्यान के प्रभावे, ऐसी २ लब्धीयों आत्म शक्तीयों मुनिराजके प्रगट होती है, परंतु वे कदापि इनके फलकी इच्छा नहीं कर ते हैं., तो फोडना तो कहा रहा!

श्लोक-अहो अनन्त वीर्यो अय,मात्मा विश्वप्रकाशकः।
त्रैलोक्यं चलायत्वे, ध्यान शक्ति प्रभावतः ॥१॥

अर्थ—अहो! सम्पूर्ण विश्व (जगत्) को प्रकाशि करने वाली आत्मा! तेरी शक्तिका कोण वरणन् कर शक्के है? तूं अनंत अपार शक्तिवत है. जो तूं सच्चे मनसे ध्यान में तनमय हो कदापि अपना पराक्रम अज मावे तो एक क्षण मात्र में अधो मध्य उर्ध ती नही लोकको हला शक्ति है!! यह तो द्रव्य गुण क हे, और भावे गुणतो अनंत अक्षय मोक्ष सुखकी प्राप्तिका करनेवाला शुद्ध ध्यान है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजीका समप्रदायके बालब्रह्मचारी मुनिश्री अमोलक ऋषिजी रचित ध्यान कल्पतरू ग्रन्थका शुद्धध्यान-नामे उपशाखा समाप्तम्.

चतुर्थ शाखा-"शुक्ल ध्यान."

सुक्के झाणे चउविहे चउ प्पडोयारे पण्णते तंज्जहाः—

अर्थात्-शुक्ल ध्यान के चार पाये, चार लक्षण, चार आलंबन और चार अनुप्रेक्षा. यों १६ भेद भगवंत ने फरमाये हैं, वो जैसे हैं वैसे यहां कहते हैं:-

धर्म ध्यान की योग्यता से शुद्ध ध्यान ध्याता मुनि अधिक गुणोकों प्राप्त होते हैं. अत्यंत शुद्धता को प्राप्त होते हैं; वह धीर वीर मुनिवर शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं.

शुक्ल ध्यानके गुण.

शुक्ल ध्यानकी योग्यता जिनको प्राप्त होती है उनकी आत्मा में स्वभाविकता से सद्गुणोंका उद्भव होता है वह गुण 'सागार धर्मामृत' ग्रन्थकी टीकामे इस तरहे कहा है.

श्लोक—यस्यन्द्रियाणी विषयेषु निवृत्तानि,

सङ्कल्प मप्य विकल्प विकार दोषैः
योगै सदा तिमिहर निशितान्तरात्मा,
ध्यानं तु शुक्ल मिति तत्प्रवदान्ति तज्ज्ञः

यस्या-सू—१ जो इन्द्रियातीत होय अर्थात् पंच इन्द्रियोंकी २३* विषय और २४० विकार से

---

*पांच इन्द्रिके २३ विषय और २४० विकार—१ श्रुतेन्द्री के जीव शब्द अजीव शब्द और मिश्र यह शब्द ३ विषय. यह ३शुभ और अशुभ यों ६. इन ६ पे राग और द्वेष यों १२ विकार. २ चक्षु इन्द्री के काला, हरा, लाल, पीला, श्वेत, यह ५ विषय. यह ५ सचित्त, ५ अचित्त, और ५ मिश्र यों १५ शुभ और १५ अशुभ यों ३० पे राग और ३० पे द्वेष यह ६० विकार. ३ घ्रणेंद्रीके सुगंध और दूगंध ये २ विषय. यह सचित्त अचित्त और मिश्र यों ६ पे राग और ६ पे द्वेष यह १२ विकार. ४ रसेंद्री के खट्टा, मीठा तीखा कडु, कषायला ये ५ विषय. यह सचित्त अचित्त और मिश्र १५ ये १५ शुभ और १५ अशुभ यो ३०, इन ३० पे राग और ३० पे द्वेष यों रसेंद्री के ६० विकार. ५ स्पर्शेन्द्री हलका, भारी, सीत, उष्ण, रूक्ष, चिकग, नरम, कठिण, ये ८ विषय. यह सचित्त अचित्त मिश्र यों २४ शुभ और २४ अशुभ यों ४८ पे राग और ४८ पे द्वेष, यों ९६. सर्व २३ विषय और २४०विकार पांचो इन्द्रियों के होते हैं.

निवृत हो शांत बन कुमार्गमे प्रवेश करनेसे अटक ग इ. २ इच्छातित–अर्थात् उनका मन सर्व प्रकारकी इच्छा-चहासे निवृत्त गया, जिससे उनके चित्त में किसीभी प्रकार का संकल्प विकल्प (चलविचल) पणा नहीं रहा, एकांत न्याय मार्ग के तर्फ लग गया, सुरांगना और सुरेंद्रकी ऋद्धि भी उनके चित्तको क्षोभ उपजा नहीं शक्ति है, ध्यान से चला नहीं शक्ति है. तथा इस लोकमे पूजा श्लाघा, और परलोक में देवादिककी ऋद्धि की वांछा न होवे, मेरु समान प्रणामकी धारा स्थिरी भूत हुइ है. ३ योगातीत-अर्थात् मन वचन और कायके योग्यका निरुंधन किया, मनको आत्म ज्ञानमें रमावे, वचनविन मतलव न उचारे, और काया का हलन चलन विन प्रयोजन नहीं होवे. 'ठाण ठिय' एक स्थान स्थिरी भूत करे, ४ कषायतीत. क्रोधादि कषाय की लाय [अग्नि] को बुजाके शांत शीतल बन गये है. अपमानादि मरणांतक जैसे घोरं उपसर्ग होने से भी कदापि कम्पित होने तो दूर रहा, परन्तु मनमेंभी दुभाव न लावे. ५ * क्रियातीत-अर्थात्

* १३ तेरे क्रिया—१ मतलव से कर्म करे सो अर्थी दंड क्रिया. २ विना मतलव करे सो अनर्थ दंड क्रिया. ३ जीव घात करे सो हिंसा दंड ४आचिंत कर्म हो-

का-यिकादिक २५ क्रियासे उनकी निवृती हुइ है. मनादि योगसे सर्व वृती वनने से बाह्याभ्यांतर क्रिया आर्नी सर्वथा वन्द होनेसे निष्क्रिय वने है. ६ दृढ संहनन. ७ शुद्ध चरित्र, जिनोक्त क्रिया करने वाले. विशुध अध्यावशायी, ८ शौच-विकलता रहित. ९ निष्कंप अडोल वृती. इन गुणो युक्त होवे, वे शुक्ल ध्यान कर सकु ते हैं. ऐसे गुणवाले शुक्ल ध्यान ध्याते हैं जिसका वरणन् आगे च्यार विभाग करके कहते हैं.

प्रथम प्रति शाखा-शुक्लध्यानकेपाये.

सूत्र—पुहत वीयकेस वीयारी, एगत्त वीयके अवीयारी, सुहुम किरिय अप्पाडिवाइ,सुमच्छिन किरिए आणियट्टि.

अर्थ-१ पृथक्त्व-वितर्क, २ एकत्व-वितर्क,३ सूक्ष्म क्रिया, अप्रतिपाति, और ४ व्युछिन्न क्रिया अनिर्वृत्ती ध्याता.

जाय सो अकस्मात दंड. ५ भरम से घात करे सो दृष्टी विपरियासीया दंड. ६ झूठ बोले सो मोषवती दंड. ७ चोरी करे सो अदत्त दान दंड. ८ अशुभ ध्यान ध्यावे सो अध्यात्मिक. ९ अभीमान करे सो मानवति. १० भि त्रपे द्वेष करेसो मित्र दोषवति. ११ कपट करेसो मायावति १२ और लालच करे सो लोभवति (इन १२ क्रियासे निवृते लग) १३ वी इरियावही सूक्ष्म क्रिया केवळज्ञानीकी. यह १३ क्रिया सुयगडांग सूत्रके द्वितिय श्रुतस्कंधमे हैं.

यह शुक्लध्यानके ४ पाये. जैसे मकानकी मजबूतीके लिये पाये (नींव) की मजबूती-पक्काइ करते हैं, तैसेही शुक्ल ध्यानी ध्यानकी स्थिरता रूप चार प्रकारके विचार करते हैं.

प्रथम पत्र—"पृथक्त्व वितर्क"

१ पृथक्त्व वितर्क *—जीवा जीव की पर्याय का प्रथक २ (अलग २) विचार करे, अर्थात् श्रुतज्ञान (शास्त्रोक्तरीत) से पहले जीव की पर्याय का विचार करते अजीव की पर्याय में प्रवेश करे; और फिर अजीव की पर्याय का विचार करते जीवकी पर्याय में प्रवेश करे, नय, निक्षेपे, प्रमाण, स्वभाव, विभाव इत्यादि रीतीसे भिन्न २ करके चिंतवन करे. तथा आत्मा द्रव्यसे धर्मास्ती का पृथक पणा करे, द्रव्य गुण पर्याय का भी पृथक पणा करे, आत्मा के सामान्य और विशेष गुणका पृथक पणा करे, एक पर्याय के भी द्रव्य गुण पर्याय का पृथक पणा चिंत

* पृथक—विविध प्रकार, वितर्क—श्रुत ज्ञानसे विचार. अर्थात्—व्यंजन संक्रम सो अभिधान, उसका हुवा. २ अर्थ संक्रम अर्थका बोध और वो प्रगम. ३ योग संक्रम मनादी त्रियोग में रमण, ये तीन संक्रम इस पाये में होते हैं.

व, और आत्मा के असंख्य प्रदेशों में से एक प्रदेश को भी व्यंजन अर्थ योग से भिन्न पणा द्रव्य गुण पर्याय विचारे! यों विविध रूप से एकेक वस्तु का विचार करते उस में प्रवेश कर, वीतर्क अनेक प्रकारके तर्क वीतर्क उपजावे, और उसका अपनेही मन से समाधान करते जाय. ऐसे उसमे तल्लीन बने. फिर अपनी आत्मा की तर्फ लक्ष पहोंचावे कि यह प्रत्यक्ष दिखता पुद्गल पिण्ड और अन्दर रही आत्मा की चैतन्यता, दोनो अलग २ दिखती हैं. प्रत्यक्ष भाष होते हैं. परन्तु अनादि काल की एकत्वता के कारण से वह्य में एक रूप दिखते हैं, तो भी निज २ गुण से दोनों अलग २ हैं. जैसे क्षीर नीर (दुग्ध पाणी) मिलनेसे एक रूप हो जाताहै. तो भी दुग्ध दुग्ध के स्वभाव में है. और पाणी पाणी के स्वभाव में है. जो एकत्व होय तो हंसके चूंचके पुद्गल के प्रभाव से अलग २ कैसे हो जाते हैं. ऐसेही देह [शरीर] और जीव, तथा कर्म और जीव, ऐक्यता रूप दिखते हैं, परन्तु चैतन्यका चैतन्य गुण, और जडका जड गुण, निज २ सत्तासें अलग है, ऐसा निश्चयसे जान दोनोकी पृथकता का त्याग कर, निज चैतन्य स्वभाव में स्थिरता होवे, द्वादशांग वाणी के पाणी रूप समुद्र में

गोता खावे. यह ध्यान चउदे पूर्व के पाठी कोही हो ता है. यह ध्यान मन बचन काय के योगों की द्रढ ता से होता ही रहता है. यह ध्यान ध्याती वक्त यो गोका पटला होता ही रहता है एक योगसे दुसरे में और दुसरे से तीसरे में यों योगों का पटला होताही रहता है- विचार पलटने से ही पृथक वितर्क ध्यान इसका नाम हैं. ८, ९, १०, ११, इन गुण स्थान में मुनि को होता है. इस ध्यान से चित्त शांत हो जा ता है, आत्मा अभ्यंतर दृष्टीको प्राप्त होता है, इन्द्रि यों निर्वीकार होती है, और मोह का क्षय तथा उप शम होता है.

द्वितीय पत्र-"एकत्व वितर्क"

२ एकत्व वितर्क—इन का विचार पहले पाये से उलट है, अर्थात् पहले पाये में पृथक २(अलग२) वीतर्क-तर्कों कही, और इस में एकत्व ऐक्यता रूप वितर्क-तर्कों है. यह विचार स्वभाविक होता है, इस पाये वाले ध्यानीयों का विचार पलटता नहीं है, ए क द्रव्य को व एक पर्याय को व एक अणुमात्र को, चिन्तवते, उसी में एकाग्रता लगावे, मेरू परे स्थिरी भूत हो जावे. यह ध्यान फक्त १२ में गुण स्थान में

होता है, इस ध्यान में संलग्न हुये पीछे, क्षण मात्र में मोह कर्म की प्रकृतियों का नाश करे; उसही के साथ ज्ञान वराणिय, दर्शना वार्णिय. और अंतराय, य ह तीनही कर्म प्रलय होजाते हैं. अर्थात् चारही घन घाती कर्म खपाते हैं, (यहां तेरमा गुण स्थान प्राप्त होता हैं और दुसरे पाये से आगे बढते हैं.) के उसी वक्त केवल ज्ञान और कैवल्य दर्शनकी प्राप्ति होतीहै (कैवल ज्ञान की महिमा) यह कैवल ज्ञान अपूर्व है अर्थात् पहले कभी ही प्राप्त नहीं हुवा, अवलही पाये हैं. केवल ज्ञानी सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं. सर्व लोका लोक, वाह्याभ्यंतर, सुक्ष्मबादर, सर्व पदार्थ हस्तावल की तरह जानते देखते हैं, त्रिकाल के हो तव को एकही समय मात्र में देखलेते हैं. अनंत दान लब्धि भोग लब्धि उपभोग लब्धि, लाभ लब्धि और वल वीर्य [शक्ति] लब्धि, की प्राप्ति होती है. उसी वक्त देविन्द्र मुनिन्द्र (आचार्य) उनको नमस्कार करते हैं. (और जो उनो ने पहले के तीसरे भव में तीर्थंकर गोत्र की उपार्जना करी होय तो) उसीवक्त समव सरण की रचना होती है. उसके मध्य भाग में ३४ अतिशय कर के विराजमान होते हैं. और ३५ गुण युक्त वाणी का प्रकाश करते हैं; उस वाणी रूप

सूर्य का का उदय होनेसे मिथ्यत्व तिमिर (अन्धकार-) का तत्क्षण नाश होते हैं. और भव्य जन रूप कमलों का बन परफूलित होता है, उनके सद्बोध श्रवण से हलू कर्मी जीव सुपन्थ लगके भव भ्रमण रूप या संचित पापरूप कचरेको जलाके भस्म करते हैं, और मोक्ष के सन्मुख हो मोक्ष को प्राप्त करते हैं. ऐसा परमोपकार का कर्ता केवल ज्ञान है, केवल ज्ञानीही तीसरे पायको प्राप्त होते हैं.

तृतीय पत्र–"सूक्ष्म क्रिया."

३ सूक्ष्म क्रिया=अप्रतिपाति यह तेर में गुणस्थान में प्रवर्तत केवल ज्ञानीयों को होथा है, सूक्ष-थोडी क्रिया-कर्म की रज रहे, अर्थात् जैसे भुंजा हुवा अनाज खाने से पेट तो भरा जाता है परंतु बाया हुवा उगता नहीं है, तैसेही अघातीये कर्म की सत्तासे चलनादि क्रिया कर सक्ते हैं, परंतु वो कर्म भवांकुर उत्पन्न नहीं कर सक्ते हैं. आयुष्य है वहांतक है. और उनके योगसे सूक्ष्म इर्या वही क्रिया लगती है, अर्थात् मन वचन कायाके शुभ योगकी प्रवृती होते, अहार, निहारादि करते सूक्ष्म जीवोंकी विराधना होने से क्रिया लगे, उसे पहले समय बन्धे, दूसरे

समय वेदे. और तीसरे समय निर्जरे, [दूर करे] जैसे काँचपे लगी हूइ रज, हवासे दूर होय; त्यों क्रिया दूर हो जाती है. और अप्रतिपाति कहीये आया हूवा ज्ञान पीछा जाता नहीं है; अर्थात्, मति आदि चार ज्ञान तो परिणामों की वृद्धि से बढते हैं, और हीनतासे चले भी जाते हैं परंतु केवल ज्ञान आया हूवा पीछा जाता नहीं है, और संपूर्णता है. इस लिये हा नी वृधीभी नहीं होती है.

चतुर्थ पत्र-"समुछिन्न क्रिया"

४ समुच्छिन्न क्रिया-अनिवृति-यह चौथा पाया चउद में (छेले) गुणस्थान में होता है, चउदवे गुणस्थान का नाम अयोगी केवली है, अर्थात्-वो मन, बचन, कायाके योग रहित हो जाते हैं, जिससे समुच्छिन्न क्रिया' अर्थात्-सर्व क्रिया नष्ट हो जाती है. जहां योग और लेश्या नहीं वहां क्रिया का काम ही नहीं रहता है; वो अक्रिय होते हैं, और 'निवृति सो शैलेशी (मेरू पर्वत जैसी स्थिर) अवस्थाको प्राप्त होते हैं, जिससे वो शुद्ध चित पूर्णानन्द, परम विशुद्धता निर्मलता होती है, अघातिक कर्मका नाश हो, शुद्ध चैतन्यता प्रगट हो जाती है, फिर वो उस

स्वभावसे कदापि निवृतते नहीं हैं. मोक्ष पधारे उस ही स्थिती में अनंत काल कायम बने रहते है, यह शुक्ल ध्यान का चौथा पाया.

द्वितीय प्रतिशाखा-शुक्लध्यानके लक्षण

सूत्र-सुक्कसणं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णता तंजहा. विवेगे, विउसग्गे, अवहे, असमोहे.

अर्थ-शुक्लध्यान ध्याताके चार लक्षण (पहचन) भगवंतने फरमाये सो कहते हैं१ विवक्त=निवृत्ती भाव, २ व्युत्सर्ग-सर्व सङ्ग परित्याग, ३ अवस्थित-स्थिरी भूत, और ४ अमोह-मोह ममत्व रहित.

प्रथम पत्र-"विवक्त"

१ विवक्त शुक्लध्यानीका सदा यह विचार रहता है

गाथा-एगो मे सासउ अप्पा, नाण दंसण संजओ।
सेसामे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लरकणा. ॥१॥

अर्थ-मै एक हूं. मेरा दूसरा कोइ नहीं है. मै दूसरे किसीका नहीं हूं. अर्थात् मुझे किसीभी द्रव्यनें उत्पन्न नहीं किया. जीव द्रव्य आनादि अनंत है. इस को उत्पन्न करनेकी या नाश करनेकी शक्ति किसी भी अन्य द्रव्यनें नहीं है. तैसही यह कधी उत्पन्नभी नहीं हुवा, क्यों कि अनादी है और कधी नाश भी

नहीं होनेका, क्यों कि अविनाशी और अनंत हूं. इस लियेही कहा है की "सासउ अप्पा" अर्थात् आत्मा शाश्वती है, जो उपजता है उसका नाशभी होता है, आत्मा उत्पन्न नहीं हुइ, इसी लिये इस का नाश भी नहीं है. आत्म शाश्वती है. आत्मा-असंग है. अभंग है, अरंग है, सदा एकही चैतन्यता गुणमें रमण कर्ता है. पर सङ्ग की इसे कुछ जरूरही नहीं है. आत्मा का निज गुण ज्ञान और दर्शन है. वो अनादि अनंत है. यह ज्ञान और दर्शन कहने रूप दो है परन्तु सङ्गत्व से एकही है. क्यों कि इकेला ज्ञान कोइ स्थान विशेष काल ठहर शक्ता नहीं है, ज्ञानके साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है. ज्ञानका अर्थ जानना, और दर्शनका अर्थ श्रद्धना ऐसा होता है, येही जीवके लक्षण हैं. इन सिवाय और जो कूछ है * सूक्ष्म (अदृष्ठ)

* पुद्गल ६ प्रकारके होते है, १ बादर बादर जो टुकडे हुये पीछे आपसमें नहीं मिल जैसे पत्थर काष्ठ वगैरे २ बादर—जो टुकडे (अलग २)हुये पीछे मिलजाय जैसे घृत तेलदूध वगैरे. ३ बादर सूक्ष्म—दिखे परन्तु ग्रहण नही कि ये जाय' जैसे धूप छाया चांदनी वगैरे. ४ सूक्ष्म—बादर—शरीर को लगे परन्तु दिखे नहीं जैसे हवा सुगन्ध वगैरे. ५ सुक्ष्म—प्रमाणु ओं जो एकके दो नहीं होये ६ सूक्ष्म सूक्ष्म—कर्म वर्गणा के पुद्गल—गोमट सार.

पदार्थ, व बादर (दृश्य)पदार्थ यह सब चैतन्य द्रव्य से स्वभावमें और गुणमें अलग हैं क्यों कि "सव्व संजोग लक्खणं" अर्थात् यह पुद्गल है इससे इनमें संजोगिक विजोगि स्वभाव सहजही है, यह इधर उधर से आके मिलभी जाते हैं, और बिछडभी जाते हैं. इनका क्या भरोसा? ऐसा जान शुक्ल ध्यानी स्वभावसे निवृती भावको प्राप्त होते हैं, अन्य प्रवृतीको आत्म स्वभावमे प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मिलता है. क्यों. कि वो पुद्गलीक स्वभावसे स्वभावेही अलग हैं.

द्वितीय पत्र-"व्युत्सर्ग."

२ व्युत्सर्ग=शुक्ल ध्यानी सदा सर्व संगके त्यागी स्वभाव सेही होते हैं. श्री कपिल केवलीजीने फरमाया है:—

गाथा-विजहितु पुब्व संजोगं, नसिणहं काहिवि कुव्विजा
आसिणेह सिणेह करोहिं, दोस पदोसहिं मुच्चए भिख्खु॥२
सव्वं गंथ कलहंच, विप्प जहे तहा विहं भिख्खु॥
सव्वेसु काम जाएसु, पास माणा न लिप्पई ताइ॥४॥

उत्तराध्यन सूत्र-अ० ८

अर्थ—सर्व ग्रन्थ—अर्थात् बह्य संजोग पूर्वात्

मात पितादिका पश्चात स्वशुर पक्षका; और अभ्यंतर राग द्वेषका तथा कषाय रूप प्रणतीका यह दोनों महा क्लेशका कारण भाष (मालम) हुवा, जिससे 'विप्प जहिहुं-' दोनों प्रकार के सम्बन्ध से स्वभाविकही ममत्व दूर होगया, सम्बन्ध छूट गया. और शब्दादि सर्व काम, तथा गंधादि सर्व भोग पाश (बन्धन) जैसे मालम होनेसे, उनसे स्वभाविकही अलिप्त हुये, राग द्वेष रहित हुये, (पुव्व संजोग) यह पूर्व अनादि अनंत परिभ्रमण कराने वाले सम्बन्धसे पीछा कदापि कोइ भी प्रकारसे सम्बन्धन नहीं करे और (असिणेह सिणेह करेहिं) अर्थात् अस्नेहीयों से वीतराग से स्नेह करे, की जो कदापि क्लेश और बन्धन का कर्ता नहीं होता है, सच्चा बाह्याभ्यंतर शांति और मुक्ति का दाता है. ऐसा सम्बन्ध स्वभाविक होने से सर्वथा राग द्वेष की प्रणती रहित हुये, उस से ज्ञानादि त्रि रत्नकी ज्योति स्वभाविक ही प्रदिप्त हुइ. अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप चतुष्टय भुक्ता हुयें.

तृतीय पत्र—"अवस्थित."

३ अवस्थित स्थिरी भूत रहे; अनंत चतुष्टयकी

प्राप्ति से सर्वज्ञ, सर्व दर्शी, निरमोही बने, अनंत श- क्ति प्रगटी जिससे सर्व इच्छा निर मुक्त, "मेरू इव धीरा" अर्थात् ज्यों प्रचन्ड वायु से भी मेरू पर्वत च लायमान नहीं होता है, तैसेही महान प्राणांतिक क ष्ट प्राप्त हुये भी प्रणामों की धरा कदापि चलविचल नहीं होती है. सदा अचल रहे हैं.

श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के दुसरे अध्याय में कहा है:—

गाथा—समणं संजयं दंत, हणीज्जा कोइ कत्थई ।
नत्थी जीवस्स नासेति, एवं पेहाज्ज संज्जय ॥

अर्थात्—कषाय नष्ट होने से श्रमण हुये, स्वयं आत्मा को साध नेसे संयती हुये, रागादि रिपुके नष्ट होने से दमित हुये, ऐसे ऋषिराज महाराज धीराज किसी भी कर्मोदय के योग से कोइ किसी प्रकारका दुःख दे, प्राणांत होवे ऐसा उपसर्ग करे, तब वो यह विचार करें कि मेरा आत्मा अनुपसर्ग है. अखंड अ विनाशी है,

"नैनं छिदन्ति शस्त्राणी, नैवंदहंति पावकः" य ह आत्मा शस्त्र से छेदा भेदा जाती नहीं है. अग्निमें जले नहीं, पाणी में गले नहीं. इस लिये मुझे किसी

भी प्रकार का उपसर्ग कोइ भी उपजाने समर्थ नहीं हैं, "नत्थी जीवस्स नासोत्ती" जीवका नाश कदापि हेही नहीं, इस लियेमें अमर हुं. यह मनुष्य पशुया देव जिसका नाश करने प्रवृत हैं, वोतो नाशिवंतकाही नाश करतेहैं. आज कालया किसीभी आगामि कालमें नाश जरूरही होगा,मैंने क्रोडोयत्न कियेतो रेह नहीं,ऐसा निश्चय जिनकी आत्मामें होनेसे उनको किसीभी प्रकारकी बाधा पीडा दुःख मालुम पडताही नहीं है. यथा दृष्टान्त जैसे गज सुकुमाल मुनिश्वर के शिर (मस्तक) पे खीरे (अग्निके अङ्गार) रखदिये. जिस से तड २ करती खोपरी जलके भस्म भूत होगइ, परन्तु उनो ने नाक में शल्य ही नहीं डाला. खन्धक ऋषि राज के सर्व शरीर की त्वचा (चमडी) जैसे मरे पशु का चर्म उदेडे तैसे उदेडी (निकाल) डाली, वहां रक्तकी प्रनाल वह गइ परन्तु उन्हो ने जरा सीसाट (शब्द) भी नहीं किया- स्कन्व ऋषिके ५०० शिष्यों को तैली तिल को पीलता है त्यों घानी में पील डाले परन्तु वो नेत्र में जरालाली भी नहीं लाये. मेतार्ज ऋषिवर के सिरपे आला चर्म बान्ध, धूप में खडे कर दिये जिससे जिनकी आँखो छिटक पडी; परन्तु वो मनमें जराभी दुभाव नहीं लाये. ऐसे२ अनेक दा

खले शास्त्र में दिये हुवे है. ऐसे महान घोर उपसर्ग में परिणामोंकी धारा जिनोंने एकसी वनी रक्खी, यह सहज नहीं हैं. तो मोक्ष प्राप्त करना भी सहज नहीं है. उन्ह महात्मा को यह निश्चय होगयाथाकी "नत्थी जीवस्स नासोत्थी" जीव अजरामर है. और वो इसका नाश कदापि होताही नहीं है. जो जले गले है वो अलगही है. और मैं अलगही हूं. फक्त दृष्टा हूं. ऐसे परिणामों की स्थिरी भूत एकत्व धारा प्रवृतनेसे उन्होंने किंचित काल में अनंत कर्म वर्गणाका क्षय किया. अनंत, अक्षय, अव्या बाध मोक्ष के सुख प्राप्त किये.

चतुष्ट पत्र—अमोह.

४ अमोह=अर्थात् शुक्ल ध्यानी स्वभाव से ही मोह रहित निर्मोही होते हैं. "मोह वन्धति कर्माणी निर्मोहो वीमुच्यते" अर्थात्—मोह कर्म वन्ध करता है और निर्मोहपणा कर्म के वन्धन से छुडाता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्ल ध्यानी के निर्मोही अवस्था स्वभाव सेही प्राप्त हो जाती है, मोह उत्पन्न करने जैसा कोइ भी पदार्थ उनको भाप नहीं होता है.

उत्तराध्ययनजी सूत्र में चित्त मुनीश्वरते कहते हैं,

गाथा-सव्वं विलं वियं गीयं, सव्वं नट्टं वीडं वियं;
सव्वं आभरण भारा, सव्वे काम दुहा वहा.

अर्थात्—"सर्व गीत-गायन हैं सो विलाप जैसे हैं," क्यों कि विलाप शब्दका और गीत शब्दका उत्पन्न होनेका और समाव होनेका स्थान एकही है. (मुख और कान) और दोनही राग द्वेषकी परिणती से पूर्ण हैं, गायन भी प्रेम का दर्शक और उदासी का दर्शक दोनो तरहका होता है. तैसेही रुदन भी प्रेम दर्शक और उदासी दर्शक दोनो तरहका होता है. यह भाव मोह अंध जीवके मान ने उपर है. गीतें मोह मद से भरे हुये, कर्म वीकार से उद्भव हूये, चित्तको विचित्रता उपजाने वाले, इत्यादि अनेक असद्भावका कारण है. ऐसा जाण या केवल ज्ञान से प्रत्यक्ष देख, देवता किन्नर या मनुष्यादि सबन्धी गीत श्रवण करते हुये भी स्वभाव से किंचित राग द्वेषको प्राप्त नहीं होते हैं. सर्व नृत्य-नाटक हो रहे हैं सो विटंबना मात्र है. जैसी वीटंबना जीवोंकी चतुगति परिभ्रमण में होती है, वैसीही विटंबना कर्माधीन हो वेचारे करते है. कधी पुरुष, कधी स्त्री, कधी ऊंच, कधी नीच, ऐसा अनेक विचित्र रूप धारण कर अनेक जनके वृन्द में या अनेक देवोके वृन्दमें हांस्य

रुदन नृत्य आदि कर बताते हैं, और भवोंकी विचि त्रता को भूल दोनो (नाटक और प्रेक्षक) हर्षानन्द में गर्क होते हैं, जाणे चतुरगतिको विटम्बना सेही तृप्त नहीं हुये. सो अब स्वतःनाच या नृत्य देख तृप्ति करते हैं, यह विटम्बना जगतूकी देख सर्व जगत्का नाटक ज्ञान कर देखते हूयेभी राग द्वेषमय नहीं होते हैं, "सर्व आभरण भूषण भार (वजन) भूत हैं" पृथ वीसे उत्पन्न कंकर पत्थर लोहादिक सामान्य धातू और पृथवीसेही उत्पन्न हुये रजत (चांदी) सुवर्ण या हीरा पन्ना रत्नादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं. ऐसे दो नो एक से भार भुत होते भी, सरागी जीवों कंकर पत्थर का वजन देने से दुःख मान ते हैं. और सुवर्ण रत्नके भूषणों से लदे हुये फिर ते हर्ष मान ते हैं. वीतराग पुरुष यथार्थ दृष्टी से देखते हुये विभुषित पे और नग्न पे समभाव से ही राग द्वेष राहित मध्य स्थ भव में रहते हैं. और जितने जक्त में दुःख हैं, वे सबकाम भोग से ही उत्पन्न होते हैं, और जो का म भोग का अर्थी है वोही अनंत दुःख मय संसार स्सार को बढाता है-उठाता है, काम भोग की अभी लाषा वाला ही दुःख पाता है यह सर्व तमाशा प्रत्य क्ष जगत् में दिख रहा हैं, ऐसा जाण ज्ञानी महात्मा

स्वभाव से ही सर्व अभीलाषा रहित हो, शांत बने हैं, सर्वथा मोहका नाश होने से वीतरागी बने हैं.

तृतीयप्रतिशाखा-शुक्लध्यानके आलम्बन

सूत्र-सुक्कस्सणं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्त तं जहाः—खंत्ती, मुत्ती अज्जव, मद्दव.

अर्थ—शुक्ल ध्यान ध्याता को चार प्रकार का आधार है.

१ क्षमाका, २ निर्लोभताका, ३ शरलताका और ४ नम्रताका.

प्रथम पत्र—"क्षमा."

क्षमा श्रमण क्षमा स्वभाव में स्वभाव से रमण करते अन्यकी तर्फ से पर पुद्गलों से, या स्व परिणतीकी विपरीतासे जो चित्त को क्षोभ उपजे ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध मिलनेसे निजात्मके या पर आत्मके ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्यायकी संकल्प विकल्पता कर घात करे नहीं, करावे नहीं, करतेको अच्छा जाने नहीं. अपने क्षमा रूप अमुल्य गुणका कदापि नाश होने देवे नहीं. शुभाशुभ संयोगों में चित्त वृतिको स्थिर रक्खे, और पुद्गलोंके स्वभावकी तर्फ दृष्टि रक्खे.

विचारे की जैसा २ जिस २ वक्त, जिन जिन पुद्गलों का जिस २ तरह परिणती में परगमने का, द्रव्यादिक संयोग होता है, वो उसी वक्त प्रग में विन कभी रहताही नहीं है. यह जगतका अनादि स्वभाव है. शुक्ल ध्यानीकी इस स्वभाव से प्रणाति स्वभाविक विरक्त होने से वो स्वभाव उन में नहीं परिणमता है, ऐसे अनेक प्रणतीयों जगत् में भ्रमण करती हुइ वीतरागकी आत्मका स्पर्श कर खराब नहीं कर शक्ती है. जगत्का जो कार्यहै सो तो अनादिसे चला आता है, और अनंत कालतक चलाही करेगा. मन, बचन, कायाके, शुभाशुभ पुद्गलोंका चक्कर भ्रमताही रहताहै, मिथ्या भ्रमसे भ्रमित जीव, दुउचार, दुविचार और दुआचार द्वारा करना, कराना, और अनुमोदनाकर ज्यों चीगटा घडा उडती हुइ रजको आकर्षण करताहै, और मलीन होता है. तैसेही वोउन पुद्गलोंको आकर्षण कर मलीन होते हैं; जिससे निज स्वभावका अच्छादन पर स्वभाव में रमण कर, विभावको प्राप्त होते हैं. और ज्ञानी काँचके घडेकी तरह निर्लेप या लुक्खे (चिकास रहित) होनेसे वो जगत् में भ्रमते हुये पुद्गल उनके आत्मापे ठहर नहीं सक्ते हैं. क्यों कि वो मनादि त्रियोगकी अशुभ प्रवृतिसे स्वभावसही अलग

रहे निजात्मिक ज्ञानादि गुण में रमण करते हैं, मत लब कि-इस जगत् मे अनेक जीव बोलते हैं, और अनेक जीव सुणते हैं. उसपे अपन ध्यान नहीं देते हैं तो वो पुद्गल अपनको राग द्वेषके उत्पन्न कर्ता नहीं होते हैं, और उन्ही शब्द को आपन अपनी तर्फ खेंचे की यह गाली मुझेही दी कि-तुर्त वो पुद्गल अपनी आत्मा में परिणम, अपन को द्वेषी बना देते हैं. अब अपन जरा दीर्घ विचार से देखें तो, अपनी निंदा कोइ करत.ही नहीं हैं; क्यों कि, निंदा होय ऐसा अपना निजात्मा का स्वभाव ही नहीं हैं; आत्मा तो ज्ञानादि अनंत गुणां का सागर है, और ज्ञानादि गुणों की कोइ निंदा करताही नहीं हैं, निंदा तो विषय, कषायादि प्रकृत्ति यों की होती है, सो विषय कषायादि परिणती कर्म जनित है, और कर्म पुद्गल रूप है, आत्मा से उसका स्वभाव विपरीत है और इसीही लिये निन्द: पात्र है, उनकी निन्दा तो होवेगी. तूं चैतन्य रूप उन से अलग हो फिर उन परिणती में परिणम मलीन क्यों होता है. बुरा क्यों मानता हैं, जिनको जग बुरा कहते हैं, उन्ही को वो बचन लगा. और उन्ही दुर्गुणोंका नाश होवो, कि जिस से मेरा भला होवे. एसी भलाइ होनेके स्थान,

कोण सुझ बुराइ करेगा, अर्थात् कोइ नहीं. एम और इससे भी अत्युत्तम विचार अव्वल सेही शुक्ल ध्यानी की आत्मा में ठसे रहते हैं, और प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि--क्रोध बिश्वानल रूप हो जीवोंको छिन्न भिन्न कर रहा है, और मेरी आत्मा उस लायसे अलग हो ज्ञानादि गुण रूप समुद्र के महा ओघ में डूब रही है. इसे वो अग्नि स्पर्शीय करही नहीं शक्ति है. आंच लगही नहीं शक्ति है, सदा संबूड, निबुड, शांत शीतली भूत अखन्डानन्द में रमते हैं.

द्वितीय पत्र-"मुत्ति"

२ मुत्ति-मुक्त-हुये, छूटगये, अर्थात्-लोभ तृष्ण रूपी फास में सब जगत् फस रहा है. उस फास को शुक्ल ध्यानी ने स्वभाव से जड़ा मूल से उच्छेदन कर, संतोष में संस्थित हुये है. ज्ञानी ज्ञान से प्रत्यक्ष जान ते हैं-कि इस जगत में कोइ भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि-जिसकी मालकी अपने जीव ने नहीं करी, या उनका भोगोपभोग नहीं किया, अर्थात् सब पुद्गलकी मालकी अनंत वक्त कर आया है और सब पुद्गलोंका भोग भी अनंत वक्त कर आया है. आश्चर्य यह है कि-एक वक्त अहार कर के निहार क

री हुइ वस्तुको देखते ही घृणा दुगंच्छा उत्पन्न होती है, और जिन वस्तुओंका अनंत वक्त आहार कर निहार कर आया उन्होंकाही पीछा भोगोपभोग कर ने बहूत से जीव तरस रहे हैं, तडफ रहे हैं, उनकी तृष्णा में व्याकुल हो रहे हैं, तृप्ती आइही नहीं है, तो अब क्या विना संतोष किये कदापि तृप्ति आवेगी? हा हा! क्या जब्बर मोहकी छटा! के जीवों बिलकुल बे विचार बन रहे हैं, और इस वर्तमान कालके शरीर के पुद्गल तथा पहेले धारन किये हुये सब शरीर के पुद्गल जितने आहार कर के निहार कर दिया है. तैसेही जब जीवोंके धारण किये शरीरके पुद्गलों का आपन भी अनंत वक्त भक्षण कर लिया जगत् की सब ऋद्धि के मालक अपन बने, और जगत् के जीवके दास अपन बने, अनंत पर्याय रूप इस संसार में अपन परिणम आये, और सर्व संसार पर्याय अपन में परिणमी, सर्व खाद्य खाये, सर्व पेय पीये, सर्व भोग भोगवे, परन्तु गरज कुछ नहीं सरी, आखीर वैसेके वैसे. इस लिये मै न किसका हुवा, न मेरा कोइ हुवा, न मुझे कोइने खाया, और न मैने किसीको खाया. पुद्गलही पुद्गलका भक्षण करता है, और छोडता है. और वो भाव पुद्गलोंमे ही प्रगमते हैं. तैसे

ही निर्गमते हैं. मुझे उससे जरूरही क्या? मै चैत-न्य यह पुद्गल. ज्यों नाटकिया नाना तरह का रूप धारण कर प्रेक्षक को खुश करने अनेक चरित्र करता है. रोता है, हंसता है, वगैरे, परंतु प्रेक्षक को उसके झगडे देख सुख दुःख अनुभवनेकी क्या जरूरत है. तैसही यह जगत् रूप नाटकका मैं प्रेक्षक हूं. इस विचित्रता देख मुझे उसके विचार में लीन हो दुःखी बननेकी कुछ जरूरत नहीं है. यह भाव या इस से भी अत्युत्तम शुक्ल ध्यानी के हृदय में स्वभाव से ही प्रवृत्त ते हैं, जिससे सहजही सर्व सङ्गके परित्यागी हो सिद्ध तुल्य सदा निर्छित भाव में तृप्तपणें आत्म स्वभावमें रमण करते हैं.

तृतीय पत्र—"आज्जव"

अज्जव=आर्जव—सरलता युक्त प्रवृतनेका स्वभाव शुक्ल ध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुयगडांग सूत्रमें फरमाया है. कि "अज्जुधम्मं गइ तच्चं" अर्थात् आर्य सरल आत्माही धर्म मार्ग में गति—प्रवृति कर शक्ति है. ज्ञानी समजते है कि-वक्र आत्माका धणी अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता है, और एक वक्र ठगायाहुवा, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरो की

श्रेणीयों में अनंत वक्त ठगाता ही रहता है, सर्व पुद्ग-
ल परिणती में परिण में हुये पदार्थ कुटिलता से भरे
हुये हैं. सकर्मि आत्मा उन में परिणाम प्रवृताती हुइ
उनमेंसे पुद्गलोंका आकर्षण कर उस रूप बनती हैं,
उसे 'मायाशल्य' कहते हैं, मायशल्य मिथ्या दर्शनका
मूल है, मायाशल्यसे आत्मा के ज्ञानादि गुणका आ
छादन होता है-ढकाता है. 'शल्य' काँटा को कहतेहैं,
जैसा शरीर अन्दर रहा हूवा काँटा तन्दुरुस्तीको हर
क्त करता है, तैसे मायारूप शल्य (काँटा) जिन के
हृदय से नहीं निकला है. उनके ध्यान में दुरस्ती न
रहती है. जैसे सीधे म्यान में बांकी तरवार प्रवेश न
हीं करती है, तैसेही वक्र प्रकृतीका धणीके हृदय में
शुक्ल ध्यान प्रवेश नहीं करता है, ऐसा निश्चय होने
से शुक्ल ध्यानी के हृदय से माया स्वभाव सेही नष्ट
होती है.

और भी शुक्ल ध्यानी विचार ते हैं कि—कपट
किस के साथ करें, क्यों कि चैतन्य के निज गुण
कपट से वंचित (छलित) नहीं होते हैं, आत्मा
का निज स्वभाव तो सरल शुद्ध पवित्र है, उसे छो-
ड मलिनता में पड नाहीं अज्ञान दिशा है. ऐसा जा
न शुक्ल ध्यानी स्वभावसेही परम ज्ञानी, परम ध्यानी

निष्कपटि, निर्विकारी, आत्म गुण में सदा लीन वाह्याभ्यांतर शुद्ध सरल प्रवृति रहती है.

चतुर्थ पत्र—“मद्दव.”

मद्दव—मार्दव किया है मान का. शुक्ल ध्यानी का अभिमानका मर्दन स्वभाव सेही होता है, क्यों कि वो जानते हैं कि-इस जगत् में बडा मीठा और बढा जब्बर शत्रू “अभिमान” हैं, ऊंचा चडा के नीचे डाल देता है. देवलोक के सुख में जो गर्क होरहे हैं, उन्हे तिर्यंच गति में डालता है, इत्यादि अनेक विटंबना अभीमान से होती है, और भी विचारते हैं, कि अभीमान किस वात करना; तथा मान यह हैही क्या? देखीये! अब्बी किसी निरक्षर मूर्ख मनुष्य को कोइ पण्डित कहे तो वो चिडत है. निरधन को श्रीमंत कहने से वो बुरा मानता है, कहताहै क्या हमारी मस्करी करते हो. बस तैसेही ज्ञानी के कोइ गुण ग्राम करे तो वो योंही विचार ते हैं, यह संपूर्ण गुण तो मेरी आत्मा में हैही नहीं, तो मुझे उन वचन को सुण अभीमान करने की क्या जरूर है. यह मेरी प्रशंसा नहीं करता हैं, परन्तु मुझे उपदेश करता है, कि सत्य शील, दया, क्षमा, दि गुण तुम स्विकारो!

शुक्ल ध्यानी सर्वो तम गुण संपन्न होके भी, उन्हे गुण का गर्व किंचित मात्र कदापि नहीं होता है, इसलिये वो सदा निर्भिमानी रहते हैं. तथा विचारना चाहीये कि जो गुण ग्राम करते हैं वो तो गुण के करते हैं, और उसका अभीमान गुणो को तो होताही नहीं हैं, फिर बीच में मुझ करने की क्या जरूर है, संसार में सुनतें हैं कि अमुक ने अमुक अच्छी वस्तू की सरावणा(परशंसा) करी जिस्स से यह बिगड गइ (निजर लग गइ) बस तैसेही गुणानुवाद करने से तूं पोमायगा तो तेरेइ गुणोंका खराबा होगा. ऐसा जानके खराबा क्यों करना. ❁

❁ प्रियं प्राया वृति विनम मधुरोवा चिनियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिर नवगीतः परिचयः ॥
पुरोवा पश्चाद्धा तदिदयमिपर्या सितरसं ।
रहस्यं सायुनां नुपधि विशुद्धं विजयते ॥

अर्थात्—साधुओंका कायिक व्योपार बहुदा प्रिय कारी होता है, बचन भी विनययुत नम्र होता है. उनकी बुद्धिभी स्वभावसेही कल्याण कारी होतीहै. उनका संगभी निर्दोष होता है. इत्ने गुन होनेपर भी वो भूत भविष्यमे अविछन्नस्वभावी दंभ रहित प्रमादादि दोषरहित निर्मलता होने सेही उन सत्पुरुषों का रहस्य विजय कारी होता है.

और भी जो सद्गुणोंकी प्राप्ति हुइ है, वो आत्म सुधारा करने हुइ है, और उसीसे-बीगाडा करना यह कैसी जब्बर भूल. इत्यादि निश्चय शुक्ल ध्यानी पुरुषों को स्वभाविक होनेसे सदा स्वभाविक उनकी आत्मा निर्भिमानी, नम्र भूत हुइ है.

इन चार वस्तुओंका आलम्बन शुक्ल ध्यानीको सहज स्वभाविक होनेसे अखंड अप्राति पाती ध्यानमें रहते हैं.

चतुर्थ प्रतिशाखशुक्लध्यानस्यअनुप्रेक्षा'

सूत्र–सुक्कसणं झाणस्स, चत्तारी अणुप्पेहा पण्णता तंजहा–अव्वायाणुप्पेहा, असुभाणुप्पहा, अणंतवित्तीयाणुप्पेहा, विपरिमाणाणुहा.

अर्थात्–शुक्लध्यान ध्याताकी ४ अनुप्रेक्षा विचारना १ अपायानुप्रेक्षा=दुःखसे निवृतनेका विचार. २ अशुभानुप्रेक्षा=अशुभ प्रवृति आदिसे निवृतनें का विचार. ३ अनंत वृतीयानुप्रेक्षा=अनंत प्रवृतिसे निवृतने का विचार. और ४ विपरिमाणानुप्रेक्ष –विपरित परिणाम सेनिवृतनेका विचार. यह ४ प्रकारका विचार शुक्लध्यानीका स्वभाविक होता है.

प्रथम पत्र–"अपयानुप्रेक्षा"

१ अपयानुप्रेक्षा–संसारमे परिभ्रमण करते हुवे

जीवको मिथ्यात्व २ अव्रत, ३ प्रमाद, ४ कषाय और ५ योग यह अनंत विटंबना देने वाले हैं. १ श्री वीतराग दिशा निजात्मके अनूभवमें जो विपरित रुचि उसमें अभीनिवेश (आग्रह) उत्पन्न करनेवाला तथा बाह्य यिषय में पर सम्बन्धी शुद्ध आत्म तत्त्व सें लगाके सपूर्ण द्रव्योंमें जो विपरित आग्रह करे सो मिथ्यात्व. २ अभ्यंतर मे आत्म परमात्मा के स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न हुवा जो परम सुख रूप अमृत समान भोजन प्रासन करनेकी रुचि होए उसे पलटावे तथा बाह्य विषय में व्रतादि धारन नहीं करने रूप जो प्रवृती सो अव्रत. ३ अभ्यंतर मे प्रमाद रहित जो शुद्ध आत्म है उसके अनुभवसे चलाने रूप जो परिणती, तथा बाह्य विषय में जो मूल और उत्तर गुणमे अतिचार उत्पन्न करने वाला जो है सो प्रमाद. ४ अभ्यंतर में परम उपशम मूर्ति केवल ज्ञानादि अनंत गुण स्वभावसेही धारन करने वाला निजात्म परमात्माके स्वरूपको क्षोभ के करने वाले, तथा बाह्यमे विषयके सम्बन्धसे क्रूरता आदि आवेश रूप जो क्रोधादि हैं सो कषाय. और ५ निश्चय में क्रिया रहित आत्मको भी जो व्यवहार से वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न मन बचन, और कायाके पुद्गल

वर्गणाका अवलम्बन करने वाला कर्मों को ग्रहण कर-नेमें कारण भूत आत्माके प्रदेशोंका संचलन सो योग.

यह पांच अश्रव संसारी जीवों के अनादी से परिणतीमें प्रणम रहेहैं, जिस से अनंत संसार परिणति परिणमने का कार्य होता हैं, शुक्ल ध्यानी ने पंचही आश्रवो का स्वभाव सेही नाश कर १ क्षायिक सम्यकत्व, २ यथा ख्यात चरित्र, ३ अप्रमादी, ४ क्षीण कषायी और स्थिर स्वभावी हुवे हैं, इन पंच गुणोको स्वभाव सेही प्राप्त किये हैं.

द्वितीय पत्र—"अशुभानु प्रेक्षा"

२ अशुभानु प्रेक्षा—जीवों का शुभाशुभ होने के दो मार्ग हैं:—१ निश्चय, और व्यवहार. निश्चसो निजगुण में प्रवृती करने को कहते हैं. और व्यवहार बाह्य प्रवृती को कहते हैं. छद्मस्तों के लिये अव्वल व्यवहार है अर्थात् व्यवहार शुद्ध कर्म कर आत्म साधन करते निश्चय की तर्फ दृष्टी रखते हैं. और सर्वज्ञ निश्चय की प्रवृति करते हुये भी व्यवहार को नहीं बीगाडते हैं, ऐसेही कर्म सम्बन्ध भी जाना जाता है, व्यवहारमें कर्मके कर्ता पुद्गल हैं. जैसे वियोग रहित शुद्ध आत्मा की जो भावना है, उस से वे मुग्ध होके;

उपचरित असद्भुत व्यवहार से ज्ञाना वर्णिआदि द्र व्य कर्मोंका, तथा उदारिक, वेक्रय, और अहारिक यह तीन शरीर, अहार,शरीर इन्द्रीय, शाश्वोश्वास, मन. और भाषा, यह पर्याय, इत्यादि योग्य से जो पुद्गल पिण्ड नो कर्म है, उनकी तथा उसी प्रकार से उपचरित असद्भूत वाह्य विषय, घटपटादि का भी येही कर्ता है. यह तो व्यवहार की व्याख्या कही. अब निश्चय अपेक्षा से चैतन्य कर्मका कर्ता है, सो इसतरह है कि रागादि विकल्प रूप उदासी से रहित, और क्रिया रहित, ऐसे जीव ने जो रागादि उत्पन्न करने वाले कर्मोंका उपार्जन किया उन कर्मोंका उदय होने से अक्रिय निर्मल आत्मा ज्ञानी नहीं होता हुवा, भाव कर्मका या राग द्वेषक कर्ता होता है. और जब यह जीव, तीनों योग्यके व्यवहार रहित, शुद्ध तत्वज्ञ एक स्वभाव में परिणमता है, तब अनंत ज्ञानादि सुखका शुद्ध भावोंका छद्मस्त अवस्थामें भावना रूप विविक्षित एक देश शुद्ध निश्चयसे कर्ता होता हैं, और मुक्त अवस्था में तो निश्चयसे अनंत ज्ञानादि शुद्ध भावों का कर्ता ही है-

इस लिये शुद्धाशुद्ध भावोंकी जो परिणती है, उसका कर्ता जीव जाणना, क्यों कि नित्य निरा

कार निष्क्रिय, ऐसी अपनी आत्म स्वरूपकी भावना से रहित जो जीव है, उसीको कर्मका कर्ता कहा है पर परिणितीही शुभाशुभ बन्धका मुख्य कारण है जिससे निवृत्त अपनी आत्मा में हीं भावना करे और व्यवहारकी आपेक्षासे सुख और दुःख रूप पुद्गल कर्मोंका भोगवता है. उन कर्म फलोंका भुक्ताभी आत्माही है, और निश्चय नयसे तो चैतन्य भावका भुक्ता आत्मा है, वो चैतन्य भाव किस सम्बन्धी है, ऐसा विचार करीये तो अपनाही सम्बन्धी है. कैसहै कि निज शुद्ध आत्माको ज्ञानसे उत्पन्न हुवा, जो परमार्थिक सुख रूप अमृत रस उस भोजनको न प्राप्त होते, जो आत्मा है वो उपचरित असद्भूत व्यवहार से इष्ट तथा अनिष्ट पांचो इंद्रिय के विषय से उत्पन्न होते हुये सुख दुःख भोगवता है, ऐसेही अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से अंतरंग में सुख तथा दुःखको उत्पन्न करने वाला द्रव्य कर्म सत्ता असता रूप उदय है, उसको भोगवता है, और वोही आत्मा हर्ष तथा शोक को प्राप्त होता है, और शुद्ध निश्चय में तो परमात्म स्वभावका जो सम्यक श्रधान ज्ञान और किया उससे उत्पन्न अविन्यासी अनन्द रूप एक लक्षण का धारक सुखामृतको भोगवता है,

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृतके भोजनकी अप्राप्तीसे आत्मा इन्द्रिय जनित सुख को भोगवता हुवा, संसारमें परिभ्रमण करता है; और स्वभाव उत्पन्न हुये इन्द्रियोंके अगोचर सुख है, सो ग्रहण करने योग्य है. शुक्लध्यानके ध्याता उन्हे स्वभावसेही ग्रहण करते हैं, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ कटु मधू, उच्चता-नीचता, रूप फलोंका दाता पुद्गल परिणतीसे परिणमा हुवा जो स्वभाव है उसका सहजही त्याग हो जाता है. शुद्ध आत्मानंद चैतन्य मय स्वभाव में सदा रमण करते हैं.

तृतीय पत्र-"अनन्तवृत्तियानुप्रेक्षा."

३ अनंत वृत्तियानु प्रेक्षा—अनंत संसारमे परिभ्रमण करनेकी जो प्रवृती है- उससे निवृत्तनेका स्वभाविक ही विचार होवे, कि इस संसार में अनंन पुद्गल परावर्तन किये, वो ८ प्रकारसे होते हैः—१ द्रव्य से बादर पुद्गल परावर्तन सो उदारिक वैक्रय, तेजसे कारमाण, मन, बचन, और श्वासोश्वास यह ७ तरह के पुद्गल हैं, उनके जितने पुद्गल जगत में हैं, उन्ह सबको स्पर्शे. २ द्रव्य से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पूर्वोक्त सातही प्रकारके पुद्गलोंमे से प्रथम सर्व जगत्

में रहे उदारिक के सब पुद्गल अनुक्र में स्पर्शे किंचि-लही नहीं छोडे, फिर वैक्रय के, फिर तेजस के, यों ७ ही के अनुक्र में स्पर्शे. ३ क्षेत्रसे बादर पुद्गल पराव. र्तन सो–मेरु प्रवृतसे दशही दिशा आकाशकी असख्यात श्रेणी मकडीके जालेके तंतुवेकी तरह फैली है, उन्ह सबपे जन्म मरण, कर स्पर्शे, ४ क्षेत्रसे सुक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पूर्वोक्त श्रेणियोंमें से पहले एकही श्रेणि ग्रहण कर उसपे अनुक्रमें (मेरुसे अलोक तक) जन्म मरण कर स्पर्शे. जराभी नहीं छोडे फिर दुसरी श्रेणिभी इस तरे, यों सब श्रेणि स्पर्शे, ५ कालसे बादर पुद्गल परावर्तन सो-समय, आंवलिका, स्तोक, लव, महुर्त, दिन, पक्ष, मांस, ऋतु, आयन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर, सार्पिणी, उत्सार्पिणी और काल चक्र, इन सब काल में जन्म मरण कर स्पर्शे, ६ काल से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो–पहले सार्पिणी काल बेठा, उसके पहले समय जन्म के मरे, फिर दुसरी वक्त सार्पिणी लगे तब उसके दुसरे समय में जन्मके मरे, यों आंवलकाका समय पूरा होवे वहांतक फिर सार्पिणी वेठे उसके पहली आंवलिका में जन्म के मरे, फिर दुसरी में यों स्तोकका काल पूरा करे, एसे अनुक्रमे सब काल जन्म मरण कर स्पर्शे. ७ मा-

चसे बादर पुद्गल परावर्तन सो-५वर्ण, २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श. इन २० ही बोलके सर्व पुद्गलोंको स्पर्शे, ८ भाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पहले एक गुण काले वर्ण के जगत् में जितने पुद्गल हैं, उन सबको स्पर्शे, फिर दुगणे कालेकों यों ही गुणें जावत असंख्यात गुणें काले वर्ण के पुद्गल स्पर्शे, यों सर्व काले वर्ण के पुद्गल पीछे, हरें वर्ण के पुद्गल कालेकी तराह अनुक्रमे स्पर्शे इसी तरह २० ही तरह के पुद्गल को अनुक्रमें स्पर्शे.

यह ८ तरह पुद्गल परावर्तन करे उसे एक पुद्गल परावर्तन कहना, ऐसे २ अनंत पुद्गल परावर्तन एकेक जीव संसार में करते हैं; और अपने जीव ने भी किये हैं. ऐसी भव भ्रमणा में भ्रमण करते २ अनंतानंत पुण्योदय होने से, मनुष्य जन्म से लगा शुक्ल ध्याना रूढ होने जितने अत्युत्तम सामग्रीयों प्राप्ती हुइ है. यह उन्ह पुद्गलों के परावर्तन से निर्मुक्त कर अखंडित, अचल, निरामय, मोक्ष के सुख देने वाली है. ऐसा निश्चय शुक्ल ध्यानी को स्वभावसे ही होता है. और अनंत जीव अनंत पुद्गलों का परावर्तन करते विभाव रूप विचित्रता को प्राप्त होते हैं को प्रतिच्छांया उनकी शुद्ध आत्मा में सद्भाव से पड

में रहे उदारिक के सब पुद्गल अनुक्र में स्पर्शे किंचि-त्मात्र नहीं छोडे, फिर वैक्रय के, फिर तेजस के, यों ७ ही के अनुक्र में स्पर्शे. ३ क्षेत्रसे बादर पुद्गल परावर्तन सो—मेरु प्रवृतसे दशाही दिशा आकाशकी असंख्यात श्रेणी मकडीके जालेके तंतुवेकी तरह फैली है, उन्ह सबपे जन्म मरण, कर स्पर्शे, ४ क्षेत्रसे सुक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पूर्वोक्त श्रेणियोंमें से पहले एकही श्रेणि ग्रहण कर उसपे अनुक्रमें (मेरुसे अलोक तक) जन्म मरण कर स्पर्शे. जराभी नहीं छोडे फिर दुसरी श्रेणिभी इस तरे, यों सब श्रेणि स्पर्शे, ५ कालसे बादर पुद्गल परावर्तन सो-समय, आंवलिका, स्तोक, लव, महुर्त, दिन, पक्ष, मांस, ऋतु, आयन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर, सर्पिणी, उत्सर्पिणी और काल चक्र, इन सब काल में जन्म मरण कर स्पर्शे, ६ काल से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो—पहले सर्पिणी काल बैठा, उसके पहले समय जन्म के मरे, फिर दुसरी वक्त सर्पिणी लगे तब उसके दुसरे समय में जन्मके मरे, यों आंवलकाका समय पूरा होवे वहांतक फिर सर्पिणी बैठे उसके पहली आंवलिका में जन्म के मरे, फिर दुसरी में यों स्तोकका काल पूरा करे, ऐसे अनुक्रमे सब काल जन्म मरण कर स्पर्शे. ७ भा-

तथा मोहकी शक्ति में प्रगम ते हैं. जिससे परिणा-
मों में संकल्प विकल्प हो इन वस्तूओं में प्रेम द्वेष
होता है. जिसपे प्रेम उत्पन्न होता है, और जिसपे द्वे
ष उत्पन्न होता है, वह दोनो वस्तुओं उनही पुद्गलों
के परमाणुओंकी प्रणमी है. घर, धन, स्त्री, स्वजन
वस्त्र, भूषण, मिष्टान्न, विष, मलीनता वगैरे सर्व वस्तु
ओं यही पुद्गलों से परिणमी है. क्षिण २ मे इनका
रूपांतर हुवाही रहता है, और उस प्रमाणें जीवों की
परिणती में फेर होता है, परिणती में राग द्वेष रूप
चकमकके भाव उत्पन्न होनेसे, उन्ह पुद्गलोंको आक-
र्षण कर गुरु (भारी) बनता है, और उस भारी बन
नेके योग्य से उच्च जो मोक्ष गति है उसे प्राप्त नहीं
होता है, यह संसार में रुलनेका मुख्य कारण अना-
दि अनंत है. यह सब पुद्गलोंका परिणती स्वभावका
गुण है, उस में चैतन्य लीनता (लुब्धता) धारण क
र दुःखी हूवा, विपर्यास पाया. ऐसा निश्चयात्म ज्ञान
शुक्ल ध्यानी को होता है, जिस से सर्व पुद्गलों उपर
से राग द्वेष निर्वल होने से. ज्ञानादि गुण प्रगट हो
ते हैं, जिस से निजगुण की पहचान हुइ कि मेरे
आत्म गुण अखंड हैं, अविनाशी हैं, सदा एकही रू
पमें रह ने वाले चैतनीक गुण युक्त हैं, अगुरू लघूहैं,

ती है. उसज्ञानके अप्रतिपाति ध्यान में सदा मग्न हो रहते हैं.

चतुर्थ पत्र-"विपरिणामाणु प्रेक्षा"

विप्रणामाणु-प्रेक्षा-३४३ राजात्मक रूप विश्वोदर संपूर्ण सचेतन अचेतन पदार्थों कर भरा है, उन में के पुद्गलों क्षण २ में विपार्यास पाते हैं, जैसे माट्टि के पिण्ड के समोह में से कुम्भार अच्छे, बुरे, छोटे बडे अनेक प्रकार के भाजन बनाता है. तैसेही मनुष्या कार, पशुवाकार, नाना प्रकार के चित्र बनाता हैं, उन्हे देखके बहूत लोक कितनेकको अच्छे कहते हैं, कितनेक को बुरे कह ते हैं, एकही वस्तू से उत्पन्न होते हैं वो कुछ वस्तुका फेर नहीं है. फक्त दृष्टि काही फेर है. तैसेही सर्व लोक जीव अजीव कर के भरा है, उन अनंत परमाणुओंको सम्मोह से पंच सम्वायकी प्रेरणासे पूरण गलन (मिलन विछडन) होते हुये अनेक आकार भाव में प्रगमते हैं. उस में अनेक पुद्गलों की सामान्यता विशेषता अनंत काल से होतीही रहती है. और वृसही लोक में राग द्वेष के पुद्गल भी पूर्ण भरे हैं, वो सकर्मी जीवोंके चमक लोहकी तरह आकर्षण होके लगते हैं. और मिथ्यात्व

तथा मोहकी शक्ति में प्रगम ते हैं. जिससे परिणा-
मों में संकल्प विकल्प हो इन वस्तूओं में प्रेम द्वेष
होता है. जिसपे प्रेम उत्पन्न होता है, और जिसपे द्वे
ष उत्पन्न होता है, वह दोनो वस्तुओं उनही पुद्गलों
के परमाणुओंकी प्रणमी है. घर, धन, स्त्री, स्वजन,
वस्त्र, भूषण, मिष्टान्न, विष, मलीनता वगैरे सर्व वस्तु
ओं यही पुद्गलों से परिणमी है. क्षिण २ मे इनका
रूपांतर हूवाही रहता है, और उस प्रमाणें जीवों की
परिणती में फेर होता है, परिणती में राग द्वेष रूप
चकमकके भाव उत्पन्न होनेसे, उन्ह पुद्गलोंको आक-
र्षण कर गुरु (भारी) बनता है, और उस भारी बन
नेके योग्य से उच्च जो मोक्ष गति है उसे प्राप्त नहीं
होता है, यह संसार में रुलनेका मुख्य कारण अना-
दि अनंत है. यह सब पुद्गलोंका परिणती स्वभावका
गुण है, उस में चैतन्य लीनता (लुब्धता) धारण क
र दुःखी हूवा, विपर्यास पाया. ऐसा निश्चयात्म ज्ञान
शुक्ल ध्यानी को होता है, जिस से सर्व पुद्गलों उपर
से राग द्वेष निवृत्त होने से. ज्ञानादि गुण प्रगट हो
ते हैं, जिस से निजगुण की पहचान हुइ कि मेरे
आत्म गुण अखंड हैं, अविनाशी हैं, सदा एकही रू
पमें रह ने वाले चैतनीक गुण युक्त हैं, अगुरु लघु हैं,

न वो कधी आके लगे, न वो कधी विछडे, अनादि से निज में ही हैं. परन्तू पर गुणों से ढके हूयेथे, जिस से इतने दिन पैछान में नहीं आये, अब उन्ह पुद्गलों से विपरीत शक्ति धारण कर ने वाले गुणका संयोग होने से निजगुण प्रगटे, जैसे वायु के जोग से बद्दल विखर ते हैं, और सूर्य का प्रकाश होता है, तैसे पुद्गल पर्याय रूप बद्दल वैराग्य वायु से दूर होने से अनंत ज्ञान ज्योती का अरुणोदय हूवा, जिस से पूर्ण प्रकाश होने का निश्चय हूवा, तथा पूर्ण प्रकाश हूवा जिस से कालांतर सर्व पुद्गल परिचय से दुर हो वुंगा, सत्य चित्य आनन्द रूप प्रगटेगा. तब निरामय नित्य अटल सुखका भुक्ता वनूंगा.

पुष्प फल

यह चार प्रकार का विचार शुक्ल ध्यानीके हृदय मे स्वभाव से ही सदा परिणति मे परिणमता रहता है, जिस के प्रबल प्रभाव से उनकी आत्मा सर्व विभावो पुद्गल परिणति के सम्बन्ध रूप से निवृत्त, सर्व कर्म से विमुक्त हो अत्यन्त शुद्धता, परम पवित्र को प्राप्त हो अनंत अक्षय अव्याबाध मोक्ष के सुख में तल्लीन रहते हैं.

यह शुक्लध्यानीके ४ पाये, ४ लक्षण, ४ आलंबन, और ४ अनुप्रेक्षा, यों १६ भेदका वर्णव हुवा.

मै एक अल्पज्ञ विषय कषायका सदन अनेक दुर्गुण कर पूरित ऐसे गहन ध्यानका यथार्थ वर्णव करने असमर्थ हूं. क्यों कि शुक्लध्यान मेरे अनुभव के बाहिर है. मैंने जो कुछ लिखा है सो जिनोक्त सूत्र कितनेक ग्रन्थोंके अनुशारसे और कितनेक स्थान सद्भाविक बौध रूपभी लेख आया है, इस लिये पाठक गणोंसे नम्र क्षमा याचता हूं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज
की सम्प्रदाय के महंत मुनी श्री बाल
ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषि
जी महाराज रचित 'ध्यानकल्पतरू'
ग्रन्थका शुक्लध्यान नामक
चतुर्थ शाखा समाप्त

उपसंहार.

यह इस "ध्यान कल्पतरु" ग्रंथकी चार शाखा और दो उपशाखा मिल छः शाखाओंमें सूत्र कथित चार ध्यान उपयुक्त दो ध्यान का कथन किया. इसे दक्ष चित्तसे पठन करने से जगतमें प्रवर्तात्ति सर्व शुभाशुभ वातोंका ज्ञान-समज सहज हो सकेगा. इस ज्ञेय का यही फायदा है कि—हेय जाने उसे त्यागना और उपादेय जनाय उसे आदरना. अर्थात्-प्रथम कहे हुवे आर्त रौद्र ध्यान इस भव परभवमें अत्यन्त दुःख प्रद है. ऐसा ज्ञेय जब आत्मा को हुवा तो सुखार्थी आत्मा उसका हेय—त्याग करने यथा शक्ति प्रयास में वृद्धिकर जरूर त्यागेगा उनकु ध्यानसे निवृत्ति करने की रीती, प्रथम शुभ ध्यान रूप उस शाख में समझाइ है. और ऐसा हुवे बाद इस कालमें फक्त धर्म ध्यान ही बन सक्ता है. वोभी इह भव पर भव में उत्तमोत्तम सुखकादाता होताहै. उस ध्यान करनेमें आत्म संलग्न करेगा और उससे भी उच्च दशा अमाकी प्राप्त करने दुसरी उपशाखा में शुद्ध ध्यान

बताया है उसका साधन भी धीरवीर सत्पुरुषों कर शक्ते हैं. वो अनुत्तर सुख प्राप्त करते हैं. और अत्यन्त विशुद्ध सर्वोपरी आत्म दशा प्राप्त करनेका जो चौथा शुक्ल ध्यान है उसकी प्राप्ति होनी इस कली काल में मुशकिल है तो भी उसका भान आत्मा को जरूरही हुवा चाहिये कि भूत काल में महात्मा ऐसी वृत्ति धारण कर परम पद प्राप्त करते थे हे प्रभू! मुझभी वो दिन प्राप्त होवो. ऐसा ध्यान परम सुखार्थि पाठकों को होवेगा जिससे उन की आत्म अनेक लाभ प्राप्त कर सकेगी

अंतो मुहुतमितं। चितावत्थाणमे घवत्थुमी ॥
छउम त्याणं झाणं जोगनिरोहो जिणांणतु॥१॥

अर्थात्—एकही ध्येयमें अतर्मुहुर्त मात्र चित्तकी एकाग्रता रहती है सो छद्मस्तका ध्यान है. * और योगोंके निरोध से जो विकल्प रहित आत्मा की स्थिरता है सो जिनेश्वर का ध्यान हैं.

जे जित्तिआय हेउ। भवस्म ते चेव तित्तिआ मुक्खे॥
गुण गणाइआ लोगा। दुण्हवी पुन्ना भवे तुल्ला॥२॥

---

* सूत्र—उत्तम संहनन स्येकाग्रचिन्ता निरोधोध्यान माऽऽन्त मुहूर्तात् ॥

अर्थ—उत्तम संघेयन के धारक चित्तकी एकाग्रता अंतमुहुर्त पर्यन्त करने हैं सोही ध्यान है.

अथात्—इस विश्वमें जितने संसार के हेतू हैं उत.
नेही मोक्ष के हेतू हैं. गुण गणा तीन लोकमें दोनों ही
पूर्ण भरे हैं और एकसे हैं. इसमें विशेषता तो ध्यता
की है. जिधर लक्ष लगावेगा वैसाही फल पावेगा.

जहचि असंचि अमिंधण मणलोयपवण सहिओदुह डहइ
तह कम्मि धण ममिअं खणेण जाणा लो डहइ ॥३॥

अर्थात्—जैसे बहुत काल के भेले हुवे इधंन-कचरे
को पवन से प्रेरीत अग्नि क्षणमात्र में भस्म कर डा-
लती है. तैसेही अनन्तान्त भवों के संचित कर्म रूप
कचरे को शुद्धध्यान रूप अग्नि क्षणमात्रमें भस्म कर
आत्मा को पवित्र बनावे है.

सिद्धाःसिध्यिन्ती सेतस्यन्ति यावन्तःके पि मानवाः
ध्यान तपो बले नैव ते सर्वेऽपि शुभा शयाः॥ ४ ॥

अर्थात्—भूत कालमें अनंत सिद्ध भगवंत हुये हैं
वर्तमान में होते हैं (महाविदेह क्षेत्र में) और भ-
विष्य में होंगे वो सब शुद्ध ध्यान रूप महा तप के
प्रभाव से. इस लिये निश्चय होता है कि मोक्ष प्राप्ति
का मुख्य साधन ध्यानही है.

यहीं हेतू—निज परात्म का सिद्ध करने यह
प्रथ का प्रति पादन किया है. ध्यान नामक विषयका

सपूर्ण यथ्या तथ्य वर्णन् करना मेरे जैसे अल्पज्ञ को हांस्यपद है. तोभी शिशु क्रीडा वत् यह ग्रंथ लिख त्तत्व वेंता सत्पुरूषों को समर्पण करता हूं कि आप इसको सर्व दोषों से विशुद्ध कर मेरे आशय माफिक इसे बना मुमुक्षु ओंको परमानन्द परम शांन्ति रूप महा लाभ की बक्षीश की जीये !

ॐ शांति, शांति, शांति,

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषि जीं महाराज के
सम्प्रदाय के महंत मुनिराज श्री खूबा ऋषिजी
महाज के शिष्य वर्य आर्य मुनि श्री चेना
ऋषि जी महाराज और उनके शिष्य
बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख
ऋषिजी महाराज रचित यह
ध्याकल्पतरु ग्रंथ

समाप्तम्
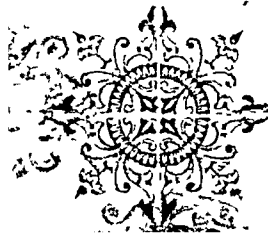
ध्यान कल्पतरु द्वितीया वृतिस्य शुद्धि पत्रम्.

पृष्ठ	ओली.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	ओली.	अशुद्ध.	शुद्ध.
६	१	अतः	अंतः	१४५	४	आर	और
१०	६	गयया	एगया	,,	९	वठावें	घटावें
११	७	,,	,,	१५१	१९	स्वार्थी	स्पार्थी
१२	४	यानं	ध्यानं	१५२	२४	जो	तो
३०	५	नरमव	नरमेध	१५३	२	पर्हन्त	पर्यन्त
३१	२	ग्रहेषु	परिग्रहेषु	,,	३	फी	की
४६	११	राद्र	रोद्र	,,	४	द्रूर	दूर
५३	१६	भक्षीको	भक्षीको उन्का मांस.	,,	८	श,	शत्रु
				१५९	४	गाती	संगाती
६१	१९	सायान्कता	सामान्यता	,,	१९	विज्इ	विज्ञइ
६५	१२	पूव	पूर्व	१६०	२०	तहा	तत्व
६७	५	क्षीण	क्षीण	१६१	६	अर्जव	आर्जव
७०	९	निवयारी	निवारि	,,	९	प्रता	प्रताप
,,	१३	निर्ताइ	निवरताइ	,,	१७	आपक	आपका
७७	हेडिंग	छतुर्थ	चतुर्थ	,,	२१	पने	पको
८८	,,	प्रणायाम	प्राणायाम	१६७	१३	चैतन्यके	चैतन्यको
,,	१४	,,	,,	१६८	१४	ल ल	लाल
९१	हेडिंग	प्र रण	प्रत्याहार	१७१	२	वितरागा	वीतरागी
९३	१६	नव	०	,,	९	वरक्कर	वक्कर
१०३	८	नजम	नियम	१७४	९	अशुभवा	अशुभका
१०५	१	आर	और	१७६	६	नाक	नाके
१०७	१	र्शे	दर्शे	,,	६	गूग)	(गूंगे)
१०८	३	यह	०	१८२	१६	बंध	बध
१०९	७	निव्रतते	निवृते	१८८	९	में	से
,,	८	और	ओ	१८९	१४	जी	जीवों
१११	११	देखने	देने	,,	१६	चिंता	निश्चिन्त
११२	२	जा	जरा	,,	१९	नोकरो	नोकरों
११७	टीप	धारण	धारण धर्म	१९२	१६	कीर्ति	कीर्ति
११९	१३	मेढ्ढा	मीठ्ठा	१९९	२१	।	का
१२३	११	पुठीणवा	लुठीणवा, से लूणवा.	२०१	९	खादने	खोदने
				२०२	७	वायय	वायय
१२६	१२	लुकायों	लूकायों	२०३	२	जामें	जा
१२७	नोट	धरात	धरत	२०७	५	लक	लोक
१२९	१४	डिक्ंइरस	डिइंगस	,,	६	लोम	लोक
,,	१६	(लड)	(लड्डू)	२०८	७	जे	जो
१३१	३	तिंच	तिर्यंच	२१६	नोट	ष्ण	व
,,	८	नंयनि	नयमी	२१७	१८	तोडा	थोडा
१३७	४	मत्यमन ६	मत्य मन २ अ सत्य मन३	२१९	१	विव्र ह	१ विवाहा

पृष्ठ	ओली.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२१९	१२	हृदय	हृदय
२२५	२	पद्वादि	परदेवादि
२४१	११	कटकाना	अटकाता
२४१	२१	सुखा	सुखी
२४३	१५	ससको	मनको
२४३	२१	संसारणु	संसाराणु
२४४	२	महातम	महात्मा
२४८	४	नेत्यानित्य	नित्यानित्य
२४९	१	चैसे	जैसे
२४९	१०	मृत्य	मृत्यू
२५३	५	उनते	उनके
२५४	११	मायले	कोयले
२५५	नोट	अद्यम	उद्यम
२५६	५	ावेत	रावत
२६२	१	(अलगर २)	(अलगर२)
२६४	८	नन्री	बन्धू
२६६	१२	उष्ताना	उष्णता
२६८	१७	अर	अ-
२७४	नोट	[भेगी]	(भंगी)
२७५	१	ंतर	अंतर
२८५	१७	डा ते	डालते
२८८	१	वे ग	वेद्यन
२९७	१	वलस्	वच्चऽस्
३०९	नोट	ऽतपो	ऽतापो
,,	,,	गाणिगल	गाणीगाळ
३१०	११	नव	नव
३१५	१२	रूपवीजत्म	रूपवर्जितम्
३१५	१५	ध्यान	ध्यान
३१५	१६	ध्यके	ध्यानके
३१८	२	ताहु	साहु
,,	नोट१२	आयरिमा	आयरिया
,,	,, २१	विन्द	विन्दू
३२०	२	चलची	चउवी
३२१	१०	अभ्य	अभय
३२१	११	जावि	जीव
३२१	१३	गहिणे	सागहिणं
३२२	३	निस्तय	निश्चय
३२२	१२	गाभतं	गर्भि
३२२	१२	टेव	देव
३२२	१३	देव	टेव
३२८	९	आयतरूक	आवतरूके
३२८	१५	ओलीभूलसे दूसरी वक्त छपी है	
३२८	१९	वैरावग्य	वैराग्य
३३१	२	द्रव्य	द्रव्य
३३२	२	दानो	दोनों
३३४	३	ा ज्ञान	विज्ञान
३३४	१५	माहे	मोहे
३३८	१६	स्थन	स्थान
३३९	नोट	उसी में	रासीमें आते, है
३४९	नोट	३३	३२
६४२	५	काइ	कोइ
३४७	१८	अष्टांग	अष्टांग
३४९	२	शाक्त	शक्त
३५	२	कण चक्षु	कर्ण चक्षु
३५२	१२	नाश	नांश
३५२	१७	घृन	घृत
३६२	२	होत है	होता है
३६१	११	हाथा	होता
६६३	१६	निवृतिसा	अनिवृतिसो
६६५	नोट	दूप	धूप
३७०	हेडिंग	चतुर्य	चतुर्थ
३७०	१६	कत्धन	बन्धन
३७८	हेडिंग	आउजव	अउजव
८१	१२	चिनियम	चिन्तिगरा
३८१	१५	ला नां	सानुगां
३८२	१२	माणाणुहां	मरणाणुव्वेहा
३८४	५	सि	जिस
३८७	१४	अनंन	अनंत
३९०	१७	वृसहा	वेगेहा
३९२	१८	शुत्तता	शुद्धता

☞ सिवाय और भी सर्व अशुद्धियोंको शुद्धकर पढीये और गुणही गुण ग्रहण कर परम सुखी बनीये.